साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२२ अंक-११ ❖ पृष्ठ ८८ | ज्येष्ठ-आषाढ, संवत्-२०७४ | जून २०१७

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

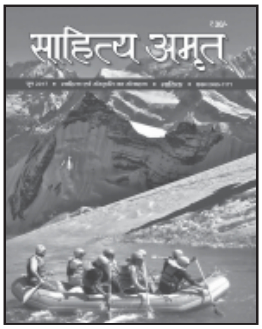

संपादकीय

लालबत्ती की हवस और खुमार ४

प्रतिस्मृति

क्या उसकी मृत्यु हो गई/ *गुरुदत्त* ८

आलेख

विष्णु प्रभाकर : खुले मन के बड़े लेखक/ *प्रकाश मनु* १२

पश्चिम का आर्य सिद्धांत और आंबेडकर को अभिमत/ *कुलदीप चंद्र अग्निहोत्री* २४

भारतीय सूफी संत और कवि-परंपरा/ *हेमंत कुकरेती* ४७

विकास में महिलाओं की भागीदारी/ *दीपक शर्मा* ६६

कहानी

पंचायत का फैसला/ *मायाराम पतंग* २०

दो फुट जमीन/ *सुषमा मुनींद्र* ३६

अब माँ का क्या होगा/ *आभा पूर्वे* ५०

उनका फैसला/ *विपुल ज्वाला प्रसाद* ५८

विस्मयकारी विश्वास/ *मेघा दुग्गल मेहरा* ६९

एक हमसफर…/ *राजा सिंह* ८०

स्मरण

देव, दवे को अभी नहीं बुलाना था/ *प्रभात झा* १०

लघुकथा

अनोखी माँग/ *पंकज शर्मा* ७१

कविता

धूप की उष्मित छुवन से…/ *रामदरश मिश्र* १९

युग बीते/ *बालकवि बैरागी* २२

बिन पानी सूनी सब दुनिया…/ *मालती शर्मा* २३

दर्द जुलाहे का कहे, कोई नहीं कबीर/ *यश मालवीय* २९

ढूँढ़ते जल जीव प्यासे/ *ब्रजेश कुमार मिश्रा* ३५

अंबर के आँगन में/ *श्रीप्रकाश सिंह* ६५

पानी से प्यार करो/ *जे.एस. चावला* ६८

दोपहरी से जंग/ *राजीव रस्तोगी* ७९

उसे अब भी सह रहा हूँ/ *चंद्रसेन विराट* ८२

पुस्तक-अंश

शिवाजी व सुराज/ *अनिल माधव दवे* ३०

राम झरोखे बैठ के

लाल बत्ती की विदाई/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४०

उपन्यास-अंश

हमारे हिस्से की छत/ *अश्विनी कुमार दुबे* ५४

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

वही लड़की/ *दाशरथि भूयाँ* ६१

व्यंग्य

छुँयाल/ *राजेश्वर उनियाल* ७२

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

बूढ़ा बावरची/ *कोन्सवंतीन पाउस्तोव्स्वी* ७४

यात्रा-वृत्तांत

मेरी कच्छ यात्रा/ *ऋषि राज* ७६

लोक-साहित्य

मणिपुर का लोकसाहित्य/ *वीरेंद्र परमार* ७८

बाल-संसार

धूल उड़ाती आती गरमी/ *कुलभूषण सोनी* ८३

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८४

वर्ग-पहेली ८५

साहित्यिक गतिविधियाँ ८६

संपादकीय

लालबत्ती की हवश और खुमार

एक मई से तथाकथित वी.आई.पी. की गाड़ियों से लालबत्ती उतर गई है, किंतु बहुतों को उसका नशा अभी भी नहीं उतरा है। उसका खुमार अभी भी है। बहुत समय से विवाद चल रहा था कि वी.आई.पी. कल्चर समाप्त होनी चाहिए। समाचार सुनने में आते थे कि फलाने वी.आई.पी. के काफिले के कारण बीमार बच्चे को अस्पताल न पहुँचाया जा सका, रास्ते में ही दम तोड़ दिया। चंडीगढ़ के एक मामले में जहाँ वी.आई.पी. के आवागमन के इंतजाम करनेवालों ने लाश को श्मशान में ले जानेवाली गाड़ी और साथ के लोगों को रोक लिया, जिससे अंतिम संस्कार करने में पाँच-छह घंटे की देरी हुई। जनता की परेशानियों को देखते हुए सर्वसाधारण और मीडिया में इसकी बहुत आलोचना होती रही। मामला शीर्ष अदालत में पहुँचा। उसने आदेश दिया कि कुछ गिने-चुने महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को छोड़कर दिल्ली और देश के अन्य राज्यों में लाल या नीली बत्ती गाड़ियों पर न लगाई जाए। केवल एंबुलेंस और कानून व्यवस्था की देखभाल करनेवाली गाड़ियों में ये बत्तियाँ लगाने या साइरन के इस्तेमाल की इजाजत दी जानी चाहिए। पर फिर मामला ठंडा पड़ गया।

हालात ऐसे हो गए थे कि जिन लोगों को यातायात नियमों के अनुसार लाल/नीली बत्ती की इजाजत थी, उसके अलावा अन्य लोगों ने भी लाल/नीली बत्ती लगाना शुरू कर दिया। मंत्रियों, राज्यमंत्रियों या उनके बराबर पदवाले व्यक्ति तो हकदार हो ही गए। कुछ अपवाद छोड़ दें तो सांसदों, विधानसभा सदस्यों और जिला पंचायत के अधिकारियों ने भी लाल बत्तियाँ लगानी शुरू कर दीं, जो नियमानुसार इसके अधिकारी नहीं थे। यही बात नौकरशाही व पुलिस में शुरू हुई और विश्वविद्यालयों व अन्य संस्थानों में भी यह बीमारी फैल गई। यहाँ तक कि ठग, गुंडे, अपराधियों ने भी लाल/नीली बत्ती को अपना कवच बना लिया। 'खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है।' कार की बत्ती देखकर ट्रैफिक पुलिसवाला लिहाज करेगा या डरेगा और अगर ट्रैफिक के नियमों का उल्लंघन करेंगे तो उसकी भी अनदेखी की जाएगी।

भला हो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदीजी का कि कैबिनेट में गाड़ियों में लाल-नीली बत्ती इस्तेमाल के नियमों में परिवर्तन का प्रस्ताव पारित कर दिया। एक मई से कुछ अपवाद छोड़कर कोई लाल/नीली बत्ती का इस्तेमाल नहीं कर सकता और न कटुकर्णा साइरन का, जो ध्वनि प्रदूषण बढ़ाता है। कैबिनेट की मंजूरी के बाद एक मई से लाल/नीली बत्तियाँ प्रतिबंधित हो गईं, तो कुछ मुख्यमंत्रियों, मंत्रियों व अन्य लोगों ने वाहवाही लूटी, अपनी कारों से लालबत्ती हटाने की फोटो टी.वी. पर आईं, मानो महान् बलिदान कर रहे हैं। किंतु विचित्र यह लगा, कर्नाटक के एक मंत्री ने कहा कि पद के साथ हमारे मुख्यमंत्री ने लालबत्ती वाली कार भी दी है और जब तक वे नहीं कहेंगे, हम कार से लालबत्ती नहीं हटाएँगे। सिरफिरों की कमी नहीं है। एक हैं नूसर रहमान बारकाती साहब, जो कोलकाता में टीपू सुल्तान की मसजिद के इमाम हैं। समय-समय पर फतवे देते रहते हैं। राष्ट्रीय नेताओं के खिलाफ अनाप-शनाप बोलते रहते हैं। अपने आप को पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री की नाक का बाल समझते हैं। एक मई के बाद अपनी गाड़ी से लाल बत्ती हटाने से इनकार कर दिया। पुलिस को चालान करना पड़ा। पहले जिहाद की धमकी दी और एक नया पाकिस्तान बनाने की माँग की। कहा कि नरेंद्र मोदी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उनको और मुसलिम समुदाय को कष्ट देने के लिए बदले की भावना से कानून बना रहे हैं। उनका कहना है कि वह जो लालबत्ती इस्तेमाल कर रहे हैं, टीपू सुल्तान मसजिद के शाही इमाम के नाते, कोई सरकार उनका यह अधिकार नहीं ले सकती। यह उनके पिता को बर्तानिया सरकार ने दिया था और यह उनके धार्मिक पद की विरासत है। उनका यह भी कहना था कि मुख्यमंत्री ने उनको लाल बत्ती इस्तेमाल करते रहने को कहा है। कुछ समय बाद कहा कि अब लालबत्ती हटा रहा हूँ, क्योंकि मुख्यमंत्री ने एक मंत्री चौधरी द्वारा ऐसा कहलवाया है। इस तरह की तुनकमिजाजी और बड़बोले नहीं समझ पाते हैं कि कानून के हाथ लंबे हैं। अब यह भी समाचार आया है कि टीपू सुलतान की मसजिद चलानेवाले ट्रस्ट ने उनकी इन हरकतों से आजिज आकर उनको पद से हटा दिया है। उनकी जिद है कि ट्रस्ट को उन्हें पद से हटाने का कोई अधिकार नहीं है। खैर, यह अलग मामला है। कुछ सांसद और विधायक यह कहते सुने गए कि हमको टोल पर इंजतार करना पड़ता है तथा हमारे कार्यक्रमों में विघ्न पड़ता है। मानो अन्य नागरिकों को कोई काम ही नहीं है। सत्ताधारियों को भी धैर्य रखना पड़ेगा।

लालबत्ती की हवश हमारी सामंती मानसिकता की परिचायक है। कहने को तो प्रधानमंत्री ने कह दिया कि देश का हर नागरिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है। वी.आई.पी. कल्चर आसानी से नहीं जाता है। कोशिश करनी पड़ेगी। समभाव और समरसता की भावना को जहन में उतरने में समय लगेगा। कुछ वर्ग दशकों से वी.आई.पी. कल्चर की मलाई लूटते रहे हैं, उसे छोड़ना आसान नहीं है। उनकी संतानों में भी इसी प्रकार की मानसिकता विकसित हो जाती है। कानून को इस दिशा में सतर्क रहना पड़ेगा। सुविधाएँ सभी को प्राप्त हो सकें, यह सुशासन का दायित्व है। हम कुछ विशेष हैं, दूसरों से भिन्न ही नहीं कुछ ऊपर हैं, यह भावना बहुतों में व्याप्त है। हम देखते हैं कि गाड़ियों पर लिखा रहता है, आर्मी,

प्रेस, जज, एसडीएम, सीए आदि। कहीं-कहीं लिखा दिखता है, यादव, गुज्जर, जाट, कावेटा, पंडित आदि-आदि। इसी प्रकार कारों या अन्य यातायात के साधनों के नंबर अलग-अलग रंगों में तथा भिन्न-भिन्न प्रकार से दिखाई देते हैं, वैसे कानून का निर्देश है कि किस प्रकार नंबर प्रदर्शित होने चाहिए। इसके पीछे भी यही भाावना है कि हम विशिष्ट हैं। व्यवहार और आचरण में जब तक अपने को अभिजात वर्ग होने का अहं एवं प्राथमिकता पाने की चाह नहीं जाएगी, तब तक लोकतंत्र की समरसता और समभाव की परंपरा पनप नहीं सकेगी।

जस्टिस करनान का शिगूफा समाप्त होने में नहीं आ रहा है। कोलकाता से वह हवाई जहाज से अपनी व्यक्तिगत यात्रा पर चेन्नई चले गए। वहाँ एक सरकारी अतिथिगृह में ठहरे। ऐसा हो सकता है कि उनको भनक लग गई हो कि अब शायद शीर्ष न्यायालय सख्त कदम उठाए। सर्वोच्च न्यायालय को अदालत की अवमानना पर कोलकाता उच्च न्यायालय के जज करनान को ६ माह का कड़ा दंड देना पड़ा और शीर्ष न्यायालय ने पश्चिम बंगाल पुलिस को उनको गिरफ्तार कर जेल भेजने का आदेश दिया। तब तक देर हो चुकी थी। प्रात: पुलिस ने तो हवाई अड्डे तक उनको सुरक्षा प्रदान की थी। चेन्नई पहुँचने के बाद वे प्रेस से भी मिले, जैसा कि वे प्रचार की दृष्टि से पिछले दिनों में बराबर कर रहे हैं। चेन्नई में उनके बारे में खबर उड़ाई गई कि वे आंध्र प्रदेश के तीर्थस्थल कलाहस्ती जा रहे हैं, पर वहाँ वे नहीं पहुँचे। उनके एक सहयोगी ने कहा कि उनका मोबाइल ही शायद वहाँ पहुँचा हो। उसके अनुसार वह उत्तर दिशा में प्रस्थान कर गए, शायद नेपाल चले गए हों या हो सकता है कि वे बँगलादेश पहुँच गए हों। उसके बाद एक खबर आई कि वे श्रीलंका चले गए हैं। सजा से बचने के लिए एक उच्च न्यायालय का जज भगोड़ा हो गया। स्थिति हास्यास्पद होती जा रही है। उनके वकील को शीर्ष न्यायालय के चीफ जस्टिस को कहना पड़ा कि आप बार-बार न्यायालय के काम में बाधा पहुँचा रहे हैं, अतएव आपको अदालत से बाहर जाने के आदेश देने पड़ेंगे। रजिस्ट्री में पहले अपना मामला दर्ज कराएँ और वही संवैधानिक बेंच, जिसने सजा सुनाई है, इस पर विचार कर सकती है। वैसे जस्टिस करनान अभी भी अपनी कोई गलती मानने को तैयार नहीं हैं, उनका कहना है कि शीर्ष न्यायालय के जुरिडिक्शन से वह बाहर हैं। सर्वोच्च न्यायालय ही उनको परेशान कर रहा है। इस प्रकार न्यायालय की अवहेलना हो रही है।

पं. बंगाल पुलिस के अधिकारी चेन्नई में अपने आपको असहाय पाते हैं, क्योंकि तमिलनाडु पुलिस की सक्रिय मदद के बिना वह अपराधी को पकड़ने में सफल नहीं हो सकती है। स्थानीय पुलिस कहाँ तक और कैसी मदद कर रही है, कहा नहीं जा सकता है। विचित्र बात यह है कि करनान की लगातार फोटो आ रही हैं। पिछले एक वर्ष से काफी विवादों में हैं, फिर भी लापता हो गए। उनकी निगरानी नहीं हुई, इस विवाद के दौरान उनके साथ रहनेवाले सुरक्षाकर्मी भी बेकार साबित हुए। लगता है कि वे तमिलनाडु में ही कहीं छिपे हैं और २२ जून की अपनी औपचारिक सेवानिवृत्ति के उपरांत संवैधानिक गतिरोध पैदा करना चाहेंगे। वे अपने अनुसूचित जाति का होने के कारण मामले का राजनीतीकरण करने पर कटिबद्ध हैं। उनकी बराबर यही माँग रही है कि उनको केवल महाअभियोग द्वारा ही पद से हटाया जा सकता है। सेवा से रिटायर होने के बाद तो महाभियोग निष्फल हो जाता है। वे एक निवर्तमान उच्च न्यायालय के जज की पेंशन और अन्य सुविधाओं के हकदार हो जाते हैं। किस करवट ऊँट बैठेगा, देखना है, क्योंकि यह इस तरह का पहला मामला है। जो भी हो, न्यायालय की साख को बहुत बड़ा धक्का लगा है और शीर्ष न्यायालय की किरकिरी हो रही है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है।

कभी ऐसा लगता है कि कुछ लोग अपने को कानून से ऊपर मान बैठे हैं। आर्ट ऑफ लिविंग के सांस्कृतिक आयोजन के कारण जमुना का जो पुश्ता बरबाद हुआ और जिसके पुनर्जीवन के लिए एक विशेष समिति ने चालीस करोड़ की राशि का अनुमान लगाया है। 'आर्ट ऑफ लिविंग' के गुरु ने न केवल अनुमान को गलत बताया और कहा कि अगर इस प्रकार की संभावना थी तो डी.डी.ए. ने उन्हें अनुमति क्यों दी, वह जुरमाना भरे। यही नहीं उनकी ढिठाई यहाँ तक दिखी कि हरित ट्रिबूनल, जो एक न्यायालय है, उसको दोषी ठहराते हुए कहा कि जुरमाना हरित ट्रिबूनल पर होना चाहिए। उल्टा चोर कोतवाल को डाटे, ऐसा दिखाई देता है। उनकी सोच है कि जब मामला हरित ट्रिबूनल के सामने आया तो उन्होंने रोक के आदेश क्यों नहीं दिए। वास्तव में ट्रिबुनल ने उन्हें बहुत रियायत की थी, वरना पूरे आयोजन पर रोक का आदेश वह कर सकता था। यह भी एक प्रकार से न्यायालय की अवमानना ही है। आवयश्क है सुशासन स्थापित होने के लिए कि देश में कानून का शासन है और कानून सर्वोपरि है, यह प्रतीति हर एक को होनी चाहिए।

महिलाओं का उत्पीड़न और हमारा समाज

जस्टिस वर्मा कमेटी के सुझावों के अनुसार, निर्भया कांड के उपरांत महिलाओं की सुरक्षा विषयक कानूनों में परिवर्तन हुआ, किंतु परिस्थितियों में कोई खास सुधार दिखाई नहीं पड़ता। निर्भयाकांड की ही पुनरावृत्ति अभी हरियाणा में हुई, सामूहिक बलात्कार के बाद लड़की की जान ले ली। लड़की अनुसूचित जाति की थी। एक अनुसूचित जाति का ही लड़का उसको परेशान करता था। लड़की के बाप का कहना है कि स्थानीय पुलिस ने उसकी शिकायत का संज्ञान नहीं लिया। मुख्य आरोपी और उसके कुछ अन्य साथी पकड़े गए हैं। निर्भयाकांड ने दिल्ली को ही नहीं, बल्कि पूरे देश को आंदोलित कर दिया था। कुछ ही दिन पहले शीर्ष न्यायालय ने निर्भयाकांड के आरोपियों की मृत्युदंड की सजा बहाल रखी। आजीवन कारावास और मृत्युदंड का भय भी बहुत प्रभावी नहीं हो रहा है। मृत्युदंड रहना चाहिए या नहीं, इस विवाद में हम नहीं जाना चाहते। हम समझते हैं कि कुछ जघन्य अपराधों के लिए आज की परिस्थिति में अभी मृत्युदंड की सजा रहनी चाहिए। केवल दंड का भय ही काफी नहीं है। प्रतिदिन आप देखें, अखबार में आठ-दस बच्चियों और महिलाओं के उत्पीड़न के मामले दिखाई देंगे। सौतेले बाप द्वारा दस साल की लड़की को गर्भ और गर्भ की समय सीमा के कारण उसके गर्भपात के लिए कानूनी आवश्यकता। पति-

पत्नी की तरह रहनेवालों में भी इसी प्रकार की वारदातें और किशोर अपराध बढ़ रहा है। बालिकाओं के पैदा होते ही अथवा दो-एक महीने के बाद उनको कूड़े के ढेर या अन्य स्थान पर उनके भाग्य भरोसे छोड़ देते हैं। कभी समाचार आते हैं कि प्रेमी के साथ पत्नी द्वारा पति की हत्या की साजिश तो कभी पति द्वारा संदेह के कारण पत्नी की हत्या। इस प्रकार की घटनाएँ सभी राज्यों में हो रही हैं, कहीं ज्यादा तो कहीं कम। वरिष्ठ महिलाएँ, जो अकेली रहती हैं वे असुरक्षित महसूस करती हैं। यह स्थिति केवल गरीब, अनपढ़ या नीचे के तबकों की ही नहीं है। पढ़े-लिखे, संपन्न अभिजात घरों में भी ये घटनाएँ हो रही हैं। दहेज की माँग तो कुछ ही मामलों में कारण हो सकती है। यह सामाजिक विघटन क्यों? क्या सिनेमा और फिल्मों का असर है? हो सकता है मीडिया की पहुँच के कारण अधिक अपराधों की रिपोर्टिंग होती हो, पर सच यह भी है कि दूर-दराज और गाँवों के ऐसे मामले जब तक सनसनीखेज न हों, मीडिया में भी बिना रिपोर्ट के रह जाते हैं। कभी-कभी लगता है कि समाज बीमार होता रहा है। क्या इसके कुछ सोशियोलॉजिकल कारण हैं? कभी-कभी जायदाद के झगड़े ऐसे वारदात के कारण बन जाते हैं। पुलिस इन सबकी पूरी तरह रोकथाम नहीं कर सकती है। वैसे पुलिस भी महिला उत्पीड़न में दोषी पाई जाती है। हम समझते हैं, समग्र दृष्टि से इस समस्या की कोई वैज्ञानिक पहल होनी चाहिए। आश्रमों और मठों में भी इस प्रकार की घटनाएँ होती रहती हैं। कई महंत, धर्माचार्य जेल में हैं। फिर भी सामाजिक अनुशासन में सदैव धर्म की भूमिका रही है। आजकल धर्माचार्य धन कमाने में, ऐश्वर्य से रहने और राजकीय सत्ता का अपने ढंग से दुरुपयोग करने में लगे हैं, तथाकथित उसे सांस्कृतिक आयोजन का रूप देने में ही अपने दायित्व की इतिश्री समझते हैं। उनका स्थायी प्रभाव कैसा और कितना है, यह देखना जरूरी है। हम सांस्कृतिक आयोजनों द्वारा उदात्त वृत्तियों को जाग्रत् करें। धर्माचार्यों को सामाजिक जागरण का काम करना चाहिए, ताकि व्यक्तियों की वृत्तियों में सुधार हो। भक्ति आंदोलन चाहे दक्षिण भारत के हो अथवा उत्तर भारत के, वहाँ हम संतों, महात्माओं और गुरुओं को जनता के बीच में देखते हैं। आज वे जनता से उतने दूर दिखाई पड़ते हैं, जितने कि नेता और राजपुरुष। दूसरा पक्ष है शिक्षा का। नैतिक मूल्यों और महिलाओं के प्रति आदर-दृष्टि महत्त्वपूर्ण है, यह प्रयास प्रारंभिक शिक्षा से होना चाहिए। तीसरी बात जिस पर हम जोर देना चाहेंगे, वह प्रशासन को मजबूत करना, पुलिस को सक्षम बनाना, अधिक संवेदनशील और नागरिक केंद्रित तथा जनता का विश्वास प्राप्त करने में सफल हो सके, इस योग्य बनाना है। ये सब पुलिस सुधारों के अंतर्गत आते हैं। आज हालात ऐसे हैं कि आतंकवादी इलाकों में ही नहीं, साधारण क्षेत्रों में भी अकसर पुलिस पिट जाती है और उसके हथियार छीन लिये जाते हैं। पुलिस अधिकारियों का घेराव हो जाता है। खनन माफिया, भू माफिया, शराब माफिया, टिंबर माफिया पुलिस पर भारी पड़ते हैं। आज पुलिस का इस्तकबाल खत्म हो गया है। एक तरफ पुलिस आत्मविश्वास खो बैठी है, दूसरी तरफ जनता का विश्वास भी, अतएव पुलिस को जातिवादी राजनीति से मुक्त कराना आवश्यक है। यह एक बड़ा एजेंडा है। अंत में हम कहना चाहेंगे कि हमारे समाज की विकृत स्थिति इस कारण है, चूँकि सामाजिक पुनर्जागरण की जो प्रकिया राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, वीर शीलगंझ, गांधी आदि महारथियों की प्रेरणा से प्रारंभ हुई थी, वह १९४७ के बाद अधूरी रह गई। यह मान लिया गया कि स्वराज के बाद सब स्वत: ठीक हो जाएगा। प्रबुद्ध नागरिकता और जन सहभागिता को सब लोग भूल गए तथा समझने लगे कि अब सरकार अपनी है, वही सब करेगी, और ठीक ही करेगी। क्या अब इस सामाजिक पुनर्जागरण की अधूरी प्रक्रिया को पूरी करने के लिए कोई मार्गदर्शक मिलेगा? प्रधानमंत्री की 'नए भारत' की अवधारणा एक महती चुनौती है। सामाजिक आंदोलन व मानसिक बदलाव उसके अभिन्न अंग हैं।

पुस्तकों की दुनिया में शशि थरूर की एक पुस्तक पिछले दिनों प्रकाशित हुई 'An Era of Darkness' अथवा 'अंधा युग या अँधेरे का जमाना'। पुस्तक का उपनाम है 'The British Empore in India', इसका विषय भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का आकलन है। इसका प्रारंभ ऑक्सफोर्ड यूनियन की एक वाक् प्रतियोगिता से हुआ। ऑक्सफोर्ड यूनियन ने शशि थरूर को एक प्रस्ताव पर बोलने को कहा। वह 'Britain Owes reparations to Her Former Colonies' यानी ब्रिटेन देनदार है अपनी पूर्व उपनिवेशों को, भारत भी उनमें से एक है। अतएव पुस्तक में डिबेट की शैली कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है। शशि थरूर अच्छे लेखक हैं। यह डिबेट बहुत चर्चा में रही। लोकसभा की स्पीकर ने डिबेट पर थरूर को बधाई दी। प्रधानमंत्री मोदी ने भी थरूर को सभी बातें उचित स्थान पर और उचित समय कहने पर बधाई दी। ब्रिटिश शासन के इतिहास में काफी शोध के उपरांत इस वाद-प्रतिवाद के भाषण को पुस्तक का रूप मिला। पुस्तक के लिए शशी थरूर बधाई के पात्र हैं। पुस्तक ब्रिटिश साम्राज्य के भारतीय शासन की पोल खोलती है। उदाहरण और दृष्टांत देकर अपने फैसलों को, जिन्हें ब्रिटिश साम्राज्य अपनी उपलब्धियाँ बताता है तथा अंग्रेजी सलतनत को भारत के लिए वरदान कहता है, जैसे रेलवे, अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली आदि, थरूर ने विश्लेषण कर यह दिखाया है कि ये सब कार्य अंग्रेजी सरकार ने अपने स्वार्थ व हित के लिए किए और उससे किस प्रकार भारत का आर्थिक शोषण हुआ। लेखक ने इतिहास के कुछ बंद पन्ने खोलकर रख दिए हैं। डॉ. बी.डी. बसु ने करीब ८६-९० साल पहले अपने ग्रंथ 'Rise of Christion Power in India' तथा अन्य कृतियों में यह कोशिश की थी। वह जमाना दूसरा था। पं. सुंदरलाल ने भी अपने ग्रंथ 'भारत में अंग्रेजी राज' में कच्चा चिट्ठा खोलने की कोशिश की तो विदेशी सरकार ने उसे तत्काल जब्त कर लिया। शशि थरूर ने आज के संदर्भ, नई खोज और वैश्विक वातावरण में ब्रिटिश शासन की भूमिका का प्रस्तुतीकरण किया है। भारत के नागरिकों और विशेषतया विद्यार्थियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। हिंदी तथा अन्य भाषाओं में इसका अनुवाद होना आवश्यक है। प्रकाशक रूपा (एलेफ) ने पुस्तक को काफी आकर्षक और साज-

सज्जा से छापा है, जो तुलना में वैश्विक स्तर का माना जाएगा। वैसे यह पुस्तक ब्रिटेन के निवासियों तथा अन्य साम्राज्यवादी देशों में वहाँ के विद्यार्थियों को भी पढ़नी चाहिए, ताकि उनके पूर्वजों की उपनिवेशों, विशेषतया भारत को, तथाकथित देन की सही तसवीर उनके सामने आ सके। हाँ, यह कहना भी उचित होगा कि कुछ फैसले ब्रिटिश सरकार के ऐसे हुए, जिनका लाभ दीर्घकालीन दृष्टि से देश को हुआ, जैसे डलहौजी द्वारा डिपार्टमेंट ऑफ आरकेलॉजी, जिससे देश की बहुत प्राचीन धरोहर का पता लगा और संरक्षण हो सका।

शाह का आवाहयामि

रमेशचंद्र शाह हिंदी जगत् की जानी-पहचाने हस्ती हैं, जो बहुआयामी प्रतिभा के धनी हैं। वे कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और समालोचक हैं। अन्य विधाओं में भी उनकी देन है। अनेक सम्मान और पुरस्कार उन्हें प्राप्त हो चुके हैं। पिछले दिनों उनके संस्मरणों का एक संकलन 'आवाहयामि' प्रकाशित (किताब घर प्रकाशन, दिल्ली) हुआ है। उसमें करीब २६ संस्मरण हैं। उनका अंतिम लेख 'राग भोपाली' है, जो उन्होंने भोपाल के संबंध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है, जहाँ वे सेवा से निवृत्त होकर साहित्य सेवा में संलग्न हैं। रमेशजी की ऐसी शैली और शब्दों का चयन ऐसा प्रभावी है कि वह पाठक को बाँध लेता है। रमेशचंद्र शाह के पास पत्रों की भी कमी नहीं है, संस्मरण लिखने में आवश्यकतानुसार उनका उपयोग करते हैं। रमेशचंद्र शाह जिनके संस्मरण लिख रहे हैं, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को उकेरते उनकी स्वयं की शंकाए हैं, या किसी अन्य विद्वान् के विचारों के बारे में उनको कुछ संकोच है तो वह भी सामने आते हैं, और वे आगे विचार-विमर्श का संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। हमने तो शाह की इस पुस्तक को अपने इस संग्रह में शामिल किया है, जिसके पन्ने कभी-कभी अनायास खोलने की इच्छा होती है। साहित्य के विद्यार्थियों के लिए तो 'आवाहयामि, अत्यंत मूल्यवान है, वह उनकी उत्सुकता और अधिक जानने की इच्छा को प्रेरित करेगी।

डॉ. गोयनका की प्रेमचंद साहित्य को और देन

प्रेमचंद उर्दू और हिंदी दोनों में लिखते थे। वास्तव में उनका लेखन पहले उर्दू से शुरू हुआ, धीरे-धीरे हिंदी में आए। किंतु दोनों भाषाओं में वे जीवनपर्यंत लिखते रहे। डॉ. कमल किशोर गोयनका का प्रेमचंद साहित्य विषयक कार्य अद्वितीय है। उन्होंने प्रेमचंद के साहित्य और कृतित्व को बहुआयामी दृष्टि से देखा है, अध्ययन एवं शोध किया है। डॉ. गोयनका की पुस्तक प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू कहानियों का एक नया संस्करण प्रकाशित हुआ है (प्रभात प्रकाश, दिल्ली)। पहले संस्करण की भूमिका अत्यंत विद्वत्तापूर्ण और नई जानकारी देती है। इस नए संस्करण की भूमिका में उन्होंने अपने गहन शोध और अध्ययन के उपरांत नई सामग्री दी है, जो प्रेमचंद के विषय में कई अन्य भ्रांतियों का स्पष्टीकरण करती है। उनकी पैनी लेखनी को दाद देनी पड़ती है। दो भाषाओं में लिखकर कैसे वे पूरे देश से जुड़ना चाहते थे और किस प्रकार एक संवेदना को दो भाषाओं में प्रस्तुत करते हैं, यह एक बड़ा प्रश्न है। डॉ. गोयनका ने प्रथम बार प्रेमचंद को उर्दू से हिंदी तथा हिंदी से उर्दू में आई कहानियों को देवनागरी लिपि में एक साथ प्रस्तुत किया है। इस प्रकार संबंधित प्रश्नों पर विचार-विमर्श करने में सहायता मिलेगी। प्रेमचंद के शोधकर्ताओं को यह डॉ. गोयनका की विशेष देन है।

'लूर' नामक एक साहित्यिक, सांस्कृतिक अर्धवार्षिक पत्रिका 'लूर', गोपालबाड़ी, चौपासनी, जोधपुर-३४२००८ (राज.) से प्रकाशित हो रही है। संपादक और प्रकाशक डॉ. जयपाल सिंह राठौड़ हैं। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राजस्थान फोकलोर स्टडी ऐंड रिसर्च सोसाइटी की स्थापना हुई है और उसी के अंतर्गत जन साहित्य और संस्कृति में शोधकार्य होगा। 'लूर' का कालबेलिया विशेषांक देखने को मिला। सपेरा, जोगी, नाथ, कालबेलिया नाम सब एक ही जगह के विभिन्न विशेषताओं को रेखांकित करते हैं। संपादमीय के अनुसार साँपों के बीच रहने से सपेरा, वैराग्य की भावना को लेकर चलने के कारण जागी है, नाथ परंपरा, जिसमें गुरु गौरखनाथ की परंपरा व संदेश को मानने के कारण नाथ कहलाए और संभवत: काल से खेलनेवाले, भयंकर विष-नागों के साथ खेलने के कारण कालबेलिया कहलाए। इनके पास जंगल और खेतों में अस्थायी डेरों में रहने के कारण जड़ीबूटी व झाड़फूँक से रोग निदान के अचूक नुस्खे हैं। संपादक के अनुसार आज भी इनमें परंपरागत बातें जीवंत मिलती हैं। जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। जनजातियों पर खोज करने के लिए विशेषांक में कालबेलिया समाज और संस्कृति पर एक लेख है तथा एक लेख कालबेलिया लोकगीतों में जीवन संदर्भ, जो उपयोगी है। कलबेलिया गीत संकलित किए गए हैं। कलबेलिया नृत्य तो अकसर शहरों के बड़े आयोजनों में भी देखने को मिलता है, जो काफी लोकप्रिय है; हालाँकि कम ही लोग होंगे जो इस समाज के बारे में जानते हों। राजस्थान फोकलोर स्टडी एवं रिसर्च सोसाइटी के कार्यक्षेत्र को विस्तारित करने के लिए राजस्थान सरकार और भारत सरकार के अनुसूचित जनजाति और सूचित जाति मंत्रालय से सहयोग व सहायता की आवश्यकता है। विश्वविद्यालयों के सोशियोलॉजी और एंथ्रोपालॉजी विभागों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। कालबेलिया विशेषांक की छपाई और प्रस्तुति अति सुंदर है। करीब २०० पृष्ठ के विशेषांक का मूल्य दो सौ रुपया उचित है। गीतों को ध्यान से पढ़ने पर पता चलता है कि उनमें भी वही उल्लास और पीड़ाएँ हैं, जो तथाकथित समाज में पाई जाती हैं। हम उन्हें अछूत मानते हैं और वे इसी में संतुष्ट हैं। यह एक विडंबना ही है। 'लूर' के कुछ पिछले विशेषांक हैं, जो उल्लेखनीय हैं। मीरा विशेषांक, लोकदेवता तेजाजी विशेषांक, बंजारा लोकगीत विशेषांक, लोरी विशेषांक, बन्ना लोकगीत विशेषांक आदि जो उपलब्ध हैं। 'लूर' पत्रिका के संचालक को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि जिस सहयोग, समर्थन तथा मान की वह पात्र है, उसे प्राप्त होगा। प्रवासी राजस्थानी भाइयों से इस दिशा में पहल अपेक्षित है।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

क्या उसकी मृत्यु हो गई

● गुरुदत्त

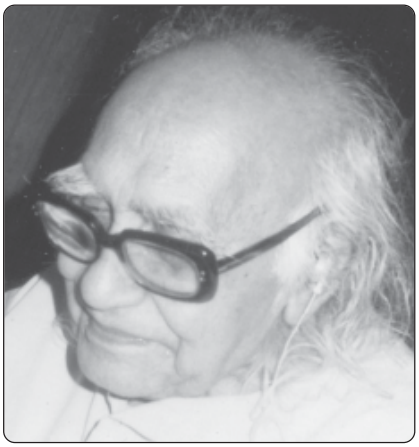

अब्दुल करीम, जो कि बचपन से ही पूर्वी अफ्रीका में नैरोबी में रहता था, सन् १९३८ में बंबई वापस आया। वह अपने पिता के साथ अफ्रीका गया था। उस समय उसकी आयु पाँच वर्ष की थी। उसका पिता भारत में दिवाला निकाल अपनी किस्मत आजमाने के लिए वहाँ गया था।

अब्दुल करीम अभी छोटा ही था कि उसके माता-पिता का देहांत हो गया था। उसने बंबई के एक संपन्न 'खोजा' परिवार की कन्या से विवाह किया, जिससे उसके दो पुत्र हुए। सन् १९३८ में उसके श्वसुर का देहावसान हुआ, तो उसकी पत्नी, सास तथा अन्यान्य रिश्तेदारों के जोर देने पर उसने अपना अफ्रीका का व्यापार बंद कर दिया और सारी संपत्ति को एकत्र कर वह पूँजी के रूप में लेकर बंबई आ गया।

बंबई आकर उसने अपने श्वसुर के व्यापार को आगे बढ़ाया और उसमें अपनी भी पूँजी लगाकर वह बहुत बड़ा सरकारी ठेकेदार बन गया।

ज्यों-ज्यों कार्य बढ़ता गया त्यों-त्यों संपत्ति में भी वृद्धि हुई और उसके साथ ही अब्दुल करीम का लालच बढ़ता गया। सौभाग्य से सन् १९३९ में उसके नाना का अपने ग्राम में देहावसान हुआ, तो वह भी उसके लिए थोड़ी-बहुत संपत्ति छोड़ गया। उस पर अधिकार करने के लिए अब्दुल करीम उनके गाँव गया। वहाँ जाकर उसे विदित हुआ कि उसके नाना ने कई वर्ष पूर्व समीप के कस्बे के किसी व्यक्ति के पास लगभग ७०० रुपए में कुछ जमीन बेची थी और उसकी उजरदारी करने के लिए अभी समय है।

यह भूमि पाँच व्यक्तियों ने मिलकर खरीदी थी और अब तक उन्होंने उस पर सुंदर भवन भी निर्माण कर लिए थे। इस प्रकार कुल मिलाकर वह भूमि अब दस लाख की बन गई थी। अब्दुल करीम वहाँ गया, तो उस संपत्ति को देख उसके मुख में पानी भर आया। उसने निश्चय कर लिया कि उस संपत्ति पर वह अपने अधिकार का अभियोग प्रस्तुत करेगा।

मुसलिम उत्तराधिकार कानून के अनुसार पुत्री का पुत्र भी अपने नाना की संपत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है। जिस समय भूमि बेची गई थी, उस समय अब्दुल करीम जीवित था, इसलिए उसकी संरक्षिका के रूप में सेल-डीड में उसकी माता के हस्ताक्षर होने आवश्यक थे, किंतु खरीदारों में से कोई भी नहीं जानता था कि वृद्ध का कोई नातेदार जीवित है। इस प्रकार वह सेल-डीड अपूर्ण समझा गया।

जब खरीदारों को इस विषय का ज्ञान हुआ, तो उन्होंने कानूनी सलाह ली। तब उन्हें विदित हुआ कि इसमें उनका पक्ष दुर्बल है, अत: उन्होंने अब्दुल करीम से ही समझौता करने का यत्न किया। अभियोग वापस करने के लिए उन्होंने मिलकर अब्दुल करीम को दस हजार रुपए देने चाहे, किंतु उसने स्वीकार नहीं किए। उसका यह कहना कि भूमि की बिक्री वैधानिक ढंग से नहीं हुई है, अत: उनको चाहिए कि उस भूमि पर बने भवनों को वहाँ से उठा लें।

इस प्रकार दो वर्ष तक अभियोग चलता रहा, किंतु किसी प्रकार का निर्णय न हो सका।

अब्दुल करीम ने स्थानीय वकील को अपनी ओर से कचहरी में उपस्थित होने के अधिकार दे रखे थे। वह स्वयं भी यदा-कदा उपस्थित हो जाता था।

यह लगभग सन् १९४२ की बात होगी कि उन प्रतिवादियों ने यह अनुभव किया कि मुकदमा टलता जा रहा है और उससे उनका पर्याप्त धन व्यय हो रहा है। अत: सबने निश्चय किया कि अभियोग को वापस लेने के लिए अब्दुल करीम को पचास हजार रुपए दे दिए जाएँ। उसके सम्मुख यह प्रस्ताव उस समय प्रस्तुत करने का निर्णय हुआ, जब अगली पेशी पर, अब्दुल करीम वहाँ आनेवाला था।

अगली पेशी के दिन अभियोग की सुनवाई के लिए दोनों पक्षों के वकील कचहरी के बॉर-रूम में बैठे थे कि प्रतिवादियों में से किसी ने वादी के वकील से पूछा, ''आज अब्दुल करीम बंबई से आया है क्या?''

''मुझे पता नहीं।'' अब्दुल करीम के वकील ने उत्तर दिया।

''क्या वह आज व्यक्तिगत रूप में कचहरी में उपस्थित होगा?''

''मैं कुछ नहीं कह सकता।''

''क्या वह वास्तव में जीवित भी है?'' एक अन्य प्रतिवादी ने

हँसी-हँसी में वकील से पूछ लिया।

''क्या?'' आश्चर्यचकित हो वकील ने पूछा।

उस व्यक्ति ने बात को बढ़ावा देते हुए कहा, ''कोई मुझसे कह रहा था कि पिछले सप्ताह अब्दुल करीम की बंबई में मृत्यु हो गई है।''

केवल हँसी में कहे गए उक्त वाक्य से प्रतिवादियों के वकीलों में से एक के मस्तिष्क में यह विचार आया कि कम-से-कम इससे कुछ समय के लिए अभियोग स्थगित किया जा सकता है। अत: जब अभियोग सुनने का समय आया, उसने अपनी आपत्ति प्रस्तुत करते हुए कहा कि यह अफवाह है कि वादी की मृत्यु हो गई है। अत: उसके वकील जब तक शपथपूर्वक यह लिखकर नहीं दे देते कि वादी जीवित है, तब तक काररवाई आगे नहीं बढ़ाई जा सकती।

हाईकोर्ट में अपील की गई और वहाँ भी उसको अस्वीकार किया गया। इन दोनों कचहरियों में सिद्ध करने की बात यह थी कि यह अपील करनेवाला अब्दुल करीम क्या वही आदमी है, जो मुकदमा चलानेवाला था और क्या यह वही अब्दुल करीम है, जिसके नाना ने यह भूमि बेची थी और जिसके विषय में मुकदमा चला रहा था। हाईकोर्ट का निर्णय था कि नया मुकदमा दायर किया जा सकता है, यदि उक्त बात सिद्ध हो जाए। इसको सिद्ध करने के लिए छोटी कचहरी में नए सिरे से प्रार्थना-पत्र देना चाहिए।

वादी का वकील शपथपूर्वक लिखने के लिए उद्यत नहीं हुआ। न्यायाधीश ने यह अनुभव किया कि वादी का वकील इस विषय में अनिश्चित-मन है, तो उसने अभियोग को आगामी तिथि के लिए स्थगित कर दिया और वादी के वकील को कह दिया गया कि आगामी तिथि पर वह वादी को व्यक्तिगत रूप में प्रस्तुत करे। न्यायाधीश ने १५ दिन बाद की तारीख निर्धारित कर दी।

वादी के वकील ने अब्दुल करीम को तार द्वारा इस विषय में सूचना भेज दी। उसको सावधान कर दिया कि आगामी तिथि पर वह अनिवार्यतया व्यक्तिगत रूप में कचहरी में उपस्थित हो जाए।

अब्दुल करीम ने मध्य भारत, मद्रास, त्रावणकोर-कोचीन आदि विभिन्न स्थानों पर अनेक ठेके ले रखे थे और समय-समय पर अपने कार्य के निरीक्षण के लिए उसे इन स्थानों पर जाना पड़ता था।

अब्दुल करीम के सहायक को जब वकील का तार मिला, तो उसने वह रजिस्ट्री द्वारा लिफाफे में बंद कर वहाँ भेज दिया, जहाँ अब्दुल करीम के होने की संभावना थी, किंतु रजिस्ट्री के पहुँचने से पूर्व ही दुर्भाग्यवश अब्दुल करीम वहाँ से अन्यत्र चला गया था। वहाँ बिना खुले वह पत्र फिर अब्दुल करीम को री-डायरेक्ट कर दिया गया। परिणाम यह हुआ कि निश्चित समय तक अब्दुल करीम को वकील की सूचना का तार नहीं मिला और वह कचहरी में उपस्थित न हो सका।

जज ने वादी के वकील से पूछा, ''क्या अपने 'क्लाइंट' को कोर्ट की आज्ञा से अवगत कर दिया था?''

''जी हुजूर, मैंने उसको तार भेज दिया था, जिसकी रसीद यह है।'' उसने तार की रसीद प्रस्तुत कर दी।

''क्या आपको इसका उत्तर प्राप्त हुआ है?''

''नहीं श्रीमान्।''

''क्या आप जानते हैं कि उसकी मृत्यु नहीं हुई?''

''मैं कुछ नहीं कह सकता।''

इस पर जज कहने लगा, ''इस परिस्थिति में अभियोग की काररवाई आगे नहीं चलाई जा सकती। वादी के जीवित होने का प्रमाण प्रस्तुत करना आपका ही कर्तव्य है।''

''जनाब, कृपा कर मुझे कुछ समय और दे दीजिए। यदि वह जीवित हुआ, तो आगामी तिथि पर मैं उसे न्यायालय में उपस्थित कर दूँगा।''

इस प्रकार १५ दिन का समय और दे दिया गया, किंतु अब्दुल करीम मद्रास, त्रावणकोर, मध्य भारत के किन्हीं स्थानों में अपने कार्यनिरीक्षण के लिए भ्रमण कर रहा था। अत: इस बार भी उसको वकील की सूचना कि उसको व्यक्तिगत रूप में कचहरी में अनिवार्यतया उपस्थित होना है, नहीं मिली। यह सूचना उसको निश्चित तिथि के ठीक एक दिन बाद प्राप्त हुई।

आगामी तिथि पर भी जब अब्दुल करीम स्वयं कचहरी में उपस्थित नहीं हो सका, तो प्रतिवादियों के वकील ने जोरदार शब्दों में कह दिया कि इस स्थिति में अभियोग को किसी प्रकार भी आगे नहीं चलाया जा सकता।

अब न्यायाधीश के लिए और कोई चारा नहीं रहा और उसको निर्णय देना पड़ा कि वादी मर चुका है।

जब यह सूचना अब्दुल करीम के पास पहुँची, तो उसने जज के उक्त निर्णय के विरुद्ध अपील दायर करने के लिए अपने वकील को कह दिया। अपील सेशन कोर्ट में दायर हो गई, परंतु स्वीकार नहीं हुई।

हाईकोर्ट में अपील की गई और वहाँ भी उसको अस्वीकार किया गया। इन दोनों कचहरियों में सिद्ध करने की बात यह थी कि यह अपील करनेवाला अब्दुल करीम क्या वही आदमी है, जो मुकदमा चलानेवाला था और क्या यह वही अब्दुल करीम है, जिसके नाना ने यह भूमि बेची थी और जिसके विषय में मुकदमा चला रहा था। हाईकोर्ट का निर्णय था कि नया मुकदमा दायर किया जा सकता है, यदि उक्त बात सिद्ध हो जाए। इसको सिद्ध करने के लिए छोटी कचहरी में नए सिरे से प्रार्थना-पत्र देना चाहिए।

अब्दुल करीम ने यह विचार किया कि यदि वह अपने आपको अपने नाना का दुहिता सिद्ध करने के लिए गाँव के और बंबई तथा अफ्रीका के साक्षी भी उपस्थित कर दे, तो नया मुकदमा करने का समय नहीं था। पहले ही मुकदमा करने की अवधि व्यतीत हो चुकी थी। अत: अब्दुल करीम को संतोष करना पड़ा और कानून से वह मृत ही घोषित रहा।

देव, दवे को अभी नहीं बुलाना था

● प्रभात झा

अनिल माधव दवे देव के पास चले गए। अभी नहीं जाना था। जाना तो सबको है, पर किसी होनहार का असमय जाना आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता। वे जनसंघ के प्रथम अध्यक्ष बड़े साहब दवे के पौत्र थे। उज्जैन का बड़नगर उनका पारिवारिक गृहनगर रहा है। इंदौर उनकी शिक्षा-दीक्षा का स्थान रहा। वे छात्र राजनीति में भी अग्रणी रहे। वहीं से वे संघ के प्रचारक भी थे। मृदुभाषी, संयमवाणी और परिणामकारी कार्य उनके जीवन की विशिष्टता थी।

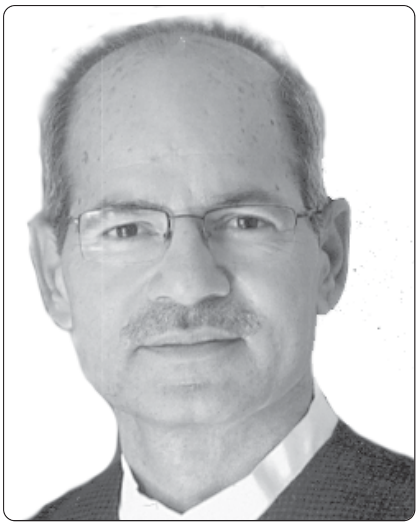

(६ जुलाई, १९५६—१८ मई, २०१७)

मेरा उनका संपर्क लगभग ३५ वर्षों का है। मैंने उन्हें संघ के प्रचारक के रूप में जहाँ इदौर में देखा वहीं वे भोपाल में हमारे विभाग प्रचारक थे। कठोर जीवन जीने के वे आदी थे। नपे-तुले शब्दों में वार्त्ता उनका नैसर्गिक स्वभाव था। वे नेपथ्य के पथ्य थे। अनेक गुणों के गुणी होने के बावजूद वे अपेक्षारहित भाव से काम करने के आदी थे। वे काम के धुनी थे। ऊर्जा का सकारात्मक प्रयोग करने में विश्वास करते थे। राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करते थे। उन्हें जो भी कार्य दिया गया, वे उस कार्य के चरित्र का अध्ययन करते थे, उसके बाद उस कार्य के चरित्र को अपने चरित्र से मेल-मिलाप कर कार्य को जमीन पर उतारते थे। अध्ययन, स्वाध्याय और विजयी भाव उनके स्वभाव में था। वे परास्त और अस्त की भावना से कोई कार्य नहीं करते थे। किसी भी कार्य का प्रारंभ वे उदयजीत की भावना से करते थे।

विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध, नैतिक साहस से युक्त और समय के साथ समयबद्ध रहकर कार्य के अनुरूप दवेजी व्यक्तियों को जुटाते थे। टोली बनाकर कार्य करना उनका स्वभाव था। वे समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त प्रदूषण को दूर करने का प्रयत्न करते थे। समाज में व्याप्त प्रदूषण से ही उनका स्वभाव और प्रकृति पर्यावरण की ओर बढ़ा। वे प्रकृति का संरक्षण भारतीय संस्कृति की पद्धति से, जिनका वेद-पुराण और शास्त्रों में वर्णन है, से करने में विश्वास रखते थे। उनकी मूल मान्यता थी कि भारत की समस्याओं का निदान भारतीय पद्धति से होगा, न कि पाश्चात्य पद्धति से। उनकी प्रकृति का अंदाजा इसी बात से लगता है कि वे भोपाल में जहाँ रहते थे, उसका नाम ही 'नदी का घर' रखा था। नदियों के संवर्धन और संरक्षण को उन्होंने अपने जीवन के कार्य की प्राथमिकता में रखा।

बहुत कम लोगों को जानकारी होगी कि अनिल माधव दवेजी हवाई जहाज के पायलट थे। उन्होंने हवाई जहाज उड़ाया भी, लेकिन समाज की पीड़ा और दयनीय स्थिति ने उन्हें इस बात पर मजबूर किया कि जहाज उड़ाने से अच्छा समाज के पीड़ितों के लिए जमीन पर रहकर काम किया जाए। वे संघ से जब राजनीति में आए तो उनका पाला तत्कालीन मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह से पड़ा, जो लगातार १० वर्षों से मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। उन्हें राजनीतिक तौर पर परास्त करना कठिन था। लेकिन उमा भारतीजी के नाम को आगे कर राजनीतिक युद्ध की सारी तैयारियाँ एक छोटे से बँगले में बैठकर दवेजी ने बनाई और २००४ में मध्य प्रदेश में भाजपा की सरकार बनी। तब से लेकर अब तक जितने चुनाव हुए, वे हर चुनाव में मनुष्य के शरीर में जिस प्रकार हड्डी की भूमिका होती है, उसका कार्य उन्होंने किया। वे अकसर कहा करते थे कि किसी भी युद्ध को जीतने की आधी संभावना तब बन जाती है, जब अंतिम दिन तक की कार्ययोजना बन जाती है।

दवेजी बहुगुणी थे। उनको लेखक के रूप में भी स्वीकार्यता मिली। उनके जीवन पर छत्रपति शिवाजी का प्रभाव था। उन्होंने उनपर एक पुस्तक 'शिवाजी व सूरज' लिखी। दूसरी पुस्तक 'सोलह संस्कार' और तीसरी पुस्तक 'अमरकंटक से अमरकंटक' लिखी। जब वे न सांसद थे न मंत्री, तब भी सामाजिक कार्यों से जुड़े रहना उनकी मूल प्रकृति थी। वे विश्वपटल पर पर्यावरण के अनेक सम्मेलनों में पर्यावरणविद् के नाते न केवल भाग लेते थे, बल्कि पर्यावरण-पुरोधा बनकर इस बात को जोर से रखते थे कि प्रकृति संस्कृति की रक्षा भारतीय संस्कृति से ही हो सकती है। उन्होंने बांध्रभान में ही अपने रहने के लिए माँ नर्मदा के किनारे आश्रम बनाया। आश्रमी स्वभाव से ही उस आश्रम में रहते थे।

उनके जीवन में दो ऐसे अवसर आए, जिसने उन्हें न केवल राष्ट्रीय बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर समर्थ बनाया। भोपाल में विश्व हिंदी सम्मेलन और उज्जैन के महाकुंभ में वैचारिक कुंभ के आयोजन में उनकी भूमिका केंद्रबिंदु थी। उनकी इस प्रकृति को देखकर ही प्रधानमंत्री ने मंत्रिमंडल के फेरबदल में उन्हें पर्यावरण मंत्रालय का स्वतंत्र प्रभार दिया।

दवेजी जीवटधारी व्यक्ति थे। उनकी जीवटता का अनोखा उदाहरण समाज के समक्ष रखना जरूरी है, जो हम सभी को प्रेरणा देगा। डॉक्टरों ने कुछ वर्ष पहले उन्हें कहा कि आप हृदय के रोगी हैं और आपका ओपन हार्ट सर्जरी होना है। दवेजी ने किसी को इसकी जानकारी न देते हुए डॉक्टर से कहा, मुझे कहाँ ऑपरेशन के लिए जाना है। डॉक्टरों ने कहा कि मुंबई में कराना है। वे अपने सहयोगी को लेकर मुंबई गए और डॉक्टर से कहा कि मेरे ऑपरेशन की तिथि तय कीजिए। डॉक्टर ने पूछा, आपके घरवाले कहाँ हैं तो उन्होंने कहा कि ऑपरेशन मेरा है, मैं उपस्थित हूँ। डॉक्टर उन्हें ऑपरेशन थियेटर में ले गए और उनकी ओपन हार्ट सर्जरी हुई। जब वे होश में आए तो अपने सहयोगी को कहा कि सबको बताओ कि मुंबई में मेरी हार्ट सर्जरी हो गई। जीवटता का ऐसा अनुपम उदाहरण शायद ही मिल सके।

राजनेता एवं पत्रकार। उनका जन्म बिहार के सीतामढ़ी में हुआ और स्कूली शिक्षा ग्वालियर (म.प्र.) में हुई। दिसंबर २०१२ तक म.प्र. भाजपा के प्रांतीय अध्यक्ष रहे। वर्तमान में भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष तथा राज्यसभा के सांसद हैं।

दवेजी अनोखे थे। सामान्य परिवार के होने के बावजूद असामान्य और असाधारण कार्य करना उनकी विशेषता थी। लगातार उनके साथ रहने और कार्य करने के कारण लगता है कि उन्हें अभी और रहना चाहिए था। पर मनुष्य और विज्ञान यहीं परास्त हो जाता है। हर अस्त का उदय होता है। अनिल माधव दवे अब हमारे बीच नहीं रहे, उनकी देह का अस्त हुआ है। उनकी देह का उदय होगा और वह देह जग को जगमग जरूर करेगी।

१२६-ए, संसद् भवन
नई दिल्ली-११०००१
दूरभाष : २३०१७६६२

अनिल माधव दवेजी की वसीयत (अंतिम इच्छा)

१. संभव हो तो मेरा दाह संस्कार बांद्राभान में नदी महोत्सव वाले स्थान पर किया जाए।

२. उत्तर क्रिया के रूप में केवल वैदिक कर्म ही हों, किसी भी प्रकार का दिखावा, आडंबर न हो।

३. मेरी स्मृति में कोई भी स्मारक, प्रतियोगिता, पुरस्कार, प्रतिमा इत्यादि जैसे विषय कोई भी न चलाए।

४. जो मेरी स्मृति में कुछ करना चाहते हैं, वे कृपया वृक्षों को बोने व उन्हें संरक्षित कर बड़ा करने का कार्य करेंगे, तो मुझे आनंद होगा। वैसे ही नदी-जलाशयों के संरक्षण में अपनी सामर्थ्य अनुसार, अधिकतम प्रयत्न भी किए जा सकते हैं। ऐसा करते हुए भी मेरे नाम के प्रयोग से बचेंगे।

हस्ताक्षर

अनिल माधव दवे

२३ जुलाई, २०१२

पुनश्च : सभी मुझे भाषा व लेखनदोष के लिए क्षमा करें।

जन्मदिन (२१ जून) पर विशेष

विष्णु प्रभाकर : खुले मन के बड़े लेखक

● प्रकाश मनु

विष्णु प्रभाकर की जीवन-कथा सहज कदमों से बढ़ते हुए एक संवेदनशील मनुष्य की गुमनाम घाटियों से उच्च शिखर तक पहुँचने की अचरज भरी कहानी है। उत्तर प्रदेश के एक साधारण गाँव में जनमे विष्णुजी को अपने जन्म से लेकर किशोर होने तक गाँव-कस्बे का गँवई वातावरण ही मिला, जहाँ पढ़ने-लिखने के साधनों या साहित्यिक चर्चाओं की गुंजाइश कम थी, पर उन्होंने खुली आँखों से अपने आसपास के जीवन को देखा और जो कुछ पढ़ने को मिला, उसे अपने भीतर उतारते हुए धीरे-धीरे ग्राम्य संस्कृति के सहज मूल्यों और संस्कारों को ग्रहण करने लगे।

हिसार में आर्यसमाज के प्रभाव में आने पर उन्हें विचार और चिंतन का अपेक्षाकृत खुला परिवेश मिला। इससे हर चीज, हर घटना के बारे में अपने ढंग से सोचने-विचारने की लय उनके भीतर बनी। वे पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं में छपी कविता-कहानियाँ बहुत रुचि से पढ़ते, और कहीं भीतर से आवाज आती, ऐसा तो मैं भी लिख सकता हूँ···! कुछ अरसे बाद बहुत झिझकते कदमों से उन्होंने उस साहित्य-संसार की ओर कदम बढ़ाए, जिसमें बड़े-बड़े नामों की गूँज-अनुगूँज सुनाई देती थी और उन बड़े साहित्यकारों की रचनाएँ पढ़कर लगता था, इस शिखर तक पहुँचने की तो बात ही क्या, उसे छू पाना भी कठिन है। यहाँ तक कि कोई उन्हें लेखक मानेगा, यह विश्वास भी नहीं होता था। खुद उनका मन भी डरा-डरा सा था। उनके हर कदम पर संकोच का साया था, पर अपने जीवन-मूल्यों के प्रति ईमानदारी, आत्मचेतनता और परिवेश के प्रति सजगता ही उनकी ताकत थी, जिसने उन्हें जाने-अनजाने लेखक बनाया। विष्णुजी ने धीरे-धीरे मन और आत्मा के संबल के साथ यात्रा शुरू की। सतत चलते रहने से उनके मन में आत्मविश्वास पैदा हुआ और जल्दी ही उनकी रचनाओं का असर नजर आने लगा। वे हिंदी के चर्चित और सुविख्यात साहित्यकारों में गिने जाने लगे।

विष्णु प्रभाकर का जन्म २१ जून, १९१२ को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर के एक गाँव मीरापुर में हुआ था। इस छोटे से गाँव और उसकी सुंदर सांस्कृतिक परंपराओं के बारे में उन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा के पहले खंड 'पंखहीन' में लिखा है। गाँव में अलग-अलग जातियों के लोग थे, पर उनमें आपसी भाईचारा था। दूर-दूर तक सांप्रदायिक वैमनस्य की छाया तक न थी। मेले-ठेले, पर्व-त्योहार, रामलीला सबमें लोग बड़े उत्साह से जुटते। ईद हो दीवाली या दूसरे त्योहार, इन्हें मिलकर मनाने का आनंद था। ईद का त्योहार आता तो हिंदू लोग इस अवसर पर मुसलिम समुदाय के लोगों में विशेष रूप से दूध बाँटते थे, ताकि वे हँसी-खुशी सेवइयाँ बनाएँ। ताजिए निकलते तो पूरा गाँव आनंद से उमगता था। आपसी सौजन्य के ऐसे उदाहरण बहुत थे। कभी-कभी छिटपुट मतभेद उभरते तो उन्हें भी प्यार से सुलझा लिया जाता।

विष्णु प्रभाकरजी के नाम का भी बड़ा अजब किस्सा है। बचपन में उनका नाम तो था विष्णु, पर घर-परिवार के लोग और गाँववाले कभी विष्णु सिंह तो कभी विष्णु दयाल कहकर पुकारते। कुछ और बड़े हुए तो परिवारवालों को बालक की पढ़ाई-लिखाई की चिंता हुई। बारह वर्ष की अवस्था में वे पढ़ने के लिए मीरापुर से अपने मामाजी के पास हिसार आ गए। यहाँ आने पर हिसार के आर्यसमाजी स्कूल में दाखिला लिया तो नाम विष्णु गुप्त लिख लिया गया और इसी नाम से उन्होंने दसवीं की परीक्षा पास की। आगे चलकर सरकारी फार्म पर नौकरी लगी तो संयोगवश वे विष्णु गुप्त से विष्णु दत्त हो गए और आगे चलकर भी यही उनका आधिकारिक नाम रहा।

विष्णुजी ने जब लिखना शुरू किया तो वे एक सरकारी नौकरी में कार्यरत थे। इसलिए उन्होंने 'प्रेम बंधु' छद्मनाम से लिखना शुरू किया और उनकी शुरुआती कुछ रचनाएँ इस नाम से छपीं। कुछ वर्षों तक यही नाम चला। फिर उन्होंने अपने नाम से लिखना शुरू किया। पर वे सिर्फ 'विष्णु' नाम से लिखते थे। अपने नाम से जुड़ा 'दत्त' उन्हें प्रिय न था। इसके अलावा संभवत: पहचान छिपाने की कोशिश यहाँ भी रही हो। कारण यही कि वह पराधीनता का काल था और विष्णुजी सरकारी नौकरी में थे, इसलिए कई तरह के संकट थे। समीक्षाएँ वे 'सुशील' नाम से लिखते थे। बाद में वे विष्णु प्रभाकर हुए। सुविख्यात लेखक के रूप में इसी नाम से साहित्य-जगत् में चर्चित हुए।

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', जो अपने विशिष्ट साक्षात्कारों के लिए मशहूर हुए, ने 'मैं इनसे मिला' पुस्तक के दूसरे भाग के लिए विष्णुजी से मुलाकात की, तो बातचीत का प्रारंभ इसी दिलचस्प सवाल से हुआ। कमलेशजी ने जानना चाहा, ''आपके नाम के साथ यह जो प्रभाकर

शब्द जुड़ा है, उसका क्या अर्थ है? यह आपका गोत्र है या प्रभाकर परीक्षा पास करने के कारण आपने इसे अपने नाम का अंग बना लिया है?''

इस पर विष्णुजी मुसकरा दिए। उनका जवाब भी वैसा ही रोचक था, जिससे उस समय और समाज की रीतियों पर भी प्रकाश पड़ता है। विष्णुजी ने कहा, ''आपने बड़े रोचक ढंग से प्रश्न की शुरुआत की है, कमलेश भाई। न जाने कितने व्यक्तियों ने मुझसे यह प्रश्न पूछा है। मन करता है कि एक प्रहसन लिख डालूँ। वस्तुतः मेरे नाम की कहानी इतिहास बन गई है। बात यह है कि मेरे माता-पिता ने मेरा नाम केवल विष्णु रखा था। उसके कई कारण थे। वह सुधार का युग था।...आज की तरह साहित्यिक नामों का आविष्कार तब तक नहीं हुआ था। लेकिन देवी-देवताओं और महापुरुषों के नाम पर संतान का नाम रखने में लोग रुचि लेने लगे थे। इसलिए मेरे बड़े भाई का नाम ब्रह्मा रखा गया। ब्रह्मा के बाद स्वाभाविक है कि विष्णु हों। इसलिए मैं विष्णु बन गया।...घर के लोग प्यार से मुझे विष्णु सिंह या विष्णु दयाल कहकर पुकारते थे। फिर एकदम हिसार पहुँच गया। मामाजी आर्यसमाजी थे। वहाँ के सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी स्कूल में नाम लिखाने का अवसर आया तो मैं विष्णु गुप्त हो गया। इसी नाम के सहारे दसवीं पास की। परंतु आर्थिक कारणों से कॉलेज जाना संभव न हो सका और वहाँ के सरकारी फार्म पर नौकरी करनी पड़ी।...संबंधित क्लर्क ने मेरी सर्विस बुक भी तैयार कर दी। लेकिन जब मुझे हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया तो मैं चौंक पड़ा। मेरा नाम विष्णु गुप्त नहीं, विष्णु दत्त लिखा हुआ था। क्लर्क महोदय ने उत्तर दिया, ''इस कार्यालय में कई गुप्त पहले ही मौजूद हैं। एक और बढ़ जाने से असुविधा भी बढ़ जाती, इसलिए मैंने दत्त कर दिया।'' तब से आज तक मैं अधिकृत रूप से दत्त ही कहलाता हूँ। यह नाम मुझे कभी पसंद नहीं आया और जब मैंने लिखना शुरू किया तो इस दत्त शब्द का प्रयोग कभी नहीं किया।

''एक संपादक बोले, विष्णु नाम बहुत छोटा है, आपने कोई परीक्षा पास की है? मैंने उत्तर दिया, जी हाँ, मैंने हिंदी प्रभाकर की परीक्षा पास की है। वे बोले, तब मैं आपका नाम विष्णु प्रभाकर लिखूँगा। मुझे यह नाम प्रिय लगा और मैंने निश्चय किया कि अब मेरा नाम विष्णु प्रभाकर ही रहेगा।'' *(विष्णु प्रभाकर : संपूर्ण साक्षात्कार, पृ. १७-१८)*

विष्णुजी का परिवार संयुक्त परिवार था। उन्होंने अपने बाबा मुरब्बी और स्नेहवत्सला दादी का बड़े आत्मीय ढंग से वर्णन किया है। बाबा गाँव के जाने-माने शख्स थे, जिनका दूर-दूर तक नाम था। उनका व्यक्तित्व एकदम कड़क, प्रभावशाली और आकर्षक था। खरे आदमी थे, बगैर लाग-लपेट के सीधी बात कहते। इसी कारण लोग उनकी इज्जत करते थे। उनका व्यक्तित्व बहुत खुला हुआ था। यों तो वे परंपरावादी थे, पर नएपन को ग्रहण करने में भी पीछे नहीं रहते थे। उनमें एक तरह का खुलापन और उदारता भी थी। विष्णुजी ने लिखा है कि दीवाली आती तो जब तक वे हरिजनों के घर जलेबी नहीं बाँट आते थे, अपने मुँह में मिठाई का एक दाना तक नहीं डालते थे। दीवालीवाले

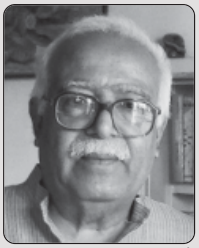

वरिष्ठ बाल-साहित्यकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह। शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें। साहित्य अकादमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती' पुरस्कार तथा हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

दिन हरिजन परिवारों में वे घर-घर जाते और सबको थोड़ी-थोड़ी जलेबियाँ अपने हाथ से देते। उसके बाद ही घर में दीवाली मनाई जाती। विष्णुजी ने इस बात का भी जिक्र किया है कि उनके बाबा के हृदय में दलित और उपेक्षित वर्ग के लोगों के लिए एक विशेष तरह की ममता थी और वे कष्ट में हों तो उनकी मदद करने के लिए वे उत्सुक हो उठते थे।

बचपन में दादी बच्चों को कहानियाँ सुनाया करती थीं। सबको आँचल की ओट बैठा लेतीं और तरह-तरह की कहानियाँ सुनातीं। उनमें जीवन के नए-नए अनुभव थे, रस था और रोमांच भी। बालक विष्णु को दादी से कहानियाँ सुनना बहुत अच्छा लगता था। इन कहानियों को सुनते हुए वे कल्पना के पंखों पर उड़ने लगते और आनंद से भर उठते थे। उनके लेखक बनने की नींव शायद यहीं से तैयार हुई।

विष्णु जब मीरापुर की एक पाठशाला में पढ़ने गए तो उनकी खुशी का पार न था। दादी उन्हें कहानी सुनाया करती थीं कि राजकुमार जब पढ़ने गया तो उसके पास सोने की तख्ती, चाँदी की कलम और हीरे की दवात थी। बालक विष्णु ने भी मन में अपने लिए ऐसा ही सपना सँजो रखा था, पर उन्हें तो ऐसा कुछ न मिला। इससे वे हतप्रभ से हो गए। उनकी आत्मकथा के पहले खंड 'पंखहीन' में यह प्रसंग बड़े मार्मिक शब्दों में उभरा है—

''सबकुछ हुआ, लेकिन एक बात न हो सकी। मैंने कल्पना की थी, जब मैं पढ़ने जाऊँगा तो दादी की कहानी के राजकुमार की तरह मेरे पास भी सोने की तख्ती, चाँदी की कलम और हीरे की दवात होगी। लेकिन मिली काठ की तख्ती, सरकंडे की कलम और मिट्टी की दवात, बड़ी निराशा हुई। तब यह तक मेरे बाल मन को प्रभावित नहीं कर सकता था कि दीया सोने का हो या मिट्टी का, महत्त्व उसकी लौ का ही होता है। फिर भी पाठशाला जाने की खुशी थी। याद नहीं पंडित उमादत्त की पाठशाला में कितने दिन पढ़ना हुआ। इतना अवश्य याद है कि वहाँ पहाड़े बहुत रटने पड़ते थे। तब दशमलव प्रणाली तो प्रचलित थी नहीं, इसलिए पव्वा, अद्धा, पौना, सवैया, ड्योढ़ा, ढैया, हूँटा, खींचा, पौंचा सबकी तोतारटंत होती थी। सभी बालक सामूहिक स्वर में प्रार्थना जैसे बोलते थे, जैसे एक पव्वा पव्वा, दो पव्वा आध, तीन पव्वा पौना, चार पव्वा एक। आदि-आदि।'' *(वही, पृ. ४७)*

विष्णुजी के पिता का नाम था दुर्गाप्रसाद और माँ थीं महादेवी। माँ बड़े घर की बेटी थीं और स्वाभिमानी थीं। उनमें आत्मसम्मान बहुत था। इतना ही नहीं, वे बहुत विचारशील थीं और दूर तक की सोच सकती थीं। उन्होंने ही बेटों की पढ़ाई के बारे में सोचा और उन्हें पढ़ने के लिए हिसार भेजा। इसके बरक्स उनके पिता बिल्कुल दुनियादार न थे और हर वक्त पूजा-पाठ में लगे रहते। पिता की तंबाकू की दुकान थी, जो बहुत अधिक नहीं चलती थी। वे सुबह तीन बजे उठकर पूजा-पाठ में लग जाते। दस बजे दुकान खोलते। शाम को चार बजे दुकान बंद कर देते, फिर एक मंदिर में बैठकर घंटों पूजा करते। यही उनका नित्य का नियम था। पर पढ़ने का चाव था, बेचने के लिए तरह-तरह के तंबाकू के टोकरे। ऐसे ही एक टोकरे में किताबें भरी रहतीं, जिनमें 'सुखसागर' से लेकर किस्से-कहानी की किताबें भी थीं। 'किस्सा साढ़े तीन यार' और 'हातिमताई' सबसे पहले उन्होंने वहीं पढ़ा। विष्णुजी ने लिखा है कि उनका पहला पुस्तकालय वही था।

अपनी आत्मकथा में विष्णुजी ने पिता की शख्सियत को भी उकेरा है। उन्हें लोग 'भगतजी' कहकर पुकारते थे और यह नाम उन पर फबता भी खूब था। दिन भर पूजा-पाठ में लगे रहनेवाले धर्मभीरु पिता दुनियादार नहीं थे और किसी और ही दुनिया के शख्स जान पड़ते थे। मानो वे इस संसार में रहते हुए भी संसार के प्राणी न हों। आत्मकथा में विष्णुजी ने इसकी भी खुलकर चर्चा की है—

''मेरे पिता मेरी याद में भगतजी के नाम से जाने जाते थे। पिछला जन्म यदि होता हो तो वे निश्चय ही बैरागी रहे होंगे। उनके पूजा-पाठ का कोई अंत नहीं था। सवेरे तीन बजे से रात दस बजे तक पूजा करते। उसके बाद दुकान खोलते। चार बजे बंद कर देते और रात के दस बजे तक एक मंदिर में पूजा-पाठ करते। दुकान पर काम न रहा तो भागवत या सुखसागर आदि पढ़ते रहते। ज्योतिष का भी अच्छा अध्ययन किया था। जन्मपत्री बनानेवाले पंडितों से लंबी बहस करते देखा है मैंने उनको। उनकी दुकान में नाना रूप तंबाकू के टोकरों के साथ एक और टोकरा रहता था, उसमें किताबें भरी रहती थीं। मेरा पहला पुस्तकालय वही था। यहीं पर मैंने भागवत से लेकर 'किस्सा साढ़े तीन यार' तक से परिचय प्राप्त किया था। 'हातिमताई' के किस्से पढ़ते मैं अघाता नहीं था। उन दिनों 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता-संतति' और 'भूतनाथ' के साथ-साथ राधेश्याम की रामायण भी बहुत लोकप्रिय थी। इन पुस्तकों ने कितने लोगों को हिंदी पढ़ने के लिए प्रेरित किया, इसका लेखाजोखा आज किसके पास है। मुझे याद है कि मेरे पिताजी की दुकान के बराबर हबीब दर्जी की दुकान थी। मशीन चलाते-चलाते भी वह राधेश्याम रामायण का सस्वर पाठ किया करता था। खुशी की बात है कि आज फिर हमारा ध्यान 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' की ओर जा रहा है। हम फिर से अपने को खोज रहे हैं। मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इन पुस्तकों ने ही मुझे कल्पना के पंखों पर बैठकर उड़ना सिखाया था।'' *(वही, पृ. ३५)*

उन दिनों साधन सीमित थे, पर लोग हँसी-खुशी आपस में मिलते-जुलते थे। आपस में प्रेम था और सादगी के साथ-साथ जीवन में खुशियाँ थीं। इसी तरह उन दिनों त्योहारों का आनंद निराला था। और दीवाली तो ऐसी थी कि दीयों के प्रकाश में सारी दुनिया जगमग-जगमग हो जाती थी। कतार की कतार जलते दीयों और कंदीलों का सौंदर्य भी क्या खूब था! विष्णुजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—

''उन दिनों बिजली नहीं थी, मोमबत्तियाँ भी नहीं थीं। कड़वे तेल से भरे छोटे-छोटे हजारों दीये जगमग-जगमग कर देते थे। अमावस्या की उस काली रात को जनशक्ति का इससे सुंदर प्रतीक और क्या होगा? बाँसों के बड़े-बड़े साँचे बनाकर उन्हें अपनी-अपनी दुकानों के खंभों से बाँध देते थे। उन पर गीली मिट्टी के सहारे दीये जमाते, उनमें तेल और बत्तियाँ डालते, फिर उन्हें प्रज्वलित करते, रंगीन कागजों के तरह-तरह के कंदील भी बनाते थे। तब एक कंदील बहुत बड़ा होता था। उसके भीतर पशु-पक्षियों की वैसी गोलाकार घूमती पट्टी रहती थी। दीया जलने पर हवा के दबाव के कारण ये आकृतियाँ बड़ी तेजी से घूमती थीं।'' *(वही, पृ. ६७)*

इतना ही नहीं, त्योहार पूरे समाज को एकता के सूत्र में बाँध देते थे। उससे भाईचारा मजबूत होता था और आपसी प्यार भी बढ़ता था—

''अच्छी-बुरी नैतिक-अनैतिक बातें तब भी होती थीं, लेकिन तब ये त्योहार जिस तरह हम सबको एक सूत्र में बाँधे रखते थे, यह स्थिति अब नहीं रह गई है। होली, ईद और मोहर्रम पर भी ऐसे ही दृश्य देखने की मुझे याद है। मैंने पहले एक प्रसंग में बताया है कि ईद के दिन हिंदू लोग अपनी गायों का दूध मुसलमानों में बाँट देते थे। मोहर्रम के अवसर पर जब ताजिए निकलते थे, तो हिंदू लोग भी भेंट चढ़ाकर पूजा किया करते थे।'' *(वही, पृ. ६७)*

इसी तरह संयुक्त परिवार का अपना आनंद था, पर उसकी मुश्किलें अपनी जगह थीं, जिसे बचपन में विष्णुजी ने महसूस किया। उन्होंने एक दिलचस्प घटना का वर्णन भी किया है कि जब वे छोटे थे, तो चाचा ने उन्हें गोद लेना चाहा और इसकी पूरी तैयारियाँ भी हो गईं। जब उसके लिए धार्मिक रस्म की जाने लगी, तो बालक विष्णु से भी पूछा गया, पर उन्होंने इनकार कर दिया। इस पर गोद देने की वह रस्म रोक दी गई और वे चाचा के दत्तक पुत्र बनते-बनते रह गए। उस समय तो विष्णु इतने छोटे थे कि उन्हें कुछ बोध ही नहीं था। जो कुछ उन्होंने कहा होगा, वह भी सचेत भाव से न कहा होगा। पर कुछ बड़े होने पर माँ ने बताया तो उन्हें कुछ अचरज हुआ।

पर यहीं से उनके व्यक्तित्व में कुछ उलझन और बेचैनियाँ भी शुरू हुईं। चाचा अमीर थे। उनकी कपड़े की दुकान थी, जो खूब चलती थी। चाचा खूब कमाते थे तो उनका रहन-सहन भी अमीरी का था और घर में वैसा ही रोबदाब भी था। बाद में हुआ यह कि विष्णुजी को तो वे गोद न ले सके, पर उनके छोटे भाई को गोद ले लिया। इससे फर्क क्या पड़ना था? दोनों भाइयों में प्रेम था और वे साथ-साथ ही खेलते थे। पर सामाजिक-पारिवारिक वातावरण में बहुत सी ऐसी चीजें थीं, जो मन में गुत्थियाँ पैदा कर देतीं। विष्णुजी के साथ भी यही हुआ।

उन्हें बार-बार यह अहसास कराया जाता कि अगर चाचा गोद ले लेते तो उसका पूरा जीवन ही बदल जाता। चाचा अमीर हैं तो खूब सुख भोगता, ठाट से रहता और कोई मुश्किल न होती। और सच तो यह है कि चाचा ने छोटे भाई को गोद लिया तो उसके जीवन-स्तर में फर्क आ गया था। उसके कपड़े, रहन-सहन, सब में अमीरी झलकने लगी थी। विष्णु सोचते, इससे क्या फर्क पड़ता है? पर धीरे-धीरे उनके भीतर हीनता घर करती गई।

एक छोटी सी घटना बरसों तक उन्हें याद रही। एक बार चाचा ने उन्हें चार पैसे दिए, पर छोटे भाई को पाँच पैसे मिले। बालक विष्णु ने शिकायत की। इस पर चाचा ने उन्हें एक पैसा और दिया, पर साथ ही छोटे को भी एक पैसा और दे दिया। यानी उसके पास फिर भी एक पैसा ज्यादा ही रहा। बात सिर्फ एक पैसे की थी, पर विष्णु को चोट पहुँची। वे दु:ख और अपमान से छटपटा उठे। बाद में ऐसी घटनाएँ कम होने की बजाय बढ़ती गईं और विष्णुजी के भीतर हीनता-बोध भी बढ़ने लगा। इसके लिए अनायास उनके मन में यह कोशिश शुरू हो गई कि वे औरों से कुछ अलग दिखें। शायद उनके लेखक होने की बुनियाद यहीं से पड़ी।

उन दिनों स्वराज्य के लिए देश भर में आंदोलन चल रहा था। जगह-जगह सभाएँ होतीं। एक बार चाचा के साथ बालक विष्णु भी एक जनसभा में गया। उसमें एक कांग्रेसी नेता के पाँच बरस के बेटे ने मंच पर खड़े होकर अपनी तुतलाती भाषा में अपील की कि सब लोग खद्दर पहनें। इस पर खूब तालियाँ बजीं। एक छोटे से मासूम बच्चे द्वारा कही गई इस बात ने सबको प्रभावित किया।

चाचा ने विष्णु की ओर देखते हुए कहा, ''देखो, एक छोटे से बच्चे ने कैसा कमाल कर दिया!''

बात विष्णु के भीतर घर कर गई। कुछ दिन बाद की बात है, पिता के साथ वे कहीं जा रहे थे तो बाजार में खद्दर की धोती देखकर उसे लेने की जिद की। पिता ने एक नजर उस धोती पर डाली, फिर बच्चे को जोर का चाँटा जड़कर बोले, ''तू जरा सा बच्चा इसे पहनेगा कैसे?'' बच्चा हक्का-बक्का रह गया, जैसे उसके भीतर की उमंग को वहीं बुझा दिया गया हो। उस बच्चे को खादी पहनने की अपील करने पर खूब तालियाँ और वाहवाही मिली, पर उन्हें खद्दर पहनने की बात कहने पर जोर का चाँटा। भला यह कैसा न्याय?

तभी उन्होंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि वे जीवन में खद्दर पहनेंगे। और इस व्रत को उन्होंने जीवन भर निभाया। उस समय परिवार में और लोग भी खद्दर पहनते थे। आजादी मिलने के बाद धीरे-धीरे सबने छोड़ दिया, लेकिन विष्णुजी ने बचपन में जो संकल्प किया था, उसे कभी भूले नहीं। खद्दर का पाजामा, कुरता और टोपी, यही उनकी पहचान बन गए।

बारह वर्ष की अवस्था में विष्णु अपने मामा के पास रहकर पढ़ने के लिए मीरापुर से हिसार आए। यहाँ पढ़ने के लिए बहुत कुछ था। उनकी दुनिया विस्तृत होने लगी। वे लिखते हैं—

''मामाजी के घर में बहुत किताबें थीं। फिर आर्यसमाज का पुस्तकालय भी था। खूब पढ़ा मैंने प्राचीन साहित्य। वेद (हिंदी भाष्य), पुराण, बाइबिल, कुरान, महाभारत, रामायण सब पढ़ डाले। इसके अतिरिक्त प्रेमचंद, प्रसाद, बंकिम, रवींद्र, शरत और खांडेकर आदि उस समय के लेखकों से भी परिचय हुआ। पढ़ते-पढ़ते मेरे मन में अपना नाम भी छापे में देखने की इच्छा प्रबल हो उठी। यह सन् १९२६ की बात है। मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था। एक दिन चुपचाप 'बालसखा' पत्रिका को एक पत्र लिखा और आश्चर्य, वह छप भी गया। कितना खुश हुआ था मैं, कैसे बताऊँ! मेरे साथी मेरी ओर गर्व से देखने लगे। परिणाम यह हुआ कि पढ़ने-लिखने की लालसा बलवती होने लगी।''

इस तरह प्रारंभ से ही विष्णुजी के मन में अपने लेखक होने की जो धुँधली सी अस्पष्ट छवि थी, उसका पहला संकेत सन् १९२६ में मिला। घर में बच्चों की प्रसिद्ध पत्रिका 'बालसखा' आती थी। उसे वे रुचि से पढ़ते थे। उसमें बच्चों के पत्र भी छपते थे। एक दिन उन्होंने उसमें पत्र लिखा, ''मेरा छोटा भाई मुझे बहुत तंग करता है। मैं क्या करूँ?'' उनका वह नन्हा सा पत्र प्रकाशित हुआ। संपादक ने उसका बड़ा सुंदर उत्तर भी दिया। अपना छपा हुआ नाम और पत्र देखकर विष्णुजी की खुशी छिपाए नहीं छिप रही थी। उन्हें जान पड़ा, यह खुशी कुछ अलग सी है। इसमें कुछ ऐसी आत्मिक तृप्ति मिलती है, जो विरल है। यह अहसास देर तक उनके मन में बना रहा।

इतना ही नहीं, उन्होंने भाषण देना और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेना भी शुरू किया। उनका शब्दों का उच्चारण बहुत साफ था। हिंदी बहुत अच्छी बोलते थे और वे जो कुछ पढ़ते थे, उसकी गहरी छाप भी उनके भाषणों में नजर आती थी। इसलिए सब ओर उनकी चर्चा होने लगी। अब आगे का रास्ता मानो खुद ही प्रकाशित हो रहा था। स्वयं विष्णुजी ने इस बारे में लिखा है—

''शुद्ध हिंदी बोलता था, इसलिए स्कूल की वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में मेरी धाक जम गई। कुमार सभा में भाषण देने लगा। दसवीं पास करने के बाद तो आर्यसमाज में भी भाषण देने लगा। बाद में

''हाँ, तब चुपके-चुपके लिखा भी करता था। लाहौर से उन्हीं दिनों हिंदी में एक नया पत्र निकला 'हिंदी मिलाप'। दीवाली के अवसर पर मैंने स्वामी दयानंद के जीवन पर एक लिखित भाषण दिया था। उसी को मैंने लेख के रूप में उस पत्रिका को भेज दिया। आर्यसमाज की पत्रिका थी। लेख तुरंत स्वीकृत हो गया। तब मेरी क्या दशा हुई, बाप रे···मेरा लेख छपेगा! मैं लेखक···न-न, नाम मैंने अपना नहीं दिया था, क्योंकि तब मैं सरकारी नौकर था। यह त्रासद कहानी भी मुझे लेखक बनाने में सहायक हुई और मैंने अपना छद्म नाम रखा, 'प्रेम बंधु'। कई वर्ष चला यह नाम।''

तो गुरुद्वारों, मसजिदों, जनसभाओं, सभी जगह मेरी पुकार होने लगी।''

यह अपने 'होने' के अहसास की शुरुआत थी।

□

मई १९२९ में विष्णुजी ने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय उन्होंने हिसार में गवर्नमेंट कैटल फार्म में दफ्तरी के रूप में नौकरी शुरू की। कुछ समय बाद क्लर्क हो गए, पर मन में सपना तो कुछ और ही था। घर में साहित्यिक पुस्तकें और पत्रिकाएँ आतीं। उन्हें पढ़ते तो लगता, 'अरे, ऐसा तो मैं भी लिख सकता हूँ।' अपने आसपास के जीवन को देखते तो लगता, 'इस दुनिया में कितना कुछ है, जो मुझे लिखने के लिए न्योत रहा है। मुझे भी लिखना चाहिए। जरूर लिखना चाहिए। लिखने का आनंद ही कुछ अलग है।' और एक दिन उन्होंने स्वामी दयानंद पर जो भाषण दिया था, उसी को एक अखबार में लेख के रूप में छपने भेज दिया। लेख की स्वीकृति मिली तो वे रोमांचित हो उठे। उस समय की अपनी मन:स्थिति पर उन्होंने लिखा—

''हाँ, तब चुपके-चुपके लिखा भी करता था। लाहौर से उन्हीं दिनों हिंदी में एक नया पत्र निकला 'हिंदी मिलाप'। दीवाली के अवसर पर मैंने स्वामी दयानंद के जीवन पर एक लिखित भाषण दिया था। उसी को मैंने लेख के रूप में उस पत्रिका को भेज दिया। आर्यसमाज की पत्रिका थी। लेख तुरंत स्वीकृत हो गया। तब मेरी क्या दशा हुई, बाप रे···मेरा लेख छपेगा! मैं लेखक···न-न, नाम मैंने अपना नहीं दिया था, क्योंकि तब मैं सरकारी नौकर था। यह त्रासद कहानी भी मुझे लेखक बनाने में सहायक हुई और मैंने अपना छद्म नाम रखा, 'प्रेम बंधु'। कई वर्ष चला यह नाम।''

पर यह तो बात हुई लेख की। मन में तो उसी तरह का रचनाकार होने की बात उमग रही थी, जैसे प्रेमचंद थे, जैनेंद्र थे और उस दौर के बहुत से और लेखक थे, जिनकी कहानी और उपन्यासों की धूम थी। विष्णुजी के मन में अपने कहानीकार होने का बिंब बनने लगा। पहली कहानी उन्होंने लिखी 'दीवाली के दिन'। नवंबर १९३१ में लाहौर के 'हिंदी मिलाप' में उनकी यह कहानी छपी। यों 'दीवाली के दिन' उनकी प्रकाशित पहली रचना थी, जिसके आगे एक लंबा सिलसिला चलनेवाला था। कहानी कच्ची थी, स्थूल थी, पर भाषा कुछ सधी हुई थी। विष्णुजी के बड़े भाई ब्रह्मानंदजी ने पढ़ा तो उन्होंने भी कहानी की भाषा की प्रशंसा की।

सच तो यह है कि विष्णुजी इस समय किसी नव विहग की तरह अपने पंखों को तौल रहे थे। अभी लेखकीय आत्मविश्वास पूरी तरह नहीं आया था। छिटपुट कुछ और चीजें भी छपने लगीं तो धीरे-धीरे लगा, हाँ, मैं भी कुछ लिख सकता हूँ। उन्होंने जैसे अपने आपको ठकठकाया, 'मुझे लिखना है···लिखना है! मैं लिखने के लिए बना हूँ और यही मेरी पहचान भी है।'

१९३४ से विष्णुजी ने नियमित लिखना शुरू कर दिया। इस समय उनकी अवस्था थी चौबीस वर्ष। पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ निरंतर छपने लगीं। मित्रों और आसपास के लोगों को भी पता चला। सबके मन में विष्णुजी के प्रति आदर का भाव था। विष्णुजी खुद भी बड़ी सार्थकता और तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। उन्हें लगा, कलम की शक्ति कम नहीं है। निरंतर लिखकर भी मैं कुछ बड़े काम कर सकता हूँ। अपने शब्दों की ताकत से सोए हुए देश और समाज में नई चेतना फूँक सकता हूँ।

२६ वर्ष की अवस्था में ३० मई, १९३८ को विष्णुजी का विवाह सुशीला मांगलिक से हुआ। बरात कनखल (हरिद्वार) गई। बरात में जैनेंद्र, नेमिचंद्र जैन और प्रभाकर माचवे सरीखे हिंदी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शामिल हुए। सुशीलाजी की साहित्य में रुचि थी। वे बहुत समझदार, पढ़ी-लिखी और संवेदनशील महिला थीं। उन्होंने गर्व से अपनी सहेलियों को बताया कि उनके पति एक बड़े साहित्यकार हैं। जीवन भर उन्होंने विष्णुजी का साथ दिया और सही अर्थ में जीवन सहचरी बनीं।

इसी तरह समय बीता। विष्णुजी अपने भीतर एक नई ऊर्जा, नया स्फुरण महसूस कर रहे थे। जैसे शब्दों के सहारे आकाश में उड़ने का सुख क्या है, वे जान गए थे। सन् १९३८ में सुभाषचंद्र बोस हिसार आए तो उन्हें अभिनंदन-पत्र दिया गया। वह विष्णुजी ने ही लिखा था। जिस सभा में वह पढ़ा गया, उसमें विष्णुजी भी उपस्थित थे। बाद में जब सुभाषचंद्र बोस को बताया गया कि यह अभिनंदन-पत्र विष्णु प्रभाकर ने लिखा है तो उन्होंने बहुत प्रशंसा की। गद्‌गद होकर विष्णुजी ने झट सुभाष बाबू के पैर छू लिये। उस क्षण वे इतने भावावेश में थे कि शरीर की कोई सुध-बुध नहीं। मानो वे वहाँ थे ही नहीं।

धीरे-धीरे प्रसिद्ध पत्रिकाओं में विष्णुजी की रचनाएँ छपने लगीं तो साहित्यिक जगत् में भी एक पहचान बनी। एक उभरते हुए सचेत लेखक के रूप में पहचान, पर साथ ही वे स्वाधीनता संग्राम में भी बराबर हिस्सा लेते रहे। सरकारी नौकरी थी। हर समय खतरा सिर पर मँडराता रहता, पर विष्णुजी ने ज्यादा परवाह नहीं की। उन्हें लगा, देश पुकार रहा है। अगर मैंने उसकी पुकार को अनसुना किया तो भला मैं कैसा लेखक हूँ!

विष्णुजी लिख ही नहीं रहे थे, असंख्य पाठकों के दिलों में उनके लिखे हुए के प्रभाव-बिंब बनने लगे थे। उनकी कहानियों की खासी प्रशंसा होने लगी थी। यहाँ तक कि प्रेमचंद और जैनेंद्र ने भी उनकी कहानियों को सराहा। 'हंस' में उन्होंने अपनी कुछ कहानियाँ भेजीं तो प्रेमचंद का पत्र मिला। उन्होंने कहानियों की तारीफ करते हुए कहा कि वे कुछ सुधारकर इन्हें 'हंस' में छापेंगे। विष्णुजी को इस बात से गहरी तृप्ति मिली। पर प्रेमचंद के आकस्मिक निधन से बात वहीं की वहीं रह गई। बाद में शिवरानी देवी और फिर जैनेंद्र ने 'हंस' का संपादन सँभाला। विष्णुजी के 'हंस' से पारिवारिक संबंध बन चुके थे। उनकी कहानियाँ सम्मान के साथ 'हंस' में छपीं, पर जैनेंद्र ने एक बात लक्षित की। उस दौर की विष्णुजी की कहानियों में भावुकता कुछ अधिक थी। उन्होंने भावुकता के अतिरेक से बचने की सलाह दी। जैनेंद्र के शब्द थे, ''तुम्हारी कहानियों में भावुकता बहुत है। इससे बचो। अगर कहानियों में भावुकता की मुलायमियत के बजाय परपज का कुछ काठिन्य आ

जाए तो बेहतर है।''

जैनेंद्रजी बड़े लेखक थे। विष्णुजी के मन में उनके लिए बड़ा आदर था। उन्होंने बड़े विनम्र भाव से उनकी सीख को ग्रहण किया। अपनी कहानियों को खुद ही सतर्क निगाहों से देखते हुए कुछ माँजा भी। अब उन्होंने नई ऊर्जा के साथ कहानियाँ लिखीं। सभी जानी-मानी साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ बड़ी प्रमुखता से छपने लगीं।

कुछ समय बाद विष्णुजी एक लंबी साहित्यिक यात्रा पर निकल पड़े। एक ओर चिरगाँव (झाँसी) में मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त सरीखे साहित्यिकों से वे मिले तो दूसरी ओर बनारसीदास चतुर्वेदी से, जिन्होंने कुंडेश्वर को एक साहित्यिक तीर्थ जैसा बना दिया था।

विष्णुजी मुख्य रूप से कथाकार हैं, पर उन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में लिखा है और अपने रचनात्मक स्पर्श से उसे कुछ-न-कुछ दिया है। उन्होंने उपन्यास लिखे, जीवनियाँ लिखीं, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत लिखे और बच्चों के लिए भी प्रचुर साहित्य लिखा। यह सारा गद्य साहित्य ही है। बहुत कम लोगों को पता होगा कि विष्णुजी ने कविताएँ भी लिखी हैं। ऐसी कविताएँ जो मन को छू जाती हैं। एक कविता में वे उस वैदिक उजाले की बात करते हैं, जो आज भी हमारी आत्मा को आलोकित कर रहा है।

☐

हिसार से दिल्ली आने के बाद एक संस्था में विष्णुजी ने कुछ समय पार्टटाइम काम किया, फिर मुक्त हो गए। बाद में सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत और नाटककार जगदीशचंद्र माथुर के आग्रह पर वे कुछ समय के लिए आकाशवाणी के नाट्य प्रभाग से जुड़े। आकाशवाणी को आम जनता का प्रिय माध्यम बनाने के लिए उस समय उन्होंने बहुत से रोचक कार्यक्रम शुरू किए। नए से नए विषयों पर नाटक प्रस्तुत किए जाते, जिनमें खासी विविधता थी। लगता था, जैसे जीवन का इंद्रधनुषी रूप इन नाटकों की शक्ल में उतर आया हो। आकाशवाणी के कार्यक्रमों को उन्होंने अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने की कोशिश की। उन दिनों बड़े से बड़े साहित्यकारों से मिलना हुआ। खासकर इलाचंद्र जोशी सरीखे साहित्यकारों के साथ काम करने का अनुभव बड़ा रोमांचक था। इससे विष्णुजी के अंदर आत्मविश्वास आया और उन्होंने बहुत कुछ सीखा भी।

इसी तरह समय-समय पर उन्होंने एक से एक बड़ी जिम्मेदारियों को निभाया। रूस के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री भारत आए, तो विष्णुजी को रिपोर्टिंग का काम मिला। उस समय बड़ा अभूतपूर्व दृश्य था। रूस के राजनेताओं का बड़ा ही भव्य स्वागत हुआ। लोग घरों से निकल आए। रास्ते में लोगों की अपार भीड़ थी और हवा में जय-जयकार के नारे गूँज रहे थे। आत्मकथा के दूसरे खंड 'मुक्त गगन में' के पन्नों पर यह पूरा प्रसंग बड़े रोचक ढंग से उभरा है—

''मझे जनपथ पर स्थित आर्काइव्ज के भवन में शोभायात्रा का विवरण देना था। कोई सवारी मेरे पास नहीं थी। सब भाग रहे थे। मैं भागकर एक चलती टैक्सी पर चढ़ गया। ड्राइवर भला था। उसने मुझे रिकॉर्ड ऑफिस पहुँचा दिया, पर द्वार पर खड़े संतरी ने मुझे अंदर नहीं जाने दिया। मेरे पास प्रवेश-पत्र नहीं था। मैंने उसे समझाना चाहा, पर वह अडिग था। तभी अंदर से एक सज्जन आए। वे वहीं पर काम करते थे। उन्होंने मुझे लेखक के रूप में पहचाना और अंदर जाकर उपाधीक्षक से बात की। उपाधीक्षक ने अंततः मुझे जाने दिया और मैं रिकॉर्ड ऑफिस की छत पर जाकर शोभा यात्रा का विवरण देख सका। वहाँ से तुरंत मुझे राष्ट्रपति भवन जाना था। आकाशवाणी पहुँचकर पाया कि कोई भी गाड़ी नहीं है, तब उपनिदेशक मुझे अपनी गाड़ी में राष्ट्रपति भवन ले गए। वहाँ की रूपसज्जा और व्यवस्था का वर्णन शब्दातीत था। उल्लास और वैभव एकरूप हो गए थे। समारोह स्थल पर सबसे आगे राष्ट्रपति, मुख्य अतिथि, मंत्रिमंडल के सदस्य तथा राजदूत आदि के बैठने की व्यवस्था थी। इसके बाद सचिव आदि थे। उन्हीं के बीच मेरे बैठने का मंच था। वह एक घूमती मशीन के समान था, जिसमें मैं चारों ओर देख सकूँ। मेरे पीछे थे संसद् सदस्य।...' *(वही, पृ. १६८)*

जाहिर है, आकाशवाणी में जाने पर विष्णुजी को जो मान-सम्मान मिला, और जो बड़ी जिम्मेदारियाँ उन्होंने सँभालीं, उससे उन्हें न सिर्फ आत्मिक संतुष्टि मिली, बल्कि उनके अनुभव-संसार में भी बहुत कुछ नया जुड़ा। पर फिर भी मुक्त होकर काम करने का उनका जो सपना था, वह पूरा न हो सका। और यही कारण है कि बहुत अधिक समय तक वे वहाँ न टिक सके। सन् १९५५ में वे आकाशवाणी से जुड़े थे। ३१ मार्च, १९५७ को स्वतः त्याग-पत्र देकर वहाँ से मुक्त हो गए।

इसमें संदेह नहीं कि आकाशवाणी में रहते हुए विष्णुजी को जो रोचक अनुभव हुए, उन्हें वे कभी नहीं भूले। अपनी आत्मकथा में उन्होंने बहुत रुचि लेकर, बड़े विस्तार से उन सबका वर्णन किया है। उसे पढ़ना किसी भी सहृदय को सचमुच आनंदित करता है।

☐

विष्णुजी मुख्य रूप से कथाकार हैं, पर उन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में लिखा है और अपने रचनात्मक स्पर्श से उसे कुछ-न-कुछ दिया है। उन्होंने उपन्यास लिखे, जीवनियाँ लिखीं, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत लिखे और बच्चों के लिए भी प्रचुर साहित्य लिखा। यह सारा गद्य साहित्य ही है। बहुत कम लोगों को पता होगा कि विष्णुजी ने कविताएँ भी लिखी हैं। ऐसी कविताएँ जो मन को छू जाती हैं। एक कविता में वे उस वैदिक उजाले की बात करते हैं, जो आज भी हमारी आत्मा को आलोकित कर रहा है। वह हमें सूरजमुखी तो बनाता है, परमुखापेक्षी नहीं बनने देता—

वैदिक ऋषियों ने
गाया था
गहन रात्रि के अंधकार में
तमसो मा ज्योतिर्गमय
हम तो सूरजमुखी हैं

चिंतन मुक्त
चिंता मुक्त
तम से मुक्त
सूरजमुखी हूँ
परमुखापेक्षी नहीं हूँ

विष्णुजी की कविताओं में 'चलता चला जाऊँगा' बड़ी सुंदर कविता है, जिसमें उनका मन बोल रहा है। कविता में उनके मुक्त जीवन और सततप्रवाही लेखक का संपूर्ण बिंब नजर आता है, 'मैं बीते युग का भटका राही/नहीं जानता मेरी मंजिल कहाँ है/मैं चलता चला आ रहा हूँ/चलता चला जाऊँगा/दिन, पल, क्षण और पहर।' एक साहित्यकार होने का अर्थ क्या है, इसे वे कविता की आखिरी पंक्तियों में बड़ी आशा और आत्मविश्वास से छलछलाते शब्दों में व्यक्त करते हैं। मानो आत्मिक आनंद से उमगते हुए शब्दों में वे कहते हैं—

मैंने प्रकाश को उगते हुए देखा है
अंधकार में
मैंने शब्द को जगते हुए देखा है शून्य में
कहीं भी तो थकी नहीं है दृष्टि
कहीं भी तो रुकी नहीं है सृष्टि
इसलिए शब्द शब्द नहीं रहा मेरे आगे
अर्थ हो गया है
सृष्टि सृष्टि नहीं रही, दृष्टि हो गई है
फिर भी रुका नहीं हूँ मैं
चलता चला आ रहा हूँ
चलता चला जाऊँगा
क्योंकि मुझे अभी दृष्टि को अर्थ देना है
और अर्थ को उसका आकार देना है
इसलिए चलता चला आ रहा हूँ
चलता चला जाऊँगा···

सुशीलाजी विष्णु प्रभाकर की पत्नी ही नहीं, सही मायने में हमसफर थीं, जिन्होंने उन्हें संकट के समय बल दिया। उनके लेखक होने में उनका बड़ा हाथ था। विष्णुजी उन्हें अपनी शक्ति मानते थे। उनकी आत्मकथा में भी बीच-बीच में जीवन सहचरी सुशीलाजी के बारे में उनकी कभी न भूलने योग्य ऐसी टिप्पणियाँ हैं, जिनके शब्द-शब्द में उनके अंतर का प्यार और मधुर भावनाएँ गुँथी हुई हैं—

''मैं बयालीस वर्षों के उस संघर्षपूर्ण जीवन में जिधर भी झाँकता हूँ, उस साधारण लड़की की भाषा में मुझे वही असाधारण प्यार और अनिर्वचनीय माधुर्य परिलक्षित होता है, वह किसी मध्ययुगीन पतिव्रता का आत्मसमर्पण नहीं था, बल्कि बीसवीं सदी की जाग्रत् नारी की सही साहचर्य की कामना थी। और वह कामना उस प्रेम में से शक्ति पाती थी, जो नर-नारी के सह संबंधों का आधार है। श्रीमती लीलावती मुंशी ने पो कैरोल को उद्धृत करते हुए एक स्थान पर लिखा है, स्त्री का प्रभाव जहाँ होता है, वहाँ वह अधिकांशत: मूक होता है।···सन् १९३८ से सन् १९७९ तक की इस अवधि में शब्द जरूर बदले, पर अर्थ कभी नहीं बदला।···'' *(वही, पृ. १९१)*

पत्नी का न रहना विष्णुजी के जीवन की ऐसी त्रासदी थी, जिसने उन्हें भीतर-बाहर से हिला दिया। उसे सहन कर पाना उनके जीवन का सबसे कठिन इम्तिहान था। हालाँकि वे तरह-तरह से खुद को समझाने की कोशिश करते हैं। एक जगह वे दार्शनिक ढंग से टिप्पणी करते हैं—

''मनुष्य ने अपने जन्म से लेकर आज तक कितनी प्रगति की, परंतु क्या जन्म-मरण पर अंकुश लगा सका। नर है, नारी है तो नया जन्म अनिवार्य है और जब जन्म है तो मरण को कौन रोक सकता है? यह दूसरी बात है कि कुछ मरण बलिदान की संज्ञा पा जाते हैं, कुछ व्यक्ति को अमर कर देते हैं, और कुछ किसी के लिए दर्द बन जाते हैं। ऐसा दर्द, जिसको न तो स्वर दिया जा सकता है और न ही भुलाया जा सकता है। बस सहा जा सकता है। सबके बीच में रहकर अकेले सहा जाता है। यह अकेलापन कितना त्रासद होता है, यह मैं पत्नी के देहांत के बाद ही जान सका···'' *(वही, पृ. १९९)*

यों विष्णुजी एकांतिक नहीं, जीवनधर्मी लेखक हैं। खुले मन के लेखक। जो भी मिलने आता, उससे खुलकर मिलते थे। लेखकों और पाठकों दोनों को ही उनका बड़ा स्नेह हासिल होता। विष्णुजी सबसे इतने प्रेम से मिलते थे कि हर कोई चकित होता था। एक बार सुप्रसिद्ध लेखक मस्तराम कपूर उनसे मिलने गए। लौटकर वे चकित थे—

''मेरे लिए यह सुखद आश्चर्य था। मैं दर्शनाभिलाषी नए लेखक की हैसियत से वहाँ गया था और मुझे मिला स्थापित लेखक का सम्मान। मैं इतना अभिभूत था कि कुछ कह भी नहीं पाया। विष्णुजी काफी युवा दिख रहे थे। उनके निचले होंठ ऊपर के होंठों से थोड़ा स्थूल होने से मुझे कुछ ऐसा लगा कि वे निश्छल प्यार करनेवाले और बाँटनेवाले व्यक्ति हैं।''

विष्णु प्रभाकर ने देहदान करके एक नया आदर्श सामने रखा। उन्होंने मानो अपने शरीर को भी मानव-मुक्ति के यज्ञ में अर्पित कर दिया। यह कोई छोटी बात नहीं। इससे उनकी बड़ी सोच पता चलती है, और जो कहा, उसे पूरा कर दिखाने की जिद भी। इससे अभिभूत होकर डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं—''लोग परलोक-चिंता में घुलते रहते हैं। देखो इस आवारा मसीहा को, जिसने अपने शव की अंत्येष्टि भी नहीं होने दी, जो मरकर भी काम आया।''

सच तो यह है कि विष्णु प्रभाकर की जीवन-यात्रा और सृजन-यात्रा दो अलग-अलग चीजें न होकर, वस्तुत: एक ही थीं। उनके लेखक होने और वास्तविक जीवन के बीच कोई फाँक न थी। जो जीवन के आदर्श थे, वे लेखन के आदर्श भी बने। जो कुछ कहा, उसे जीवन में उतारा। यह भी एक बड़ा तप ही है। शब्द-तप···आत्म-तप और वाणी-तप भी!

५४५ सेक्टर-२९, फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८१०६०२३२७

धूप की उष्मित छुवन से...

● रामदरश मिश्र

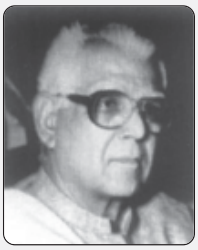

हिंदी के मूर्धन्य कवि-साहित्यकार, जिन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं को अपने रचनात्मक अवदान से समृद्ध किया। 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' उपन्यासों की धूम रही। अभी हाल में कविता-संग्रह 'आम के पत्ते' व्यास सम्मान से अलंकृत। इसके अतिरिक्त भी अनेक विशिष्ट सम्मानों से सम्मानित।

: एक :

मेरे दिल में तेरा ही नाम है, शुभ अक्षरों में खुदा हुआ,
फिर क्या पता किस हेतु तू चुपचाप मुझसे जुदा हुआ।

मुझे है पता कि हूँ आदमी मामूलियत से बना हुआ,
इतरा रहा है घमंड से, बता तू कहाँ का खुदा हुआ।

हलचल भरा है जिगर मेरा, कहने को क्या-क्या उमड़ रहा,
पर बात है जाने न क्या, मुँह मेरा कब से मुँदा हुआ।

दिया क्या-क्या प्यारे जहान ने मुझको कि मैं हूँ हँसी बना,
कितना किया, करता रहा, अब तक न कर्ज अदा हुआ।

कब तक रहेगा बना भँवर गलियों में कलियों पर झूमता,
अब घर को अपने सँभाल तू अब तो है शादीशुदा हुआ।

: दो :

रस्ते में रोशनी तेरी मुसकान हो गई,
पहचान थी न तुझसे यों पहचान हो गई।

कितना मैं चला, चलता रहा, राह कठिन थी,
देखा जो तुझे राह वो आसान हो गई।

अब तक तो उदासीन-सी थी मुझसे ये दुनिया,
जाने क्या हुआ आज कदरदान हो गई।

था रात का तमस न रहा सूझता कुछ भी,
लेकिन ये शमा मेरी मेहरबान हो गई।

आई थी खुशी घर मेरे रहने के वास्ते,
दो दिन के लिए हाय वो मेहमान हो गई।

धड़कन से भरा आदमी खाता रहा ठोकर,
पत्थर से बनी मूर्ति लो भगवान हो गई।

पलभर को नहीं चैन से सो पाया आदमी,
सपनों से आज नींद परेशान हो गई।

रोती रही अकेली पड़ी रागिनी उसकी,
लोगों के स्वर मिले तो वो सहगान हो गई।

: तीन :

अब तो यारों उठे हैं, बहुत सो लिए,
झूठे ख्वाबों के संग हम बहुत हो लिए।

अब तो ताजा हवाओं से बातें करें,
बंद हैं खिड़कियाँ जो उन्हें खोलिए।

अपने भीतर में ही खोजें अपनी हँसी,
दूसरों की हँसी हँस बहुत रो लिए।

अब तो किरणों के संग राह में चल पड़ें,
रात का खौफ ऊपर बहुत ढो लिए।

बैठे गुमसुम से हैं आप क्यों राह में,
पूछता है समय अब तो कुछ बोलिए।

डाँटकर झूठे रहबर से कह दीजिए,
घोला अब तक तो अब मत जहर घोलिए।

: चार :

पेड़ हैं कुछ खुश समझकर आ रहा ऋतुराज है,
भर रही पंखों में चिड़ियों के नई परवाज है।

हो रही महसूस है खुशबू हवाओं में मधुर,
दिख रहा कुछ आज फूलों में नया अंदाज है।

धूप की उष्मित छुवन से फूल-सी खिलती त्वचा,
बज रहा जैसे दिशाओं बीच कोई साज है।

खुल गई सिमटी हुई फसलों के फूलों की हँसी,
उग रही कंठों में गाँवों की नई आवाज है।

भूल जाओ कल तलक के वक्त की नाराजगी,
दोस्त बन खुशियाँ लुटाता देख लो दिन आज है।

आर-३८, वाणी विहार
उत्तम नगर-११००५९
नई दिल्ली
दूरभाष : ०९२११३८७२१०

कहानी

पंचायत का फैसला

● मायाराम पतंग

मैं ने पूछा, ''पिताजी, आप उदास क्यों हैं?'' थोड़ी देर तो उन्होंने आनाकानी की, परंतु फिर बताना पड़ा। पिताजी बोले, ''कभी-कभी अपने ही काटने लगते हैं तो पीड़ा अधिक दुखदायी हो जाती है। तुम्हारे चाचा के लड़के ने ही हमारे घर की जमीन पर कब्जा कर लिया है।''

मैंने कहा, ''पर मंगत चाचा के पास तो अपना मकान है ही, फिर बड़े चाचाजी का घर का भी वे ही उपयोग कर रहे हैं।''

पिताजी बोले, ''सो तो सबकुछ है। उनका बड़ा लड़का तो चंडीगढ़ में है। दो छोटे गाँव में रहते हैं। कहते हैं, बीचवाले ने हमारीवाली जमीन पर दुकान बना ली।''

मैं बोला, ''अच्छा, हमसे पूछा तक नहीं। फिर तो हमें पुलिस में रिपोर्ट करानी चाहिए। परंतु आपसे किसने कहा?'' पिताजी बोले, ''यों तो गाँव से कोई-न-कोई आता ही रहता है, परंतु यह सूचना राम प्रसाद ने दी है। वह अपने खेत बेचने के लिए गाँव गया था। वहाँ उसने दुकान बनी हुई देखी।''

मुझे बहुत बुरा लग रहा था। हम गाँव में नहीं रहते तो क्या, इस प्रकार हमारी जन्मभूमि कोई हथिया लेगा। मैं छुट्टी लेता हूँ। सुबह ही मैं गुलावठी थाने में जाकर रिपोर्ट कराता हूँ। पिताजी बोले, ''बेटा! आपस का मामला है। पुलिस में नहीं, पंचायत में शिकायत करनी चाहिए। मंगत राम मेरे चाचा का ही तो बेटा है। मेरा भाई ही तो है। उसका पुत्र तुम्हारा भी भाई ही है। गाँव चलते हैं, पंचायत बुलाकर समस्या सुलझ जाएगी। पुलिस में तो बरसों लग जाएँगे। बार-बार थाने, कचहरी में कौन चक्कर काटेगा?'' मैंने भी बात मान ली।

मुंशी प्रेमचंद की पंच परमेश्वर कहानी मेरे मानस-पटल पर कौंध गई। मुझे भी लगा, पंच तो सचमुच निस्स्वार्थ और सच्चा न्याय करते हैं। न्याय करते समय परमेश्वर ही उनमें प्रवेश कर जाता है।

अगले दिन हम दोनों (बाप-बेटे) सुबह छह बजे ही अपने गाँव चल दिए। मैं तो चार-छह साल में कभी ही गाँव जा पाता हूँ! मेरे बड़े भाई तो कभी गाँव जाते ही नहीं। छोटा भाई तो फौज में है। उसने तो गाँव देखा ही नहीं। वह तो दिल्ली में ही जनमा-पढ़ा और फौज में भरती हो गया। एक महीने की छुट्टी लेकर आता है तो रिश्तेदारी में भी नहीं जा पाता। फिर गाँव में हमारा बचा भी क्या है। गाँव में कुएँ के बाईं ओर दो सौ गज घेर की जगह थी। वह पिताजी ने बेच दी। बेचते नहीं तो क्या करते?

जाने-माने साहित्यकार। तीन कविता-संग्रह, पाँच नैतिक शिक्षा, छह पुस्तकें शिक्षण साहित्य पर, दो गद्य-संग्रह, दो खंडकाव्य, चार संपादित पुस्तकें, छह गीत-संकलन। हिंदी अकादमी तथा दिल्ली राज्य सरकार द्वारा सम्मानित। संप्रति 'सेवा समर्पण' मासिक में लेखन तथा परामर्शदाता; राष्ट्रवादी साहित्यकार संघ (दि.प्र.) के अध्यक्ष; संपादक 'सविता ज्योति'।

पड़ोस के पडित रूपचंदजी हर महीने दिल्ली आ जाते। दिन में घूमते-फिरते, रात को हमारे घर ठहरते, दोनों समय भोजन करते और अगले दिन सुबह पाँच रुपए दक्षिणा लेकर विदा होते। साथ ही हर बार यह आग्रह करते, 'चाचा! यो जमीन तो बेकार पड़ी है। मोय दे दोगे तो मेरो भी उद्धार हो जाएगा और या धरती को भी।'

मैं सदा पिताजी से विनती करता कि जमीन मत बेचना, क्योंकि दिल्ली में भी तो किराए के मकान में रहते हैं। कम-से-कम गाँव में तो अपनी जगह रहे।

एक दिन पिताजी ने कहा कि घेर की जमीन तो पंडितजी को देनी ही पड़ेगी। जितने की जमीन होगी, उतने रुपए तो हम दक्षिणा के रूप में दे बैठेंगे, और जब तक नहीं देंगे तब तक वे आते ही रहेंगे। फिर मैंने भी हाँ कर दी और पिताजी ने मात्र १४०० रुपए में दो सौ गज जमीन पंडित रूपचंद शर्माजी को दे दी। वहाँ से सौ गज दूर उसी सीधी गली में हमारा घर था। घर तो सौ गज में बना होगा, पर अब तो मिट्टी का ढेर हो चुका। दरवाजे-चौखट कड़ी और चक्की आदि तो सब मंगत चाचा ने पहले ही निकाल ली थी। अब गली की तरफ उनके सपूत ने दुकान भी बना ली। दरअसल, तीनों चाचाओं के घर अंदर जाकर पड़ते थे। हमारा हिस्सा गली की ओर पड़ता था।

दिल्ली से हमारा गाँव मात्र ११० किलोमीटर है, परंतु गाँव तक न तो बस जाती है न रेल। पहले दिल्ली बस अड्डे से गाजियाबाद की बस पकड़ी। धौलाना, दादरी एनटीपीसी और अनेक गाँवों से होती हुई बस १० बजे गुलावठी पहुँच गई। गुलावठी में अच्छा, बड़ा बाजार है। मेरठ, हापुड़, बुलंदशहर जानेवाली बसें यहीं से गुजरती हैं। सब्जी बाजार में ताँगा स्टैंड है। ताँगेवाले परतापुर, निमचाना, गंगावली आदि के लिए आवाजें लगा-लगाकर यात्रियों को बुला रहे थे। पूछा, ''नवादा जाने के

लिए ताँगा मिलेगा क्या?'' पता चला, नवादे का ताँगा आनेवाला है। वही वापस भी जाएगा। तब तक हमने दुकान पर चाय पी, आधा घंटे बाद ताँगा आया। ताँगेवाले से पूछा तो बोला, ''आप बैठो, मैं कुछ सब्जी खरीद लूँ। चलेंगे तो तब जब ताँगा भर जाएगा।''

उसकी गलती नहीं, यहाँ का रिवाज ही ऐसा है। यूपी में तो बसें भी तभी चलती हैं, जब भर जाती हैं। ग्यारह बजे ताँगा भर ही गया। ताँगा चल पड़ा। दस मिनट में बाजार पार किया तो रेलवे फाटक बंद मिला। दस मिनट बाद गाड़ी निकल गई तो ताँगा आगे बढ़ा। दोनों ओर आम के बाग देखकर मन प्रसन्न हो गया, फिर काली नदी का पुल दिखाई पड़ा। पुल से पहले ही सीधे हाथ को उस्तरा नामक गाँव में ताँगा मुड़ा। गाँव में एक बड़ा किला भी है, परंतु सड़क ठीक नहीं है। सड़क गाँव के बीच में से निकली है। सड़क पतली है। सड़क नहीं, एक गली ही कहें तो ज्यादा ठीक है। गाँव से पार होकर दोनों तरफ खेतों के बीच सड़क हवादार और चौड़ी हो गई है। गाँव के शुरू में ही कुआँ हुआ करता था, परंतु अब कुएँ से पहले जो माताओं के चबूतरे थे, उस पर भी मकान बन चुके हैं।

कुएँ के पास ताँगा रुका। मैं पिताजी से पूछ रहा था कि हम सुखबीर के घर चलें या रूपचंद शर्माजी के घर चलें। तभी आवाज आई—''कौन-कौन? अरे माया है क्या?'' मैंने आश्चर्य से देखा। एक अंधा चक्षु मुहँ उठाए ऊपर को देखकर बोल रहा था। मुझे पहचानने में देर नहीं लगी। नानक जन्मांध था, परंतु अभ्यास इतना कि खेत-क्यार का सब काम बखूबी कर लेता था। मैंने ताँगे से उतरते हुए कहा, ''भैया! आप नानक हैं न, आपने कैसे पहचाना?'' नानक का उत्तर था—''का अपने भैया की आवाज भूल जाऊँगो? तुम्हें याद हो या न हो, मोय खूब याद है जबकि तोय याद न होएगी। मैं तोकू भजन गानो सिखाय करै हो। अर तू अपनी प्यारी मीठी बोली में भजन सुनतो तो यह पड़ोस के धोबी तोय बटन इनाम में दिए करै हे।'' बचपन की यादें मेरे स्मृति-पटल पर कौंध गईं। पिताजी ताँगेवाले को पैसे दे चुके थे। नानक ने उनसे राम-राम करी। तब तक सुखवीर भी आ गया। उसने हमारा थैला उठा लिया, ''ताऊजी, राम-राम! घर चलो, पहले खाना खाओ, फिर जैसे कहोगे, मैं आपको ही बच्चा हूँ, आपसे बाहर नाऊँ।''

पिताजी की नाराजगी जाने कहाँ गई। चुपचाप सुखवीर के साथ चल दिए। मैं भी चल पड़ा। मैं बोला, ''नानक भाई, फिर मिलेंगे। अच्छा राम-राम।'' सुखवीर ने पानी पिलवाया। दस मिनट बाद ही खाने की थाली सामने आ गई। अरहर की दाल, बढ़िया चुपड़े फुलके और रायता। भूख भी लगी थी। चुपचाप खाना खा लिया। खाना खाकर बैठे तो सुखवीर ने ही बात शुरू की, ''ताऊजी! माफ करना। मैंने आपकीवाली जमीन पर एक छोटी सी दुकान बना ली है। खेत की जमीन तो थोड़ी सी है। वासू गुजारो नाय चलै। हमारेवाली जगह दुकान चलेगी ना। ऊ भीतर कू है। या मारै आपवाली जगह पै बना ई। आगै आपकी मरजी, आप इजाजत दैं तो करूँ, नाय तो बंद कर दूँ।''

पिताजी ने चुप्पी तोड़ी, ''पंचायत करनी है। जो पंचों की राय बनेगी, सोई करेंगे।'' मुझे फिर याद आ गई प्रेमचंदजी की कहानी—पंच परमेश्वर। एक बार फिर मैं मन-ही-मन आश्वस्त हो गया कि पंचायत का फैसला तो गलत हो ही नहीं सकता। सुखबीर बोला, ''ताऊजी, जैसी आपजी की मर्जी, मौकू तो आपही का हुक्म भी पंचायत को ही फैसलो है। तो ताऊजी! पंचायत तो साँझ कू छह बजे सू पहले नाय हो सकै। सब अपने-अपने काम धंधो सू निबट-निबटा कै ही आवै हैं। या फिर कल सुबेरे सात बजे बैठ सकै हैं।''

पिताजी बोले, ''साँझ कू ही बुलवा लै।''

सुखवीर बोला, ''अच्छा ताऊजी। दुकड़िया (पौली) में खाट बिछ गई हैं। आप आराम करें! कोई चीज की जरूरत होय तो यू आपको पोतो महेंदर है। आप आवाज दीजो! सब तरियां सेवा करैगो। मैं एक बेर पंचन कू बुलावा दे आऊँ! अच्छा जी।''

सुखवीर हाथ में लाठी लेकर चला गया। हम दुवारी में खाट पर लेट गए। खाना खा चुके थे और कोई काम नहीं था। लेटते ही मन में विचार चलने लगा। हमारी जमीन खाली हो जाएगी। यह तो अपने ही भाई ने दुकान बनाई थी, फिर मान लो कोई और दबंग घेर ले तो फिर तो कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने ही पड़ेंगे। मेहनत की कमाई का धन परिवार पालन से हटाकर यहाँ लगाना पड़ेगा। दिन-रात की टेंशन भी रहेगी। एक विचार आया कि यहाँ सेवा भारती की ओर से एक शिशु मंदिर या बालवाड़ी केंद्र खुलवा दें। फिर मन हुआ कि क्यों न एक शिव मंदिर बनवा दें। बिना पुजारी रखे भी चलेगा, फिर भी सुबह-शाम साफ-सफाई की जिम्मेदारी तो किसी को देनी ही होगी। कभी विचार आया कि धर्मशाला सबसे ठीक रहेगी। किसी को जरूरत होगी तो प्रयोग करेगा और काम हो जाने पर सफाई करवा देगा। जब किसी और को चाहिए तो वह पुनः सफाई करवा के उपयोग कर लेगा। बड़ी समस्या यह खड़ी हो रही थी कि चाबी लेने क्या लोग दिल्ली आएँगे? पंचायत को भी चाबी दे दी तो वो भी इस सुखवीर को ही दे देंगे। जब हम गाँव में नहीं रहते तो मालिक तो सुखवीर ही रहेगा। और जाने क्या-क्या विचार आते-जाते रहे। फिर सोचा पहले पंचायत का फैसला तो आने दें, पता नहीं ऊँट किस करवट बैठे?

तभी सुखवीर आया, ''बोला, ताऊजी! आज ही पंचायत साँझ कू बैठेगी, पर चौपाल में। हमें वहीं जानो पड़ेगो।'' पिताजी बोले, ''ठीक है,

वहीं चलेंगे।''

पंचायत चौपाल में जमी थी। सुखवीर और हम दोनों पहुँच गए। पिताजी के लिए पाँच पंचों में कोई पराया नहीं था। तेजा जाट प्रधानजी के बड़े बेटे को दिल्ली में पिताजी ने नौकरी पर लगवाया था। चेता कुम्हार का बड़ा बेटा भी पंच था। चेता और पिताजी साथ पढ़े थे। चेता जब दिल्ली आता तो हमारे घर ही रहता था। किसनू बामन तो खुद पड़ोसी थे। उनके भतीजे रूपचंद को ही तो घेर की जमीन बेची थी। नत्थी गूजर पहलवान। पिताजी ने हमारे खेत तो बड़े भाई की शादी पर ही नत्थी को बेच दिए थे और बुद्धन नाई उनमें सर्वाधिक पढ़ा-लिखा था। सब पंच पिताजी के सुपरिचित ही थे।

बुद्धन ने खड़े होकर कहा, ''पहले दिल्ली से आए श्रीराम अपने पक्ष को पेश करें।''

पिताजी खड़े हुए और संक्षेप में अपनी बात रखी, ''प्रधानजी और आदरणीय पंचो! मेरी खेत और घेर की जगह बिक चुकी है, घर की जगह के भी बहुत ग्राहक आए, परंतु मैं गाँव से अपने संबंध समाप्त नहीं करना चाहता, इसलिए मैंने उस जमीन को नहीं बेचा। अब उसी जमीन पर मेरे ही भाई मंगत के पुत्र ने बिना इजाजत के दुकान बना ली है। यह अवैध कब्जा है। उसकी दुकान हटवाकर मेरी जमीन खाली करवाई जाए।'' पिताजी अपनी बात कहकर बैठ गए। प्रधानजी ने सुखवीरा को इशारा किया। वह खड़ा होकर बोला, ''हुजूर, मैं एक गरीब बाल-बच्चेदार गृहस्थ हूँ। खेत कुल पाँच बीघे भी पूरा नहीं है। उसमें दो भैंसों का चारा भी पूरा नहीं होता। मैंने ताऊजी की जमीन पर एक छोटी सी दुकान बना ली है। किसी गैर की जमीन पर कब्जा नहीं किया। ताऊजी का मैं भी एक बालक हूँ। वे कहें तो मैं किराया भी दे सकता हूँ। कीमत लगा दें तो मैं खरीद भी सकता हूँ। पर मेरे पास नकद रकम नहीं है। जो कीमत तय करेंगे, मैं धीरे-धीरे किश्तों में अदा कर दूँगा।''

अब बारी पंचायत की थी। उन्होंने अंदर कमरे में आपस में दस मिनट चर्चा की। हम बाहर रहे। फिर हमें बुलाकर फैसला सुनाया। प्रधानजी बोले, ''श्रीरामजी! आप तीस साल से दिल्ली में रह रहे हैं। हमें लगता है कि आप या आपका कोई पुत्र यहाँ गाँव में आकर नहीं रहनेवाला। खेत की जमीन आप बेच चुके, घर टूट गया। जब भी आप यहाँ आओगे तो आपको मकान बनाना पड़ेगा। पंचायत मानती है कि यह भी आपके परिवार का बालक है। आप या आपका कोई सा पुत्र गाँव में अपना मकान बनाकर रहने का इरादा करता है, तो पंचायत आपके साथ है। पंचायत सुखवीर से जमीन खाली करवाकर देगी। अब इसने रकम जुटाकर दुकान बना ली है तो इसे गुजारा करने दो। हम सब सुखवीर की ओर से आपसे आग्रह करते हैं।''

पिताजी बोले, ''पंचों का फैसला स्वीकार है। हम जब अपना मकान बनाना चाहें तो हमें पंचायत जमीन खाली करवाकर दे। दुकान हटवाने का हम कोई हरजाना नहीं देंगे।'' मैं तो चुप ही रहा। मैं किस हैसियत से बोलता। एक तरह से फैसला सुखवीर के पक्ष में ही था। मैंने यही सोचा, पंच परमेश्वर होते हैं। परमेश्वर न्यायकारी हैं तो दयावान भी हैं। सुखवीर पर गरीब जानकार उन्होंने दया की और जमीन हमारी ही रहेगी। इस प्रकार न्याय का विश्वास भी दिलाया। रात को सुखवीर ने सरसों का साग और मक्का की रोटी प्रेम से खिलवाई। सुबह ही हमें दिल्ली की गाड़ी पकड़वाने के लिए वह गुलावठी तक छोड़ने आया और हमारे पाँव छूकर वापस गया। बार-बार मन में विचार आता है, क्या पंचायत ने सुखवीर का पक्ष लेते हुए फैसला नहीं किया? उन्होंने हमें बाहर का माना और सुखवीर को गाँववाला, फिर सोचता हूँ, पंच परमेश्वर होते हैं तो दीन पर दया भी तो करेंगे।

एफ-६३, गली नंबर-३, पंचशील गार्डन
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ९८६८५४४१९६

कविता

युग बीते

● **बालकवि बैरागी**

युग बीते संवाद नहीं है,
कब बोले कुछ याद नहीं है।

सपने सबके अलग-अलग हैं,
सपनों का अनुवाद नहीं है।

सूरज से पहले उठ जाना,
मुरगे का अपराध नहीं है।

जबसे घर का चूल्हा बदला,
पहले जैसा स्वाद नहीं है।

अंधा सूरज अंबर नाप,
तिलभर कहीं विवाद नहीं है।

सातों सुर खामोश पड़े हैं,
कोई भी नौशाद नहीं है।

खुद की जो भी करे आरती,
मिलता उसे प्रसाद नहीं है।

दीवाली की हो गई होली,
शेष बचा प्रह्लाद नहीं है।

मिट्टी जिसका तन-मन-धन हो,
उसे कहीं अवसाद नहीं है।

जाने को ही आए हम सब,
कोई भी अपवाद नहीं है।

तुम अनादि हो तुम अनंत हो,
यह कोई उन्माद नहीं है।

कोई भी इस कोलाहल में,
सुनता अनहद नाद नहीं है।

आज राम का स्वागत करने,
शबरी और निषाद नहीं हैं।

कविनगर, पोस्ट-मनासा,
जिला-नीमच-४५८११० (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२५१०६१३६

बिन पानी सूनी सब दुनिया···

● मालती शर्मा

बूँद-बूँद हर वक्त बचानी है

इस धरती का जीवन पानी है
कल का पानी आज खर्च कर डालोगे
माँगेगा कल पानी तो कहाँ से दोगे?
पानी की बरबादी यदि रोकी नहीं
पानी! पानी! की चीखों से भरी दुनिया
भू-जल रीती धरती विरासत में दोगे।
वर्षा की बूँदों से झरता,
धरती का अमृत है पानी
बिन पानी सूनी सब दुनिया,
कहती कवि रहीम की बानी
बूँद-बूँद हर वक्त बचाओ,
है अनमोल बूँद भर पानी,
मत लो शावर बाथ, नहाओ बाल्टी से
कारों को मत धोओ, पोंछो कपड़े से
ब्रुश भी करो, मुँह धोओ पानी मग में ले
टूटे नलों की जल्दी तुरंत मरम्मत हो
मेहमानी में खाली गिलास, भरा जग हो
उस पानी को सहेजो, बचाओ
चोंच डुबोता जो चिड़िया की,
हाथी को नहलाता पानी
चींटी से ले हाथी तक
सबकी प्यास बुझाता पानी,
यह भी जान लो ऋषि कहते हैं—
इस धरती पर रहने आनेवाला
पहला नागरिक पानी
महाप्रलय में भी धरती पर
अमर रहेगा पानी पानी पानी
हरी चुनरिया है धरती की,
जंगल की हरियाली पानी।

माँ धरती को बरतन दें

अँट गए तालाब और पट गए कुएँ
हाथी से चींटी तक के लिए पानी
बतलाओ धरती माँ, किसमें भरें···?
आओ हम सब मिलकर विश्व भर की गृहणी
अपनी धरती माँ को खूब सारे बरतन दें।
अपना जल भरने को साफ-स्वच्छ
नए-नए छोटे-बड़े बतरन दें।
गहरे हों पोखर-तालाब खोदें नए कुएँ
वर्षा का पानी यों ही न बहे
'एक गाँव दो तालाब' की अलख जगे
रालेगण सिद्दी के अन्ना हजारे के
बीज बोएँ पानी के···
गाँव-गाँव घर-घर में फसल उगे पानी की
अमृत की धारा वो नानी की कहानी की
चिड़िया से मानव तक की प्यास बुझे
सबकी डग पर नीर हो, हरी-भरी खेती।

स्वच्छता

स्वच्छता, सृष्टि का युग्मराग है—
पतझड़ वसंत के दो तारों में
कण-कण में बसा, बजता हुआ
कि पेड़ से झूलकर पत्ते
नई कोंपलों के, फूलों के आने को
रहने को, पेड़ का घर साफ करते हैं

कि स्वच्छता विश्व को दिया
प्रकृति से मिला वरदान है,
कि मनुष्य को मिले दो हाथ
जानवरों को पूँछ, पक्षियों को चोंच
स्वच्छता के लिए···
कि कुत्ता भी बैठने से पहले
पूँछ से जमीन साफ करता है
कि गाय, भैंस, घोड़ा, ऊँट पूँछ से
मक्खी, मच्छर भगाते
शरीर खुजाते, सहलाते हैं
बधाई है, बधाई है, तुम्हें जनलोक की
प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदीजी!
कि तुमने सुना 'सृष्टि का युग्मराग'
और बनाया उसे देश का स्वच्छता अभियान
पर बहुत देर से, अब कहीं जाकर
जबकि प्रकृति के लिए
हमारे लोक परंपरित पर्व, त्योहार, उत्सव, मेले
सदियों से हैं, घर-बाहर की, तन और मन की
स्वच्छता के अभियान।
होली और दीवाली तो हैं
सृष्टि भर के स्वच्छता के महाअभियान
पर प्रधानमंत्रीजी अभी भी
बहुत-बहुत जरूरी है, बड़ी कमी है इसकी
इन स्वच्छता अभियानों के साथ
सब तरह से सर्वत्र जुड़ना
प्रकृति का 'चर्या' तत्त्व का
कि कूड़े-कचरे, गंदगी, कबाड़ का
मिट्टी हो धरती बनना, और
कार्बन डाइ ऑक्साइड का
पीपल के पत्तों से प्राणवायु बनना।

सुप्रसिद्ध वरिष्ठ लेखिका। कविता, लोकवार्त्ता, लोक-संस्कृति, समीक्षा, बाल साहित्य तथा अद्यतन सामाजिक-राजनीतिक विषयों पर विगत अड़तालीस वर्षों से अनवरत लेखन। प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लगभग नौ सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित, विविध संग्रहों तथा शोध ग्रंथों में शामिल। छोटे-बड़े कई दर्जन पुरस्कार-सम्मानों से अलंकृत। संप्रति लेखन में रत।

साअ

फ्लैट नं. ८, मधु अपार्टमेंट
१०३४/१ मॉडल कॉलोनी, कैनाल रोड
पुणे-४११०१६ (महा.)
दूरभाष : ०९४२३२४७०३३

पश्चिम का आर्य सिद्धांत और आंबेडकर का अभिमत

● कुलदीप चंद्र अग्निहोत्री

पश्चिम के आर्य सिद्धांत की चर्चा कर लेने से पूर्व यह जान लेना बेहतर होगा कि यह सिद्धांत क्या है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में विश्व भर के विद्वानों में यह विषय सर्वाधिक चर्चित था। मोटे तौर पर पश्चिम में जनमे इस सिद्धांत का निष्कर्ष था कि यूरोप और भारत के लोग मूल रूप से आर्य हैं और एक ही नस्ल के हैं। इसका कारण भाषा विज्ञान के अनुसंधान में मिले प्रमाण थे कि यूरोपीय भाषाओं और भारत की भाषाओं का मूल एक ही है। १७६७ में एक फ्रांसीसी जूसिएट पादरी Gaston-Laurent Coeurdoux, जिसने अपना काफी जीवन हिंदुस्तान में ही बिताया था, ने संस्कृत और यूरोपियन भाषाओं के बीच की समानता को पकड़ा था। उसके कुछ साल बाद ही १७८६ में सर विलियम जोन (१७४६-१७९४) ने भी भारत व यूरोप की भाषाओं की समानता के आधार पर प्रोटो भाषा तैयार की थी। विलियम जोन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने आर्यों को एक नस्ल माना। भाषा के समान उद्‌गम के प्रमाण से उन्होंने कयास लगाया कि भारत में आर्य लोग सहस्राब्दियों पहले यूरोप से ही चलकर आए थे।

इस सिद्धांत के अनुसार अंग्रेजों ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि भारत में आर्य बाहर से आक्रमणकारी के रूप में आए थे, उन्होंने यहाँ के मूल निवासियों को पराजित कर इस देश पर कब्जा कर लिया। मूल निवासियों को दास बना लिया और उन्हें शूद्र का दर्जा दिया। द्रविड़ों को मारकर दक्षिण में धकेल दिया। सिंधु घाटी की सभ्यता के जो अवशेष मोहनजोदड़ो-हड़प्पा इत्यादि अनेक स्थानों पर मिलते हैं, उसको भी यूरोपीय विद्वानों ने आर्यों के आक्रमण से नष्ट हुई सभ्यता के शेष बचे अवशेष बताया। सिंध में १९२४ में जॉन मार्शल ने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर सिंधु घाटी की सभ्यता को मेसोपोटामिया से भी पुरानी तो बताया था, पर साथ ही वे इसमें द्रविड़ सभ्यता की कल्पना भी करने लगे थे। उनका शिष्य मोर्टीमर व्हीलर, उनसे भी दो कदम आगे निकला। १९४६ में जब वह सिंधु घाटी में उत्खनन कर रहा था तो उसे वहाँ ३७ नरकंकाल मिले। उसने तुरंत घोषणा कर दी कि आक्रमणकारी आर्यों के हाथ, पुरुष, स्त्री, बालक जो भी आया, उन्होंने गलियों में ही अत्यंत निर्दयता से उनका कत्ल कर दिया और उन्हें वहीं मरने के लिए छोड़ दिया। अब यह कल्पना करने में कितनी देर लगती कि सिंधु घाटी की सभ्यता के लोग द्रविड़ थे। आर्यों ने उन्हें निर्दयता से मारा था और उन्हें दक्षिण में धकेल दिया। अब तो पश्चिमी आर्य सिद्धांत को पंख लग गए। भारत और योरोपीय भाषाओं के एक स्रोत की खोज को आधार बनाकर इन पाश्चात्य विद्वानों ने सहस्राब्दियों पूर्व आर्यों के भारत पर आक्रमण की ही कल्पना कर ली और इन नरकंकालों को देखकर आर्य सिंधु घाटी की सभ्यता को नष्ट करनेवाले बना दिए गए तथा द्रविड़ों को दक्षिण में धकेल दिए जाने की कहानी गढ़ ली।

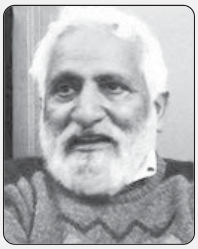

सुपरिचित लेखक। हि.प्र. विश्वविद्यालय के धर्मशाला क्षेत्रीय केंद्र के निदेशक और भीमराव आंबेडकर पीठ के अध्यक्ष रहे। हि.प्र. में दीनदयाल उपाध्याय महाविद्यालय की स्थापना की। लगभग दो दर्जन से अधिक देशों की यात्रा, पंद्रह से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति भारत-तिब्बत सहयोग मंच के अखिल भारतीय कार्यकारी अध्यक्ष और दिल्ली में 'हिंदुस्थान समाचार' से संबद्ध।

इस सिद्धांत में एक और गूढ़ निहितार्थ भी छिपा हुआ था कि भारत के जो लोग अंग्रेजों को यहाँ से निकल जाने के लिए कह रहे हैं, वे भी उनकी तरह बाहर से ही आए हुए हैं। अंतर केवल इतना है कि वे कुछ समय पहले भारत में आए और अंग्रेज उनके बाद आए। भारत के मूल निवासी तो दास, शूद्र, द्रविड़, दलित इत्यादि हैं, जिनके साथ आर्य लोग दुर्व्यवहार करते हैं। अंग्रेज आर्य शब्द को जाति या प्रजाति के अर्थ में प्रचलित करने का प्रयास कर रहे थे। उनके लिहाज से आर्य एक नस्ल थी। इसे आश्चर्य ही कहा जाएगा कि भारत में भी बहुत से विद्वानों ने इस सिद्धांत को अपनाया ही नहीं बल्कि इसे आगे प्रचारित-प्रसारित करना भी शुरू कर दिया (आज तक भी कर रहे हैं)। भीमराव आंबेडकर ने अंग्रेजों के इस सिद्धांत को चुनौती ही नहीं दी बल्कि पुख्ता तर्कों से उसके खोखलेपन को भी सिद्ध किया। १९४६ में जब मोटीमर व्हीलर नरकंकालों पर सवार होकर आर्यों को हमलावर और हत्यारे सिद्ध कर रहे थे तो १९४६ में ही पश्चिमी विद्वानों के तर्कों का उत्तर देने के लिए आंबेडकर 'शूद्र कौन थे?' नामक ग्रंथ लिख रहे थे।

आंबेडकर ने अंग्रेजों के आर्य सिद्धांत को सूत्रबद्ध करते हुए लिखा कि अन्य मुद्दों पर असहमत होते हुए भी पश्चिमी विद्वान् निम्न मुद्दों पर एकमत हैं—

१. वैदिक साहित्य की रचना आर्यों द्वारा की गई।

२. आर्य भारतवर्ष में बाहर से आए और उन्होंने भारत पर

आक्रमण किया।

३. भारत के मूल निवासी दास और दस्यु थे और वे आर्य जाति से भिन्न थे।

४. आर्य गौर वर्ण के थे और दास-दस्यु श्याम वर्ण के थे।

५. आर्यों ने दास और दस्युओं पर विजय प्राप्त की।

६. दास और दस्युओं के पराजित होने और गुलाम बना लिये जाने पर ही वे शूद्र कहलाए।

७. शारीरिक रंग के पक्षपाती आर्यों ने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जन्म देकर गोरे रंग और काले रंगवाली जातियों को सदा सर्वदा के लिए अलग कर दिया।

यह सारा विवाद इसलिए शुरू हुआ, क्योंकि अधिकांश यूरोपीय विद्वानों ने आर्य को एक नस्ल या प्रजाति मान लिया। लेकिन आंबेडकर आर्य को प्रजाति या नस्ल नहीं मानते। वे मैक्समूलर से सहमत हैं, जिनके अनुसार, आर्य कोई जाति या नस्ल नहीं है बल्कि एक भाषा है। इसका आशय भाषा के सिवाय कुछ नहीं। इस भाषा को बोलनेवाले आर्य हैं, ''आर्य का अर्थ भूमि जोतनेवाला है, आर्य का प्रयोग सामान्यत: वैश्य, कृषक के लिए किया गया है, आर्य का प्रयोग श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न के लिए भी होता है। दुर्भाग्य से पाश्चात्य विद्वान् इसी भाषा के आधार पर भारत पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत गढ़ते रहे हैं। दरअसल नस्ल या प्रजाति का ताल्लुक उसकी अलग शारीरिक रचना से होता है। आर्यों के मामले में इन चीजों का संबंध नहीं है।'' आंबेडकर के अनुसार, ''मैं बार-बार कह चुका हूँ कि आर्य शब्द का संबंध न रक्त से है और न ही शारीरिक ढाँचे से, न बालों से और न कपाल से। मेरा सीधा तात्पर्य है, जो आर्य भाषा बोलते हैं, वही आर्य हैं।'' उन्होंने लिखा, ''आर्य एक जन समुदाय का नाम है। जो चीज उन्हें आपस में बाँधे हुए थी, वह यह कि एक विशेष संस्कृति को, जो आर्य संस्कृति कहलाती थी, सुरक्षित रखने में उनकी दिलचस्पी थी। जो भी आर्य संस्कृति स्वीकार करता था, वह आर्य था। आर्य नाम की कोई नस्ल नहीं थी।'' आर्यों के मूल को भारत से बाहर बताने के लिए अनेक यूरोपीय विद्वानों ने बहुत ऊँची उड़ानें भरी थीं। दरअसल यह सारा माजरा तब शुरू हुआ, जब वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह पता चलने लगा कि यूरोपीय भाषाओं और भारत की भाषाओं का मूल स्रोत एक ही है। इसी एक आधार पर पश्चिमी विद्वानों ने आर्यों को विदेशी मानना शुरू कर दिया। जबकि उनकी इस कल्पना के पीछे न कोई पुरातात्त्विक प्रमाण थे, न ही ऐतिहासिक। आंबेडकर ने बेनफे, प्रो. आइसक टेलर, गीजर इत्यादि सभी का उल्लेख किया। बेनफे भाषा के आधार पर आर्यों को भारत से बाहर तलाश कर रहे थे तो उसी आधार पर गीजर उन्हें जर्मनी का बता रहे थे। मैक्समूलर आर्यों की जड़ मध्य एशिया में जमा रहे थे। दूसरे लोग आर्यों का घर काकेशिया में तलाश रहे थे। उसका कारण सफेद रंग और भूरे बाल थे। आंबेडकर के अनुसार भी यह सारा नाटक १८३५ में डॉ. बोप की किताब 'तुलनात्मक व्याकरण' से शुरू हुआ। अपने अध्ययन के बाद बोप इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि यूरोप और एशिया के कुछ देशों की भाषाएँ एक ही मूल की हैं। बोप का कहना था कि इसका अर्थ हुआ कि इन सभी के पूर्वज एक ही थे। यदि यूरोप में और एशिया के कुछ देशों, जिनमें भारत प्रमुख है, एक ही मूल की भाषाएँ प्रचलित थीं, जिन्हें इंडो-जर्मैनिक या इंडो-यूरोपियन भाषा कहा गया, तब प्रश्न उत्पन्न हुआ कि फिर यह भाषा भारत में कैसे पहुँची? हिंदी में इसे भारोपीय भाषा भी कहा जाता है। इस आर्य भाषा का भारत पहुँचने का रास्ता पश्चिमी विद्वानों की दृष्टि में यही हो सकता था कि भारत में रहनेवाले आर्य लोग बाहर से आए हैं। लेकिन आंबेडकर ने इन सभी को खारिज किया।

आर्य आक्रमण के यूरोपीय सिद्धांत को सूत्रबद्ध करने के उपरांत आंबेडकर पूछते हैं—ऐसा कौन सा साक्ष्य है, जिससे पता चले कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ के मूल निवासियों को अपने अधीन कर लिया? जहाँ तक ऋग्वेद का संबंध है, उसमें तो रंचमात्र भी भारत पर बाहर से आक्रमण के संकेत नहीं हैं। यदि आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ के मूल निवासियों को पराजित कर दिया तो उसके संकेत वैदिक साहित्य में तो मिलने ही चाहिए थे। आंबेडकर ने इसके लिए पी.टी. श्रीनिवास आयंगर को उद्धृत किया, जिसके अनुसार, 'वेद मंत्रों में जहाँ-जहाँ आर्य, दास और दस्युओं का संदर्भ मिलता है, वहाँ पूजा पद्धति का संघर्ष है, प्रजाति का नहीं।' इसके बाद आंबेडकर ने ऋग्वेद के अनेक मंत्र देकर सिद्ध किया है कि आर्यों और दस्युओं के बीच का अंतर न तो प्रजातीय था और न ही शारीरिक बनावट का। दास और दस्यु भी आर्य हैं। लेकिन आंबेडकर आश्चर्यचकित हैं कि पश्चिमी विद्वान्, जो अत्यंत परिश्रमी माने जाते हैं, इस प्रकार के अवैज्ञानिक और कपोल कल्पित सिद्धांत को कैसे ले उड़े?

परंतु उसके बाद अगला प्रश्न पैदा होता है। यदि मान भी लिया जाए कि भारत और यूरोप में आर्य नाम की एक ही जाति है तो भारत पर आक्रमण की बात कैसे कही जा सकती है? इसकी व्याख्या भी बाबा साहेब ने की है। पश्चिमी मानसिकता यह मानकर चलती है कि यूरोप की जातियाँ एशिया की जातियों से श्रेष्ठ हैं। फिर इस श्रेष्ठ आर्य जाति के भारत में भी होने का एक ही तर्क हो सकता था कि इस श्रेष्ठ यूरोपीय जाति ने हिंदुस्तान के लोगों को जीता था और यहाँ अपना राज्य स्थापित किया था। यहीं से आर्यों के आक्रमण की कथा प्रचलित हुई। आंबेडकर लिखते हैं, 'श्रेष्ठता की इस परिकल्पना को यथार्थ सिद्ध करने के लिए भी इस कहानी को गढ़ने की आवश्यकता पड़ी। अब आक्रमण की बात कहने के सिवा और कोई तरीका नहीं था। इसीलिए पश्चिमी लेखकों ने यह कहानी रची कि आर्यों ने आक्रमण करके दासों और दस्युओं को पराजित किया।' इसी कल्पना को सिद्धांत का नाम दिया गया।

अब यदि आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत को प्रचारित करना है तो इस देश के कोई-न-कोई मूल निवासी भी तो ढूँढ़ने होंगे, जिन पर आर्यों ने आक्रमण किया और उन्हें पराजित किया। इसी तलाश में यह कल्पना की गई कि दास, दस्यु और द्रविड़ इस देश के मूल निवासी थे, जिन्हें पराजित कर आर्यों ने शूद्र बना दिया। यूरोपीय जातियाँ गोरी होने के कारण एशिया के लोगों से उनके श्याम वर्ण के कारण घृणा करती हैं।

अब यदि उन्होंने यह मान लिया है कि भारत के लोग आर्य हैं तो उन्हें अपनी रंगभेद की मानसिकता के लिए भारत में भी कोई आधार चाहिए था। इस आधार की तलाश में उन्होंने वर्ण-व्यवस्था में रंगभेद की स्थापना की। यूरोप के आर्य सिद्धांत में वर्ण-व्यवस्था रंगभेद पर आधारित है। लेकिन आंबेडकर के अनुसार इन परिकल्पनाओं में से कोई भी तथ्यों पर आधारित नहीं है। आंबेडकर लिखते हैं, ''यह दावा कि आर्य बाहर से आए और भारत पर आक्रमण किया और यह कल्पना कि दास या दस्यु भारत के मूल निवासी थे, एकदम गलत है। फिर यह कहना कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था आर्यों की रंगभेद की नीति पर आधारित है, यथार्थ से बहुत दूर है। यदि जातीय भेदभाव का आधार रंग ही है तो चारों वर्णों के चार रंग होने चाहिए थे, जो चातुर्वर्ण्य में शामिल हैं। किसी ने नहीं बताया कि वे चार रंग कौन से हैं और ये चार जातियाँ कौन सी हैं? यह सिद्धांत आर्य और दासों की कल्पना पर आधारित है। पहले को श्वेत और दूसरे को कृष्ण मान लिया गया है। आर्य जाति के अभ्युदय के सिद्धांत के प्रतिपादक अपने मत की पुष्टि में इतने उत्कंठित हैं कि वे यह भी भूल बैठे कि उनकी परिकल्पना में कितनी विसंगतियाँ हैं। ये केवल उत्पत्ति को सिद्ध करना चाहते हैं और इसलिए उन्होंने वेदों से जो कुछ अनुकूल लगा, सिद्ध साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया।'' आंबेडकर मानते थे कि वर्ण का अर्थ आस्था से संबंध रखता है, इसका रंग या रूप से कोई संबंध नहीं है। यह मान्यता भी तथ्यों पर आधारित नहीं है कि सभी यूरोपीय समूह गोरे रंग के ही थे और सभी आर्य भी गोरे-चिट्टे ही थे। यूरोप के लोगों के अनेक समूह भी काले रंग के थे और आर्यों में भी अनेक उतने गोरे नहीं थे। देवकीनंदन कृष्ण तो काले माने ही गए हैं। उनके आर्य होने पर तो किसी को शक नहीं है। आंबेडकर लिखते हैं, 'आर्यों में रंग संबंधी द्वेषभाव था, जिससे उनकी समाज-व्यवस्था निर्धारित हुई, यह बात निहायत बेसिर-पैर की है। यदि कोई ऐसा जन समुदाय था, जिसमें रंग संबंधी द्वेषभाव का अभाव था तो वह आर्यों का समुदाय ही था। ऐसा इसलिए कि उनमें कोई ऐसा रंग प्रधान नहीं था, जिससे वे अलग पहचाने जाते। अंग्रेजों के आर्य सिद्धांत का गहन अध्ययन करने के पश्चात् और उनकी नीयत को जाँच परख लेने के बाद उन्होंने प्रतिपादित किया—

१. वेदों में आर्य शब्द का जातिसूचक कोई संकेत नहीं है।

२. भारत पर आर्य प्रजाति के आक्रमण का वेदों में कोई साक्ष्य नहीं मिलता। न ही यह साक्ष्य मिलता है कि आर्यों ने भारत के आदि निवासी समझे जानेवाले दास या दस्युओं को पराजित किया।

३. कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि आर्यों, दासों या दस्युओं में प्रजातीय भेद है।

यदि आंबेडकर के इस निष्कर्ष को सही भी मान लिया जाए कि आर्यों में तीन ही वर्ण थे और शूद्र क्षत्रिय ही थे, तब भी वेदों में आर्यों और दास-दस्युओं में जो संघर्ष के संकेत मिलते हैं, लड़ने के संकेत मिलते हैं, उनके बारे में क्या कहा जाएगा? ऋग्वेद के ऐसे छह मंत्रों का उल्लेख आंबेडकर ने स्वयं किया है। इन मंत्रों के आधार पर ही आंबेडकर यह मानते हैं कि 'आर्यों की ही दो जन श्रेणियाँ थीं, जो अलग-अलग थीं और आपस में विद्वेष रखती थीं। वेदों के विद्वान् मानते हैं कि वेद केवल दो हैं—ऋग्वेद और अथर्ववेद।

४. वेदों से यह प्रमाणित नहीं होता कि आर्यों और दास-दस्युओं के रंग में कोई अंतर है।

परंतु एक प्रश्न फिर भी अनुत्तरित ही रह जाता है कि शूद्र कौन हैं? आंबेडकर इसका भी उत्तर देते हैं। उनके अनुसार शूद्र मूलत: क्षत्रिय ही हैं, जो कालांतर में उपनयन संस्कार से वंचित हो जाने से शूद्र कहलाए। लेकिन यदि शूद्र क्षत्रिय ही हैं तो फिर चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत कहाँ से आया? आंबेडकर का मानना है कि ऋग्वेद में प्रथम तीन वर्णों का नाम ही आता है। शूद्र का उल्लेख केवल पुरुष सूक्त में मिलता है, जिसके बारे में अधिकांश विद्वान् सहमत हैं कि वह बाद की रचना है। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों को उद्धृत करने के बाद वे लिखते हैं, ''मुझे ऐसा समझने में कोई कठिनाई नहीं है कि आर्यों में केवल तीन वर्ण थे और शूद्र क्षत्रिय वर्ण से ही थे।'' शूद्रों को अनार्य बतानेवाले सिद्धांत से आंबेडकर पहले ही असहमत हैं। उनको अनार्य बतानेवालों से वे प्रतिप्रश्न करते हैं। उनके अनुसार—

१. यह कहा जाता है कि शूद्र अनार्य थे और आर्यों के विरोधी थे। आर्यों ने उन्हें पराजित किया और अपना गुलाम बना लिया। यदि यह सत्य है तो क्या कारण था कि यजुर्वेद और अथर्ववेद के सृष्टा ऋषियों ने शूद्रों का यशोगान किया? वे शूद्रों के कृपा-पात्र क्यों बनना चाहते थे?

२. यह भी कहा जाता है कि शूद्रों को विद्याध्ययन और वेदाध्ययन का अधिकार नहीं था। उस स्थिति में शूद्र सुदास ने ऋग्वेद के मंत्रों की रचना कैसे की?

३. बताया जाता है कि शूद्र यज्ञ नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे इसके पात्र नहीं थे। तब सुदास ने अश्वमेध यज्ञ कैसे किया? शतपथ ब्राह्मण में शूद्र को यज्ञकर्ता के रूप में क्यों प्रस्तुत किया गया है? इतना ही नहीं, यज्ञ करनेवाले शूद्र को संबोधित करने की विधि का वर्णन क्यों है?

४. यह कहा जाता है कि शूद्रों को उपनयन का अधिकार नहीं था। यदि शूद्रों को आदिकाल से ही यह अधिकार नहीं था तो इसके बारे में विवाद ही क्यों उठा? बदरी और संस्कार गणपति में यह उल्लेख क्यों है कि वे उपनयन के पात्र थे।

५. यह भी कहा जाता है कि शूद्र संपत्ति संचय करने के अधिकारी नहीं थे। यदि इसे सच मान भी लिया जाए तो मैत्रायणी और काठक संहिताओं में शूद्रों को धनवान और वैभवशाली क्यों बताया गया है?

६. यह भी कहा जाता है कि शूद्र राज्य के किसी पद का अधिकारी नहीं हो सकता। यदि ऐसा था तो महाभारत में राजाओं के शूद्र मंत्रियों का उल्लेख कैसे आता है?

७. शूद्रों का धर्म तीनों वर्णों की सेवा करना कहा गया है। यदि ऐसा

था तो शूद्र राजा कैसे हुए? सायणाचार्य ने सुदास तथा अन्य अनेक शूद्र राजाओं का वर्णन कैसे किया है?

यदि आंबेडकर के इस निष्कर्ष को सही भी मान लिया जाए कि आर्यों में तीन ही वर्ण थे और शूद्र क्षत्रिय ही थे, तब भी वेदों में आर्यों और दास-दस्युओं में जो संघर्ष के संकेत मिलते हैं, लड़ने के संकेत मिलते हैं, उनके बारे में क्या कहा जाएगा? ऋग्वेद के ऐसे छह मंत्रों का उल्लेख आंबेडकर ने स्वयं किया है। इन मंत्रों के आधार पर ही आंबेडकर यह मानते हैं कि 'आर्यों की ही दो जन श्रेणियाँ थीं, जो अलग-अलग थीं और आपस में विद्वेष रखती थीं। वेदों के विद्वान् मानते हैं कि वेद केवल दो हैं—ऋग्वेद और अथर्ववेद। दीर्घकाल तक ब्राह्मण अथर्ववेद को ऋग्वेद के समान पवित्र नहीं मानते थे। ऐसा भेदभाव क्यों था? मैं इसका उत्तर यह देना चाहता हूँ कि दोनों वेद आर्यों की दो भिन्न-भिन्न जातियों द्वारा रचे गए थे। कालांतर में जब दोनों जातियाँ मिलकर एक हो गईं तो अथर्ववेद को भी ऋग्वेद के समान पवित्र मान लिया गया। अत: स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य का संघर्ष आर्यों का आपसी भीतरी संघर्ष है। उसमें से एक को विदेशी और दूसरे को देसी मानने की कल्पना को बौद्धिक दिवालियापन ही कहा जा सकता है। इसका कारण यूरोप की गोरी जातियों के हृदय में अपनी काल्पनिक श्रेष्ठता का अहंकार है और कुछ नहीं।

आंबेडकर के ये प्रश्न पाश्चात्य विद्वानों के आर्य सिद्धांत को मुँह चिढ़ाते हैं। उनके तर्क आर्यों के बाहरी होने और भारत पर आक्रमण करने की कल्पना का पर्दाफाश करते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से भारतीय विश्वविद्यालयों और पाठशालाओं में आज भी अंग्रेजों के उसी आर्य सिद्धांत को पढ़ाया जाता है, जिसकी आंबेडकर ने अपने पैने तर्कों से धज्जियाँ उड़ा दी थीं। इसका क्या कारण हो सकता है? यह प्रश्न आंबेडकर ने भी अपने समय में उठाया था। वे लिखते हैं, ''आर्य जाति की उत्पत्ति का सिद्धांत एक पुरानी भ्रांति है। इसका अंत बहुत पहले हो जाना चाहिए था, किंतु इसके विपरीत जनसाधारण पर इसका प्रभाव बहुत दृढ हुआ है। यह सचमुच बहुत टेढ़ा प्रश्न है। प्राय: यह संभावना व्यक्त की जाती है कि दास और दस्यु भारत के मूल निवासी थे और वे आर्यों से भिन्न जाति के थे। आर्यों ने उन्हें पराजित किया। यह सब एक काल्पनिक उड़ान मात्र है। यह सिद्धांत कुछ सुनी-सुनाई बातों को अंतिम साक्ष्य मानकर निर्धारित किया गया है। अप्रमाणित आधार पर प्रतिपादित यह पाश्चात्य सिद्धांत दीर्घकाल तक, गंभीर चिंतकों और शोधकर्ताओं की जमात में मान्य रहा, यह असाधारण है। आर्यों के बाहर से आने और हिंदुस्तान पर आक्रमण करने के पीछे न तो कोई वैज्ञानिक आधार है और न ही कोई तथ्य। इसलिए इसका अंत तो शुरू में ही हो जाना चाहिए था। यूरोप के विद्वान् अपने स्वार्थों के लिए इस काल्पनिक आर्य सिद्धांत को लेकर भागते रहते, लेकिन भारत के विद्वानों को तो इसका खंडन करना चाहिए था। आखिर उन्होंने इसका खंडन करने की बजाय इसके समर्थन में खड़े होने का रास्ता क्यों चुना? यहाँ तक कि लोकमान्य तिलक ने भी उत्तरी ध्रुवों में आर्यों की तलाश शुरू कर दी। उन्होंने १८९८ में इसे सिद्ध करने के लिए ' The Arctic Home in the Vedas' नाम से पूरा ग्रंथ लिख दिया। यह पुस्तक १९०३ में प्रकाशित हुई थी। वामन पांडुरंग काणे, जो वैदिक साहित्य और धर्मशास्त्रों के मर्मज्ञ माने जाते हैं, वे भी पश्चिमी विद्वानों के पीछे-पीछे आर्यों की खोज विदेशों में करने लगे और उन्हें भारत पर आक्रमणकारी बताने लगे।

आंबेडकर का मानना है कि भारत में आर्यों द्वारा आक्रमण के सिद्धांत को जो इतनी ज्यादा मान्यता मिली, उसका एक कारण यह है कि यहाँ के ब्राह्मण विद्वानों ने उसका समर्थन किया। उनके अनुसार, ''हिंदू होने के नाते ब्राह्मणों को पाश्चात्य विद्वानों के इस मत को अमान्य करना चाहिए था कि यूरोपीय होने के कारण ही एक जाति एशियाई जाति से श्रेष्ठ बताई जा रही है। परंतु यह आश्चर्यजनक है कि ब्राह्मण इसका तिरस्कार करने की बजाय उल्टा उसका समर्थन करते हैं। लेकिन आखिर वे ऐसा क्यों कर रहे हैं?'' इसका उत्तर भी आंबेडकर के पास है? वे स्वयं को आर्यों का प्रतिनिधि मानते हैं और शेष हिंदुओं को अनार्य जाति की संतान कहते हैं। इससे उनके स्वयं के श्रेष्ठतम होने के अहं की पुष्टि होती है। वे आर्यों के बाहर से आने तथा अनार्य जातियों को विजित करने के सिद्धांत का समर्थन इसलिए करते हैं, क्योंकि इससे उन्हें गैर ब्राह्मणों पर अपना वर्चस्व जमाए रखने का औचित्य सिद्ध करने में सहायता मिलती है। आंबेडकर ने जो अनुमान लगाया, हो सकता है, उससे सभी सहमत न हों, लेकिन यह सचमुच आश्चर्यजनक है कि भारतीय विद्वानों ने पश्चिम की इन काल्पनिक बेसिर-पैर की बातों पर विश्वास कैसे कर लिया।

यदि आंबेडकर चाहते तो वे पश्चिम के इस राजनैतिक आर्य सिद्धांत के पक्ष में खड़े हो सकते थे। इससे उनका अपना राजनैतिक हित भी सधता था। आंबेडकर सवर्णों की जन्मजात श्रेष्ठता की अवधारणा के खिलाफ थे। दलितों के साथ सवर्णों द्वारा जो व्यवहार किया जाता था, वे उसके भोक्ता थे। सवर्ण जाति के लोग दलितों को तुच्छ क्यों मानते हैं, इसको सिद्ध करने के लिए आंबेडकर इस सिद्धांत का उपयोग कर सकते थे कि दलित इस देश के मूल निवासी हैं और तथाकथित सवर्ण जातियों के लोग बाहर से आए हुए हैं, इसलिए उन्होंने ऐसे शास्त्र लिख लिये, जो दलितों को तुच्छ मानते हैं। आंबेडकर के ऐसा करने पर शायद उस समय के ब्रिटिश शासक प्रसन्न भी होते। लेकिन आंबेडकर ने एक सच्चे शोध शास्त्री के अनुसार सत्य का संधान करने को ही प्राथमिकता दी और वही कहा, जो प्रमाण सिद्ध था। परंतु उनके मन में एक टीस बची रही। आंबेडकर ने जो प्रश्न उठाए थे, उनका किसी के पास तार्किक उत्तर नहीं था। उन्होंने ललकारा, 'न तो पुरातनपंथी हिंदुओं ने ही इनका उत्तर देने का प्रयास किया है और न ही आधुनिक शोधकर्ताओं, विद्वानों का ध्यान इस ओर गया है। वास्तविकता तो यह है कि उन्हें इन गोरखधंधों के अस्तित्व का आभास तक नहीं है। पुरातनपंथी हिंदू तो पुरुषसूक्त के इस ब्रह्मवाक्य से ही संतुष्ट हैं कि शूद्र की उत्पत्ति ईश्वर के पैरों से हुई है। अत: वह इसके बारे में उससे ज्यादा सोचता तक नहीं। आधुनिक अनुसंधानकर्ताओं ने यह मानकर संतोष कर लिया है कि शूद्र अनार्य थे, जिनके लिए पृथक् विधि-विधान की रचना की गई।' उन्होंने उच्च स्वर में घोषित किया, 'अत: मुझे यह कहने का पूरा अधिकार है कि शूद्रों की उत्पत्ति एवं पतन

के संबंध में मेरा मत शुद्ध, त्रुटिहीन और युक्तिसंगत है। मेरा कथन है कि इस विषय पर कोई और रचना इससे बेहतर नहीं हो सकती।'

लेकिन मुख्य प्रश्न अभी भी अनुत्तरित था। यूरोप के विद्वानों को आखिर इस सिद्धांत की जरूरत क्यों पड़ी? यूरोपीय जातियों ने अठाहरवीं शताब्दी में धीरे-धीरे भारत पर कब्जा जमाना शुरू कर दिया था और पचास साल में भारत के एक बड़े हिस्से पर कब्जा करने में कामयाब हो गए। जाहिर है, इन विदेशी आक्रमणकारियों के खिलाफ भारत के लोग संघर्ष करते। १८५७ की आजादी की लड़ाई तो सर्वविदित ही है। स्वतंत्रता प्रयासों के उत्तर में अंग्रेजी शासकों ने भारतीय समाज को बाँटने के प्रयास प्रारंभ किए। यूरोपीय विद्वानों का आर्य सिद्धांत इसी रणनीति से निकला तीर है। ब्रिटिश शिक्षाविदों द्वारा आर्य आक्रमण के सिद्धांत को स्थापित करने में उनका साम्राज्यवादी स्वार्थ भी था। उनका कहना था कि भारत में रहनेवाले लोग आर्य हैं, लेकिन वे यहाँ के नहीं हैं बल्कि यूरोप से ही आए हैं। वे यूरोपीय जातियों के सहोदर हैं। इसलिए भारत पर ब्रिटिश राज विदेशी राज नहीं है। इन सिद्धांतों से पादरियों की प्रसन्नता का तो कोई ठिकाना न रहा। उन्हें भारत में मतांतरण का काम करना था। अत: यहाँ के लोगों को विश्वास में तो लेना होगा। पादरी जोन विल्सन (१८०४-१८७५) ने खुलासा किया, 'भारत में अंग्रेजी राज एक तरह से एक ही परिवार के अरसा पहले बिछुड़े सदस्यों का पुनर्मिलन ही तो है। इस सुखद मिलन ने भारत को विश्व के सर्वाधिक प्रबुद्ध और दानी देश के संपर्क में ला दिया है।' कालांतर में इसकी व्याख्या प्रसिद्ध चिंतक और साहित्य आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भी की। शर्मा के अनुसार, ''भारत पर आर्यों ने आक्रमण नहीं किया। वेदों के रचनाकार यहीं के निवासी थे। आर्यों के उस सिद्धांत का कोई भी तथ्यात्मक आधार नहीं है। आक्रमण का सिद्धांत भाषाविज्ञानियों के दिमाग की उपज है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसका खूब प्रचार किया। आंबेडकर की यह स्थापना ऐतिहासिक महत्त्व की है। वास्तव में यह साम्राज्य विरोधी स्थापना है। पंद्रहवीं सदी के बाद यूरोप के व्यापारी और जमींदार संसार के विभिन्न भागों में फैल रहे थे। अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के देशों पर अधिकार जमाते जा रहे थे। जैसे-जैसे उनके साम्राज्य सुदृढ हुए, वैसे-वैसे उन्होंने अमेरिकी, अफ्रीकी और एशियाई देशों की संपदा की लूट के साथ-साथ उनकी संस्कृति का भी अपहरण किया। ऋग्वेद के रचनाकार भारतीय नहीं थे। वे कहीं यूरोप से आकर भारत में बस गए थे, यह धारणा उनकी सांस्कृतिक अपहरण की नीति का परिणाम थी। ऐसा उन्होंने केवल वैदिक संस्कृति के साथ ही नहीं किया। उन्होंने अन्य क्षेत्रों में भी यह काम किया।''

डॉ. रामविलास शर्मा ने अन्य क्षेत्रों का भी विस्तृत लेखा-जोखा दिया है। भाषाओं का मामला तो स्पष्ट था ही। भारत की आर्य भाषाएँ वैदिक भाषा से निकली हैं और वैदिक भाषा-भाषी लोग, उनके अनुसार खुद यूरोप से आकर भारत में बसे हैं। इसी तरह द्रविड़ों के लिए उन्होंने कहा कि ये बाहर से आए थे और फिनो उग्रियन परिवार की भाषाएँ बोलते थे। नाग भाषा को उन्होंने चीनी-तिब्बती परिवार का नाम दिया और जैसा कि नाम से ही प्रकट है, ये भाषाएँ भी बाहर से भारत में आई थीं। अब रह गया कोल या मुंडा भाषा परिवार। इसके लिए उन्होंने कहा कि ये पोलीनीशिया के द्वीप समूह की भाषाएँ हैं। इनके बोलनेवाले वहाँ से भारत में आकर बस गए। इस तरह उन्होंने भारत के भाषाई रिक्त से उसे वंचित कर दिया। दर्शन शास्त्र के लिए उन्होंने कहा, ''भारत में धर्म है, देव कथाएँ हैं, परंतु यहाँ तर्क सम्मत, विवेकपूर्ण दर्शन का विकास हुआ ही नहीं। इस तरह भारतीय जनता को उन्होंने उसके दार्शनिक रिक्त से वंचित कर दिया।'' यहाँ के सामाजिक संगठन के बारे में उन्होंने कहा, ''यह ग्राम समाजों का देश है। यहाँ कहने लायक कोई आर्थिक विकास हुआ ही नहीं। यहाँ के राजा निरंकुश होते थे और प्रजा असहाय गुलामों की तरह उनकी आज्ञा का पालन करती थी। इस तरह भारतीय जन को उन्होंने उनकी राजनीतिक विरासत से वंचित कर दिया। भारत पर आर्यों के आक्रमण का सिद्धांत इसी सांस्कृतिक अपहरण का एक अंग है।''

आंबेडकर अच्छी तरह जानते थे कि आर्य बाहर से आए और उनका यहाँ के मूल निवासी शूद्रों से संघर्ष हुआ, यह राजनीतिक सिद्धांत पश्चिमी साम्राज्यवादियों की कपोल कल्पना तो है ही, लेकिन यदि इसने यहाँ जड़ पकड़ ली तो यह अंतत: भारत के लोगों को भीतर से बाँटेगा। इससे अंत में विदेशी साम्राज्यवादियों को ही लाभ होगा। यही कारण था कि उन्होंने ५ फरवरी, १९५० को संविधान सभा में सभी का आह्वान किया, ''भारत शताब्दियों बाद स्वाधीन हुआ है। अब इस स्वराज्य की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। अपने समाज में किसी प्रकार की फूट पुन: हमसे स्वराज्य को छीन लेगी। शताब्दियों की गुलामी के परिणामस्वरूप हममें कुछ विकृतियाँ, ऊँच-नीच भेद, आर्थिक विषमता, पिछड़ापन, जातिवाद आदि उत्पन्न हो सकते हैं, परंतु इसे अपना हथियार बनाकर कोई विदेशी हमारे स्वत्वों का अपहरण करना चाहेंगे तो हम उसे सहन नहीं करेंगे। हम उनकी यह आकांक्षा मिट्टी में मिला देंगे। यह हमारा घरेलू मामला है, इसलिए हम इससे आपस में ही निपटेंगे। केवल अपने लाभ के लिए या इस सामाजिक स्थिति से बाहर निकलने की इच्छा के चलते हम विदेशियों के मोहरे नहीं बनेंगे। हमें अपनों में से उत्पन्न होनेवाले जयचंदों से सावधान रहना होगा। अपने जिस राष्ट्र एवं समाज के हम अंग-उपांग हैं, उसके हित को ठीक प्रकार से पहचानें।'' परंतु यह और भी आश्चर्यजनक है कि आंबेडकर का मूल्यांकन करनेवाले विद्वानों ने आंबेडकर चिंतन के सभी पक्षों को जाँचा-परखा, उनकी एक एक किताब और भाषण की समीक्षा कर दी, लेकिन उन्होंने आंबेडकर की इस देन को अनदेखा कर दिया कि उन्होंने अकेले अपने श्रमसाध्य अध्ययन से इस साम्राज्यवादी, अवैज्ञानिक पश्चिमी आर्य सिद्धांत की धज्जियाँ उड़ा दीं, जो कालांतर में भारत को बाँटने का काम कर सकता था। यदि आंबेडकर का किसी एक ही कार्य के लिए मूल्यांकन भी करना पड़े तो उनका यह कार्य उन्हें देश के महापुरुषों की श्रेणी में खड़ा कर देता है।

साअ
उप कुलपति
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला-१७६२१५ (हि.प्र.)
दूरभाष : ९४१८१७७७७८

दर्द जुलाहे का कहे, कोई नहीं कबीर

● यश मालवीय

पंडे डरे कबीर से, उठी धर्म की हाट।
बिक जाने से बच गया, गंगाजी का घाट॥

दु:ख को भुज भर भेंटता, सुख को मारे लात।
कबिरा जागे हर घड़ी, रोए सारी रात॥

हर सवाल का आप को, मिलता सधा जवाब।
कबिरा पूरे आदमी, कबिरा सरल किताब॥

मंदिर मसजिद में कहाँ, किस ईश्वर की खोज।
भीतर की सच्चाइयाँ, कबिरा बोले रोज॥

कथा कबिरा की सुनो, जिसका आदि न अंत।
हारे पंडे-मौलवी, हारे संत-महंत॥

सिर्फ आदमी धर्म है, सिर्फ आदमी जात।
सोच-समझकर आँकिए, कबिरा की औकात॥

कात रहा है वक्त को, बीते कितने साल।
गजब जुलाहा कलम का, खींचे सबकी खाल॥

मगहर जाकर शान से, तोड़ी अपनी साँस।
कबिरा रहा निकालता, सबके मन की फाँस॥

हिंदू मुसलिम क्यों लड़ें, क्यों हो रहे तबाह।
कबिरा तो दिखला गया, सीधी सच्ची राह॥

वही तिलमिलाया बहुत, जो जितना संभ्रांत।
कबिरा ने खुलकर कहा, धर्मों का वृत्तांत॥

देह बिहारी सी हुई, मन हो गया कबीर।
हमने समझी इस तरह, कठिन समय की पीर॥

भागे कठमुल्ले सभी, मना रहे हैं खैर।
कबिरा ने सबको कहा, क्या अपना क्या गैर॥

बातों में ही फूल हैं, बातों में शमशीर।
बहुत देर से पर चलो, समझे गए कबीर॥

सूने में सुन लीजिए, कोई रहा कराह।
रचनाकार कबीर का, गूँजे अंतर्दाह॥

कठिन गरीबी भुखमरी, धुआँ घुटन संत्रास।
समझी दास कबीर ने, युग की गहरी प्यास॥

जाने-माने नवगीतकार। तीन नवगीत-संग्रह, एक दोहा-संग्रह, दो व्यंग्य-संग्रह, दो बालगीत-संग्रह; एक नाटक 'मैं कठपुतली अलबेली' भारत रंग महोत्सव, नई दिल्ली में मंचित। उ.प्र. हिंदी संस्थान से दो बार 'निराला सम्मान' सहित 'सर्जना सम्मान', 'उमाकांत मालवीय बाल साहित्य पुरस्कार'; मुंबई का 'मोदी कला भारती युवा कविता सम्मान'।

मसि कागद घूआ नहीं, छुआ हमारा प्रान।
इसीलिए तो रख सका, कबिरा सबका ध्यान॥

कबिरा के तन पर पड़े, रामानंद के पाँव।
गंगा के तट पर जगी, तारों वाली छाँव॥

कबिरा को सोने न दे, अपना पढ़ा समाज।
पढ़े-लिखे से मौलवी, पढ़ते सिर्फ नमाज॥

दोहे तोड़ें रूढ़ि की, तनी हुई-सी रीढ़।
कबिरा है तनहा बहुत, आसपास है भीड़॥

छिन भर में है लाँघता, हर खाई दुर्लंघ्य।
है कबीर के होंठ पर, ममता-करुणा-व्यंग्य॥

मिला जियावनहार जब, क्या धारा क्या तीर।
कभी मरेगा ही नहीं, अपना दास कबीर॥

कबिरा की साखी कहाँ, कहाँ फैज के शेर।
राजनीति साहित्य की, मचा रही अंधेर॥

चलती चक्की देखकर, नहीं जागती पीर।
दर्द जुलाहे का कहे, कोई नहीं कबीर॥

कबिरा ने ऊँचा किया, झुका हुआ हर माथ।
रहा आग से खेलता, लिये लुकाठी हाथ॥

गंगाजी की सीढ़ियाँ, धार और मझधार।
बसा हर कहीं देखिए, कबिरा का संसार॥

सबको संग लेकर चलें, अपने दास कबीर।
कहीं 'लहरतारा' कहीं, अपना 'लहुराबीर'॥

ताना-बाना बुन रहा, है भरनी का संग।
हर कबीर को खोलता, कबिरा का सरसंग॥

है फकीर तो क्या हुआ, अपना दास कबीर।
हमने तो देखा नहीं, उससे बड़ा अमीर॥

'रामेश्वरम्'
ए-१११, मेंहदौरी कॉलोनी
इलाहाबाद-२११००४ (उ.प्र.)
दूरभाष : ०१७८३९७९२४०२

शिवाजी व सुराज

● अनिल माधव दवे

मनोगत

आधारभूत मानचित्र (Blue Print) की तरह देखना होगा। उनके सोचने, निर्णय करने, राज्य-संचालन की शैली को याद कर कार्य-संचालन कर रही हर एक इकाई को अपने-अपने स्थान पर विवेकपूर्वक कार्य करते हुए सहज नेतृत्व स्थापित करना होगा। अनुशासन को स्वभाव बनाना होगा। देश-दुनिया में फैले हुए हजारों-लाखों व्यक्ति, जो बहुतों के पीछे और कइयों से आगे चल रहे हैं, यह पुस्तक उनका पाथेय बने, यह अपेक्षा है।

सार्वजनिक जीवन में कार्य करते मुझे अनुभव हुआ कि अधिकांश लोग व्यवस्था की आलोचना तो करते हैं किंतु मार्ग नहीं बताते। विशेषकर १९७५ के बाद भारतीय राजनीति ने जो आकार लिया, वह अधिक चिंताजनक है। सार्वजनिक क्षेत्र में सच्चे प्रेरणा-केंद्रों का अभाव हो गया। योग्य-अयोग्य सभी मार्गदर्शक बनने लगे। अस्वीकार्य नेतृत्व को स्वीकारने की पीड़ा समाज की मजबूरी बन गई। यही विवशता इस पुस्तक-जन्म का कारण बनी।

पंच से प्रधानमंत्री तक, सेवावृत्ति से संन्यासी तक सभी एक अथवा दूसरे प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक व अन्य शक्ति केंद्रों का संचालन करते हैं। उनके लिए शिवाजी के स्वराज-संचालन के

सभी गुण दिशासूचक यंत्र बनें तथा उनकी सफलता का मंत्र भी।

इस आस्था और विश्वास के साथ यह कृति सत्य के साधकों को सादर प्रस्तुत है।

भाषा व संस्कृति मंत्रालय

शिवाजी महाराज ने राज्य व्यवहार में भाषा को विशेष महत्त्व दिया। राज्य संचालन में अपभ्रंशित व मिश्रित शब्दों के स्थान पर संस्कृतनिष्ठ मराठी शब्दों का चयन किया, उनका प्रयोग प्रारंभ करवाया और प्रयत्नपूर्वक उन्हें राज्य व्यवहार में स्थापित किया। स्वराज्य की शासन व्यवस्था के लिए उन्होंने १४०० शब्दों का कोष बनाया था। वे जानते थे कि भाषा कभी भी अकेली नहीं आती। वह अपने साथ सोच और संस्कृति भी लाती है। स्वराज्य की स्थापना व संचालन में स्वभाषा न हो तो स्वराज्य कैसा! चयनित शब्दों को नाम दिया गया 'राज्य व्यवहार कोश'। उनमें से चुने कुछ शब्द इस प्रकार हैं३८—

क्रम	अरबी/फारसी शब्द	मूल	संस्कृत/मराठी
१.	आदिल	अ	न्यायाधीश
२.	काजी	अ	पंडित
३.	तख्त	फा	सिंहासन
४.	दौलतबंकी	फा	महाद्वारपाल
५.	नुजुमी	फा	ज्योतिष
६.	पीर	फा	गुरु
७.	पेशवा	फा	प्रधान
८.	वाकानवीस	फा	मंत्री
९.	साहेब	अ	स्वामी
१०.	हेजीब	अ	दूत
११.	आब	फा	जल
१२.	आतश	फा	अग्नि
१३.	कमानदार	फा	धनुर्धर
१४.	चिराग	फा	दीप
१५.	खजाना	अ	कोशगार
१६.	खजाना हवालदार	अफा	कोशपाल
१७.	खर्च पोतेनिविशिंदा	फा	व्ययलेखक
१८.	जर	फा	सुवर्ण
१९.	नख्त	फा	द्रव्य
२०.	तबीब	अ	वैद्य
२१.	तर्तीब	फा	उपचार

२२.	फौत	फा	निधन
२३.	जिरात्खाना	फा	शस्त्रागार
२४.	सैफ	फा	खड्ग
२५.	नोबती	फा	गजपालक
२६.	शुतुर	फा	उष्ट्र
२७.	किल्ला	अ	दुर्ग
२८.	गनीम	अ	वैरी
२९.	पंद	फा	दंड
३०.	सरनोबत	फा	सेनानी
३१.	शिकस्त	फा	पराभव
३२.	जंजीरा	अ	द्वीप
३३.	अज्जम	अ	श्रेष्ठ
३४.	कजाख	तु	साहसी
३५.	कैद	अ	निग्रह
३६.	जरारा	अ	एकाकी
३७.	तकसिमा	अ	विभाग
३८.	तैवर्क	अ	वेतन-पत्र
३९.	पुस्तपनाह	फा	सहकारी
४०.	मोइनजाबिता	अ	निर्णय-पत्र
४१.	मग्रीबा	अ	प्रतीची
४२.	मश्रीफ	अ	प्राची
४३.	बुलंगा	फा	सैन्य-संभार

अ=अरबी। फा=फारसी। तु=तुर्की

राज्य-संचालन का एक अनिवार्य तत्त्व इतिहास लेखन भी है। भावी पीढ़ियाँ राज्य, राजा, प्रजा, समकालीन परिस्थितियों को लेखों, शिलालेखों एवं बाहर देश से प्रवास पर आए हुए लोगों के आलेखों व डायरियों से ही समझती हैं। आज शिवाजी के संबंध में हम जो कुछ जानते हैं, उसका बहुत बड़ा हिस्सा उन अंग्रेज व यूरोपीय सेना के अफसरों, प्रशासनिक अधिकारियों, व्यापारियों व पर्यटकों की लिखी डायरियों से प्राप्त है। उन्होंने शिवाजी के राज्य-संचालन, उनकी सोच व समझ, व्यवहार और विचार को नजदीक से देखा। शिवाजी की भाषा और संस्कृति के संबंध में उन्होंने बहुत कुछ लिखा है—

Arlie Ebrahim wrote in 'The Great Mugal'—"A significant aspect of Shivaji's rule was his attempt to revive ancient Hindu political tradition and court conventions to introduce Marathi in place of Persian as the court language. He revived Sanskrit administrative nomenclature and compiled a dictionary of official terms–the Rajya Vyavhar Kosh–to facilitate the change over."

महाराज ने स्वयं भी प्रकांड विद्वान् गागा भट्ट से 'शिवार्कोदय:' व 'करण कौस्तुभ' नामक पुस्तकें संस्कृत में लिखवाईं।

राज्याभिषेक कार्यक्रम की संरचना हो अथवा अलग-अलग समय पर प्रयुक्त की गई वेश-भूषा, अलंकार या आभूषण—शिवाजी ने सभी में भारत की सांस्कृतिक झलक को बनाए रखा। उनके बाद के उत्तराधिकारी शासकों ने भी इस परंपरा को जीवित रखा।

स्वतंत्र भारत में जो भारतीय तंत्र विकसित हुआ, उसमें भारतीय भाषाएँ व राज्यों की सहेली भाषाएँ राजनीति की बलि चढ़ गईं। भारतीय भाषाओं का अपने-अपने राज्य में जो विकास होना था, वह नहीं हो पाया। उसके स्थान पर अंग्रेजी राज्य व्यवहार की भाषा बनी रही। तमिल, तेलुगु, असमिया व कन्नड़ जैसी विभिन्न राज्यों की भाषाएँ, जो कि समृद्ध भाषाएँ हैं, संकीर्ण मानसिकता, छद्म अंग्रेजी व अंग्रेजियत के अनुराग के कारण अपने-अपने राज्य में राज-व्यवहार की भाषा नहीं बन पाईं। यही स्थिति देश की राजभाषा हिंदी की रही। महात्मा गांधी के सारे आग्रहों के बाद आज भी हिंदी वर्ष में एक बार संपन्न होनेवाले 'हिंदी सप्ताह' से बाहर नहीं निकल पाई। दुर्दैव से भारत के प्रथम प्रधानमंत्री को भारत की किसी अन्य भाषा की तुलना में अंग्रेजी भाषा ज्यादा सहजता लगती थी। उसे उन्होंने अपने प्रधानमंत्रित्व काल में पूरे समय व्यवहार में बनाए रखा। यही कारण है कि अंग्रेजी और अंग्रेजियत तब से लेकर आज तक भारतीय राजतंत्र के संवाद व व्यवहार का भाग है।

भारत में राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ व्यवस्थात्मक स्वतंत्रता नहीं आ पाई। वैसे इस हेतु भगीरथ प्रयत्न भी नहीं हुए।

अंग्रेजों की कूटनीति, जिन्ना की हठ और भारतीय नेतृत्व द्वारा वार्त्ता की मेज पर की गई गलतियों ने भारत का विभाजन करवा दिया।

खान अब्दुल गफ्फार खान व मौलाना आजाद द्वारा भारत विभाजन का तीव्र विरोध करने के बाद भी उसे मान लिया गया। आजादी के समय देश-विभाजन ने अराजकता फैला दी।

सरदार पटेल जैसे श्रेष्ठ नायक का पूरा समय राजे-रजवाड़ों को भारत में मिलाने में चला गया। हैदराबाद और जूनागढ़ जैसे नवाबों व राजाओं की महत्त्वाकांक्षा दबाने में उनकी बहुत ऊर्जा खत्म हुई।

अराजकता व अव्यवस्था के उस काल में स्वदेशी प्रशासन तंत्र खड़ा करने का काम पिछड़ गया। इसीलिए आज तक प्रशासन, पुलिस, वित्त, न्याय, शिक्षा जैसे राज्य के विभिन्न विभाग जस-के-तस बने हुए हैं। समूचे प्रशासन तंत्र की भाषा और भाव वही रहे। न देखने की दृष्टि

लेखक परिचय

बड़नगर, उज्जैन में ६ जुलाई, १९५६ को जन्म। १९६४ से रा.स्व. संघ के स्वयंसेवक। अनंतर इंदौर के गुजराती कॉलेज से एम.कॉम.। छात्र संघ अध्यक्ष। ग्राम्य अर्थव्यवस्था व प्रबंधन में विशेषज्ञता। शौकिया पायलट। कुछ आजमाइश नौकरी व उद्योग-धंधों में। जन अभियान परिषद् (स्वयंसेवी संगठनों के दर्शन और व्यवहार को क्रियारूप देने का प्रयास करनेवाली म.प्र. की संस्था) के रचनाकार। नर्मदा समग्र के संस्थापक। पर्यावरणविद्। स्फुट सामयिक निबंध व कविताएँ प्रकाशित। भारतीय लोक व शिष्ट परंपरा के अध्येता। मासिक 'चरैवेति' के संपादक रहे।

बदली, न दृश्य बदला। सरकारी भवनों के ऊपर लहराता झंडा जरूर बदला। लेकिन भवनों के अंदर का रंग और ढंग दोनों नहीं बदले। कक्षों की दीवारों से महारानी के चित्र हटे और बापू व जवाहरलाल के चित्र लग गए, किंतु न अर्दली की टोपी बदली, न साहब की टाई। इसी कारण से ६४ वर्षों के राज्य व्यवहारों में अंग्रेजों द्वारा छोड़ी गई विदेशी भाषा भी जस-की-तस बनी रही। आज भी तमिलनाडु के किसान की फाइल तमिल में नहीं लिखी जाती। केरल के श्रमिक का विवाद होने पर श्रम न्यायालय अपनी कार्यवाही व निर्णय मलयाली भाषा में लिखने और सुनाने में असमर्थ है। स्वतंत्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में देश में उच्च पदस्थ अधिकतम १००० अधिकारियों को भाषा-विवाद में अंग्रेजी का प्रयोग ज्यादा प्रिय लगा। उसे उन्होंने स्थापित करने में मौन भूमिका निभाई। दूसरी तरफ हिंदी को राजभाषा के रूप में स्थापित करने का कार्य कर रहे कर्णधारों ने कूटनीतिक भूलें कीं। जो संघर्ष हिंदी व उसकी सहेली भाषाओं का अंग्रेजी से होना था, वह हिंदी और भारतीय भाषाओं के बीच हो गया। अंग्रेजी के पक्षधर लोगों ने बंदरबाँट करते हुए अंग्रेजी भाषा को मध्यम मार्ग के रूप में स्वीकार करवा लिया।

शिवाजी ने स्वराज्य की स्थापना के साथ ही दुर्गों के पुराने नाम बदलकर नए संस्कृत नाम रखे; जैसे—रायरी का रायगढ़, साकण का संग्राम दुर्ग, रोहिडा का विचित्रगढ़, तोरड़ा का प्रचंडगढ़ और पट्टा का विश्रामगढ़ इत्यादि।

शिवाजी के अवसान के बाद औरंगजेब ने दक्षिण के राज्यों पर चढ़ाई की। उसने संभाजी की मृत्यु के बाद जब उसी रायगढ़ को जीता तो उसका नाम 'इस्लामगढ़' रख दिया। वैसे तोरड़ा जीतने के बाद उसका नाम 'फत्ते-उल-घैब' रखा। यह बात भिन्न है कि समाज ने उसे नहीं स्वीकारा; किंतु नाम में क्या रखा है, ऐसा सोचनेवालों को यह समझना होगा कि हर नाम का अर्थ व उसका प्रभाव होता है।

आज जब किसी स्थान, नगर का नाम बदलकर फिर से उसका पुराना गौरवपूर्ण नाम रखने की कोई पहल होती है तो उसे हेय दृष्टि से देखने व विरोध करनेवाला एक तथाकथित समाज है। वह स्वयं को प्रगतिशील और दूसरों को जड़वादी मानता है। भारतीय भाषा-विज्ञान के अनुसार नाम शब्द है और शब्द ब्रह्म है। उसका सही प्रयोग अनिवार्य है। गुलामी या बलपूर्वक किसी स्थान का नाम गुलाम बनानेवालों ने अगर बदल दिया था तो स्वतंत्रता प्राप्त होने पर स्वाभिमानी समाज का यह दायित्व है कि वह उस पुराने गौरवशाली नाम की पुन: प्रतिष्ठा करे।

सन् १९४७ की स्वतंत्रता के बाद स्वराज्य का जो स्वरूप खड़ा हुआ, उसमें स्व-भाषा का अभाव सबसे बड़ी कमजोरी बन गया। राजभाषा के रूप में हिंदी के विकास और नए सहज-सरल शब्दों की खोज एवं उनके प्रयोग के स्थान पर क्लिष्ट हिंदी शब्दों के प्रयोग से भाषा का मजाक समाज के नायकों का भाव बन गया। इस कारण हिंदी स्वीकार करने की इच्छा रखनेवालों को भी असहजता अनुभव होने लगी। हिंदी व सहेली भाषाओं के उत्थान में लगे कुछ लोग उसके विभिन्न उपक्रमों व संगठनों से इसलिए जुड़ने लगे, जिससे उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा सुविधाएँ, पद व विदेश प्रवास प्राप्त हो सकें।

भारत के विभिन्न प्रांतों में जनमे कई भारतीय अपनी-अपनी मातृभाषा पढ़ने, लिखने, समझने व बोलने में असहजता अनुभव करते हैं, यह बात शर्म से बोलने के बजाय वे गर्व से कहते हैं।

राजभाषा व विभिन्न राज्यों की भाषाओं के विकास हेतु जितने सार्थक व गंभीर प्रयत्न ऊपर से नीचे तक होने थे, वे नहीं हुए, यह कहने के स्थान पर यह कहा जाए कि वे उतने नहीं हुए, जितने होने थे तो ज्यादा ठीक है।

स्व-भाषा व स्व-रोजगार के माध्यम से राज्य को सशक्त करने का एक सफल प्रयत्न त्रिपुरा की श्री माणिक सरकार ने किया है। सुदूर उत्तर-पूर्व में स्थित इस छोटे से राज्य की सरकार ने स्थानीय भाषा

कोक-बोरॉक (Kok-Borok) के विकास हेतु अभिनव प्रयत्न किए। शासकीय कर्मचारियों, वरिष्ठ अधिकारियों व जनप्रतिनिधियों को स्थानीय भाषा सिखाने के लिए विशेष कक्षाएँ लगाई गईं। सन् १९९७-९८ में वहाँ की सरकार ने गाँव, नदी, बाजार इत्यादि ९५ स्थानों के पुराने स्थानीय नाम फिर से स्थापित किये और तत्संबंध में सभी आवश्यक विभागों को उसे पालन करने के निर्देश दिए। स्थानीय रोजगार बढ़ाने के लिए उन्होंने बाँस के उत्पादन व प्रयोग को विशेष प्रोत्साहन दिया। मछली का उत्पादन बढ़ाकर गरीब तबके में रोजगार के नए अवसर पैदा किए। फलों व सब्जियों के उत्पादन में तो राज्य ने नए मानक ही स्थापित कर दिए। आज वहाँ प्रति व्यक्ति प्रतिदिन ४४७ ग्राम फल और ४०४ ग्राम सब्जी पैदा होती है। त्रिपुरा विभिन्न आतंकवादी व अतिवादी गुटों के कारण अशांत रहता था। राज्य सरकार ने बड़ी स्पष्टता से कहा कि बांग्लादेश द्वारा आतंकवादियों और घुसपैठियों को जो खुला और गुप्त, दोनों प्रकार का समर्थन दिया जाना जब तक बंद नहीं होगा तब तक शांति संभव नहीं है। साथ ही उन्होंने इन शक्तियों से समाज को सुरक्षित रखने के लिए केंद्र सरकार से ज्यादा अर्द्धसैनिक बलों की माँग की। स्थानीय जन को प्रशासन में जोड़ने के पंचायती राज व्यवस्था के अतिरिक्त 'त्रिपुरा ट्रायबल एरिया ऑटोनोमस डिस्ट्रिक काउंसिल' की रचना की गई, जिसके बहुत अच्छे परिणाम आए। जहाँ एक ओर स्थानीय लोगों की भागीदारी बढ़ी, वहीं महिलाओं को विशेष प्रोत्साहन देकर उससे जोड़ा गया।

स्वतंत्र भारत में राजभाषा की जो सेवा श्री सावरकर, श्री म.स. गोलवलकर, डॉ. राम मनोहर लोहिया, श्री अटल बिहारी वाजपेयी व अन्य गण्यमान्य लोगों ने की है, वह अनुकरणीय व अभिनंदनीय है। उन्होंने व्यवहार में नए शब्द दिए; पहले उन्हें स्वयं प्रयुक्त किया और बाद में आग्रह के साथ व्यवस्था में भी स्थापित किया।

सांस्कृतिक धरोहरों को सँजोने की वर्तमान पद्धति अत्यंत हास्यास्पद व अपमानजनक है। चेन्नई के प्रसिद्ध संस्थान 'कला क्षेत्र' की डायरेक्टर लीला सैमसन ने उस संस्थान के पूरे परिसर से गणपति की वे सभी कलाकृतियाँ यह कहते हुए हटवा दीं कि ये धर्म विशेष का प्रतिनिधित्व करती हैं। लीला ने ॐ का उच्चार बंद करवाया। विद्यार्थियों को श्रीश्री रविशंकर जैसे आध्यात्मिक गुरुओं के कार्यक्रम में जाने से रोका। उसने

सनातन परंपरा के किसी भी कार्यक्रम में विद्यार्थियों को जाने की मनाही कर दी।

इसी तरह भोपाल-दिल्ली के बीच चलनेवाली शताब्दी एक्सप्रेस से गांधी के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' को यह कहते हुए हटा दिया गया कि यह सांप्रदायिक है। दूरदर्शन के प्रतीक चिह्न में से 'सत्यं शिवं सुंदरम्' को भी इसी आरोप के साथ या तो पूरी तरह बंद कर दिया गया या न के बराबर रखा गया। इन सब में भी सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि संसद् के सत्र समापन पर 'वंदे मातरम्' भी पूरा नहीं गाया जाता, केवल उसकी धुन बजाई जाती है, वह भी अधूरी।

आज आवश्यकता है शिवाजी की तरह भाषा, साहित्य, संस्कृति व सांस्कृतिक मूल्यों को शासन एवं प्रशासन में स्थापित करने की, जिससे कि स्वराज्य का मंत्र सिद्ध हो सके।

कीर्तिशेष

संसार में हर व्यक्ति, चाहे वह नायक हो या महानायक, वनवासी हो या वैज्ञानिक, उसके जीवन में एक शाम ऐसी आती है, जब सुबह नहीं आती अथवा एक सुबह ऐसी आती है, जब शाम नहीं आती। वह उस व्यक्ति की अंतिम सुबह या अंतिम शाम होती है। आस-पास रहनेवाले लोग धर्म, रीति, परंपरा के अनुसार उसकी अंतिम क्रिया करते हैं अर्थात् उसके शरीर का विसर्जन करते हैं।

रंगमंच का एक पात्र अपनी भूमिका का अंतिम संवाद बोल हमेशा के लिए नेपथ्य में चला जाता है। अगर कुछ शेष रह जाता है तो बस 'कीर्ति'। सभ्य समाज के स्वाभिमानी लोग जीवन भर इसी कीर्ति के लिए कष्ट सहते हैं, परिश्रम व पुरुषार्थ करते हैं। अपनी ऊँचाई के अनुपात में जन की स्मृतियों में कीर्ति उतने लंबे समय जीवित रहती है। श्रीराम हजारों वर्ष बाद आज भी अगर जनमानस में ऐसे रह रहे हैं, मानो कल की ही बात हो तो उसका कारण उनके जीवनकाल में उनके द्वारा किए गए कार्य ही हैं। श्रीकृष्ण की हलचल तथा उनके होने की आहट ब्रज से ब्रह्मांड तक अगर संत और भक्तजन को आज भी दिखाई व सुनाई देती है तो इसका कारण भी उनके द्वारा अपने जीवनकाल में किए गए परिश्रम व पराक्रम के प्रसंग ही हैं। ऐसे ही हर नायक संसार से जाने के बाद अपने कार्यों से उपजे फलों के कारण लोक-स्मृति में स्थान पाता है।

आश्चर्यजनक, किंतु सत्य यह है कि विश्व का सभ्य समाज नकारात्मक कार्य करनेवालों को जल्दी-से-जल्दी भूल जाता है। ऐसा नहीं है कि विश्व के किसी कोने में पहले लादेन, सद्दाम या मार्कोस नहीं हुए। ऐसा भी नहीं है कि किसी युग व काल में हिटलर या मुसोलिनी नहीं थे। वे एक नहीं, अनेक हुए होंगे, किंतु जन की स्मृति ने उन्हें अपने में धारण करना उचित नहीं समझा और जल्दी-से-जल्दी उन्हें भुला दिया।

सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में नेतृत्व करनेवाले छोटे-बड़े नायक को एक दिन स्मृतिशेष होना है। बात बस इतनी सी है कि उसके मोहल्ले, गाँव, नगर, प्रांत, देश या दुनिया में उस नायक की याद आने पर या उसके वंशजों को देखने पर लोग क्या कहते हैं?

शिवाजी आज स्मृतिशेष हैं। ३५० वर्ष बाद आज भी ऐसा लगता है कि वे यहीं हैं अथवा मुहिम पर गए हैं। प्रयत्न करने पर उनसे मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा भाव अगर पैदा होता है तो उसका कारण भी उनके द्वारा किए गए कार्य व पराक्रम हैं। शिवाजी में ढेरों गुण थे। अगर उनमें से एक को याद करना चाहें तो वह इस प्रकार है—शिवाजी अपने संपूर्ण जीवनकाल में किसी व्यक्ति, संस्था या व्यवस्था से इस प्रकार प्रभावित नहीं हुए कि वह उनके कार्य, निर्णय या व्यक्तित्व को अभिभूत कर सके (अपने प्रेरणास्रोतों को छोड़कर)। जब भी किसी पास या दूर के व्यक्ति ने अथवा देशी-विदेशी शक्ति ने उन्हें अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाकर उनकी चिंतनधारा या निर्णय को बदलने की कोशिश की तो उन्होंने युक्तिपूर्वक उसमें से मार्ग निकाला और आगे बढ़ गए।

अपने प्रेरणास्रोतों द्वारा एक बार तैयार किए जाने पर उन्होंने जो यात्रा प्रारंभ की, वह स्व-संचालित, स्व-प्रेरित, स्वावलंबी, स्वयंसेवी, स्वांत: सुखाय, स्वदेश, स्वधर्म व स्वराज्य के मूल मंत्रों से युक्त थी। इतना 'स्व' पूर्ण होते हुए भी वे स्व-केंद्रित नहीं थे। तो इसका कारण था कि जैसे वृक्ष की जड़ें मिट्टी के हर कण से संवाद रखती हैं, वैसे ही वे समाज के हर हिस्से से संवाद रखते थे। वृक्ष की जड़ें मिट्टी से लेकर जैसे शिखर तक धरा रस पहुँचाती हैं, वैसे ही शिवाजी समाज के विभिन्न तबकों से विचार, सुझाव व निवेदन रूपी विचार रस को अपने विवेक से तराशकर शासन-प्रशासन के सर्वोच्च स्तर पर पहुँचाते थे। एक तरफ वे समर्थ गुरु रामदास से विचार-विनिमय करते थे तो दूसरी तरफ रायगढ़ किले के नीचे पाचाड़ गाँव में जीजा माता के राजप्रासाद में स्थित कुओं पर पनिहारिनों से उनका कुशल-क्षेम पूछते और साथ ही सरकार व समाज के विभिन्न विषयों पर उनका क्या मत है, यह जानने की कोशिश करते। संवाद की शैली पर विचार व्यक्त करते हुए उनके घोर विरोधी मुगल इतिहास लेखक खाति खान अपने वर्णन में लिखता है—''शिवाजी कुएँ पर पानी भरने आई महिलाओं से वैसे ही बात करता था, जैसे हम अपने घरों में अपनी माता-बहनों से बात करते हैं।''

संवाद का यह सर्वस्तरीय स्वरूप उन्हें अपने राज्य के शासन-प्रशासन के संबंध में प्रथम द्रष्टा (first hand) जानकारी देता था। चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में राजा को भेष बदलकर समाज के सभी वर्गों में जाकर राज्य तथा राजा के संबंध में होनेवाली चर्चाओं को स्वयं सुनने व जानने का सुझाव दिया है। शिवाजी को भेष बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि उनका भेष था उनका शिशु जैसा निश्छल, उदात्त चरित्र, सर्वजन हिताय व सर्वजन सुखाय के लिए निरंतर तिल-तिलकर जलता उनका जीवन।

शिवाजी ने भारतीय परंपराओं और मूल्यों की पुनर्स्थापना करने के लिए हर क्षण भगीरथ प्रयत्न किए। उन्होंने जनता के सामने एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखा। स्वराज्य के माध्यम से भारत के कोने-कोने में रहनेवाले

हर भारतीय को राष्ट्रीयता का अर्थ समझाया। जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह प्रतिदिन कोटि-कोटि एकलिंगजी की पूजा करते थे, किंतु औरंगजेब को काशी विश्वनाथ के समकक्ष समझते थे। यह नादानी थी या अज्ञान, कहना कठिन है; किंतु इतना सही है कि महाराणा प्रताप की स्वतंत्रता व स्वाभिमान के भाव से वह कोसों दूर थे। शिवाजी ने ३६ गाँव से बने छोटे मावड़ को एक विशाल राज्य में बदल दिया, जबकि जयसिंह ने स्थापित विशाल राज्य को औरंगजेब के दरबार में मिर्जा बनकर स्वयं के माध्यम से उपस्थित कर दिया। यही कारण है कि सरायघाटी के युद्ध में जयसिंह के बेटे रामसिंह को असम के महानायक सेनापति लच्छिद बड़फुकन ने जब परास्त कर दिया तो उसने व अहोम राजाओं ने कहा कि हमारी प्रेरणा का केंद्र शिवाजी हैं। जयसिंह का सगा बेटा शिवाजी के मानस उत्तराधिकारी से हार गया।

श्रेष्ठ नायक व्यवस्था का निर्माण करता है। वह केंद्रीय पुरुष होते हुए भी राज्य अथवा संस्था का केंद्र-व्यवस्था को बनाने का निरंतर प्रयत्न करता है। अपने पास आनेवाले व्यक्ति व संसाधनों को वह व्यवस्था का हिस्सा बनाता चलता है। उसके कार्य की असली परीक्षा तो उसके जाने के बाद होती है। शिवाजी की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने दक्षिण विजय के उद्देश्य से बड़े लाव-लश्कर के साथ सन् १६८१ में आगरा से कूच किया। आदिलशाही व कुतुबशाही को वह पहले ही समाप्त कर देना चाहता था। पिछले ३५ वर्षों में शिवाजी एक नई शक्ति के रूप में उभर आए थे। इस शक्ति को समाप्त करने के लिए उसने अपने जीवन के शेष २७ साल दक्षिण में लगा दिए। सन् १६८१ में उसने नर्मदा पार की, किंतु वापस वह उसे जीवित पार नहीं कर सका। १७०७ में अहमदनगर (महाराष्ट्र) के पास भिंगार नामक गाँव में उसकी मृत्यु हुई। उसकी इच्छानुसार औरंगाबाद के पास खुल्दाबाद में उसे सुपुर्दे-खाक (जमीन में गाड़ना) किया गया। स्वराज्य को जीत लेने की इच्छा लिये अतृप्त ही वह दुनिया से इसलिए चला गया, क्योंकि सारी ताकत लगाने के बाद भी वह शिवाजी द्वारा खड़ी की गई राज्य-व्यवस्था को परास्त नहीं कर पाया। जीवन भर औरंगजेब मराठों को 'मरहट्टे' शब्द से संबोधित करता रहा। इसका अर्थ है, जो मरते हैं, पर हटते नहीं। शिवाजी द्वारा सैनिकों में स्वराज्य के लिए कूट-कूटकर भरी गई यह अदम्य जिजीविषा ही औरंगजेब के अतृप्त मरने का प्रधान कारण थी।

२७ साल में औरंगजेब केवल एक किला प्रचंडगढ़ (तोरणा) ही लड़कर जीत पाया। बाकी सारे दुर्गों को वह प्रलोभन (धन) देकर प्राप्त करता रहा। एक-दो माह बाद मराठा सेना उस पर फिर से कब्जा कर लेती। औरंगजेब का पैसा भी जाता और किला भी। लंबे समय तक वह मराठों की इस रणनीति को नहीं समझ पाया। पराजय की इसी खीज के कारण वह बौखला गया। उसने संभाजी की जिस वीभत्स ढंग से हत्या करवाई, वह उसके कुत्सित मन को व्यक्त करती है। सन् १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के बाद शिवाजी द्वारा खड़ी की गई व्यवस्था फिर से नए आयामों को छूने लगी। स्वराज की सेना ने दिल्ली पर हमला कर मुगलों के तख्त को ध्वस्त कर दिया और वहाँ की प्राचीर पर अपना ध्वज फहराया।

राज्य-संचालन में शिवाजी ने जिस सादगी का उदाहरण प्रस्तुत किया, वह आज भी स्मरण करने योग्य है। नासिक से लेकर जिंजी (चेन्नई के पास) तक आठ परगनों में उनका साम्राज्य फैला हुआ था। उसका संपूर्ण सैन्य और प्रशासनिक संचालन रायगढ़ दुर्ग से होता था। इस कार्य हेतु दुर्ग की कुछ हजार वर्ग फीट भूमि पर बने भवनों का प्रयोग किया जाता था, जो आकार-प्रकार में आज महाराष्ट्र के पुणे जिला कार्यालय के १/५ भाग से छोटा था। सचिवालय का सुनियोजन, निर्णय व कार्यालयीन कागजों का सुगमतापूर्वक आवागमन, योग्य दस्तावेजीकरण और इन सबको करनेवाले क्षमता में ज्यादा और संख्या में कम (हलका), ऐसे स्वराज्य के प्रशासनिक दल द्वारा प्रस्तुत उदाहरण आज के सभी प्रकार शासन-प्रशासन व सामाजिक संगठनों के नायकों के लिए एक अनुकरणीय पाठ है। हर नायक को स्मृतिशेष होने से पहले उसे अपने जीवन में हजारों निर्णय लेने होते हैं। कई बार निर्णय लेने से पहले असामंजस्य होता है। लगता है कि सही क्या है और गलत क्या? क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? संशय मनुष्य-स्वभाव का सहज भाग है। ऐसा जब-जब हो तब-तब श्री समर्थ द्वारा शिवाजी के लिए कही गई बात को याद रखना फलदायक रहता है। उन्होंने कहा कि 'सोचो, इन परिस्थितियों में शिवाजी होते तो क्या निर्णय लेते? उनके कार्य, व्यवहार व स्वरूप का स्मरण करो; मार्ग स्वत: प्रशस्त होगा।'

शिवाजी एक विचार है, एक कार्यशैली है। वे इस देश की उस सनातन संस्कृति के उद्घोषक हैं, जो देश के विभिन्न कोनों में अलग-अलग शताब्दियों में हुए अन्य राष्ट्र नायकों की तरह सदैव प्रेरणा देते हैं।

शिवाजी आज भी स्वराज्य को शक्ति प्रदान करते हैं। स्वराज्य की जो स्थापना उन्होंने की, वह हिंद महासागर से हिंदुकुश की पर्वत-शृंखला तक और कच्छ के रण से लगाकर सघन वनों से आच्छादित भारत की म्याँमार सीमा तक विस्तारित हो चुकी है। जो नायक इसे पुष्ट करना चाहते हैं, उन्हें स्वयं में शिवाजी के मनोभावों व अवधारणाओं का विकास करना होगा। एक बार मन का धरातल स्वराज्य के सैनिक का बना तो फिर कोई भी उस पर खड़े होकर अपना कार्य उनकी भावना अनुसार संपादित कर सकता है।

शिवाजी और अन्य महापुरुषों के चित्रों, मूर्तियों, नारों व उनके नामों से राजनीति करनेवाले स्वार्थी राजनेताओं के भाषणों में महापुरुष कितने बसते हैं, यह तो वे ही बता सकते हैं। हाँ, किंतु इतना निश्चित है कि शिवाजी की अविनाशी चेतना आज भी चलती-फिरती है, योग्य पात्रों में आशा का संचार करती है। उससे मार्ग पूछो तो वह स्वराज्य के जन-कल्याण का मार्ग बताती है। समस्याओं से घिर जाने पर समाधान पूछो तो वह भी बताती है—आवश्यकता है छत्रपति शिवाजी महाराज के प्रति प्रामाणिक होने की।

साअ

(श्री अनिल माधव दवे द्वारा लिखित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'शिवाजी व स्वराज' से साभार)

ढूँढ़ते जल जीव प्यासे

● ब्रजेश कुमार मिश्रा

आ गया फिर ग्रीष्म

आ गया फिर ग्रीष्म लेकर दाह।
हो गई फिर धूप पावक,
बनी लपटें मृदु हवाएँ।
हो गए फिर उष्ण-दाहक,
अवनि-अंबर, सब दिशाएँ।
हो चले सब पंथ सूने,
शीत छाया की सभी को चाह।
आ गया फिर ग्रीष्म लेकर दाह॥
क्षीणकाया हुईं सरिता,
ताल-पोखर तनु-उदासे।
गात धरती का दरकता,
ढूँढ़ते जल, जीव प्यासे।
क्लांत तन-मन, अधर सूखे,
वसन गीले, सतत स्वेद प्रवाह।
आ गया फिर ग्रीष्म लेकर दाह॥
हुए त्रासद दिवस उष्मित,
दुःखद लंबी रैन बेकल।
ग्रीष्म के संत्रास-पीड़ित,
लगें युग से दाहते पल।
सघन शीतल विटप कटते,
व्यर्थ देखें मृदु अनिल की राह।
आ गया फिर ग्रीष्म लेकर दाह॥

ग्रीष्म की एक चाँदनी रात

चंदा की थाली में रखा पराग,
किस कोमल कर ने बिखेर दिया
आ गिरा जगती के वक्ष पर,
तपते उर को शांत करने
धवल स्वर्ण-रश्मियों ने तानी है,
झीनी सी, पीली सी यह चूनर।
धरती के आनन पर,
अनावृत को आवृत्त करने
सौरभ सी यह फुहार,
अमृत सा यह वर्षण
वसुधा के तन-मन का यह सिंचन
करता है शीतल दुस्सह ताप को।
घुमड़ती-घुटती थी जो
श्वासें धरा के अंतर में,

उच्छ्वसित हुईं वे भी
शशि-शीतलता से या मलयानिल स्पर्श से
बनीं मोती-सी बूँदें
लौटा उल्लास, धरा मुसकाई,
कलियों ने अवगुंठन से झाँका—
पाया एकांत और बनीं पुष्प वे।

धूप प्रखर

पावक सी तन-मन दहे, प्रखर धूप की मार।
लपट-झकोरे बन बहे, सुरभित मंद बयार॥

कटी सघन वृक्षावली, मिटी चैन की ठाँव।
पंथी-पंछी खोजते, व्याकुल ठंडी छाँव॥

जाने-माने चिकित्सक एवं कवि। 'वेदना-गीत' *(गीत-संग्रह)* तथा अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशित। कुछ गजल-संग्रह शीघ्र प्रकाश्य। इसके अलावा पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

सड़कें सब सूनी करीं, ज्यों विधवा की माँग।
निठुर दुपहरी जेठ की, ऐसे रचती स्वाँग॥

शिथिलित तन, विचलित हृदय, दुसह तृषा का त्रास।
शीतल जल महँगा, बुझे कब निर्धन की प्यास॥

निर्झर-सा अविरल सतत, हुआ स्वेद का स्राव।
वसन रहें गीले सदा, निर्मम दाघ-प्रभाव॥

सरिता, सरूवर, कामिनी हुए ताप से क्षीण।
घटता जल चिंतित सभी, थलचर-जलचर दीन॥

दरक रही धरती तृषित, सूखा विषम कराल।
सूने अंबर को लखें, सकल जीव बेहाल॥

प्रबल ग्रीष्म के दाह को, द्रुमदल देते रोक।
वन-उपवन शीतल रहें, बनचर रहें अशोक॥

बिजली खेले रात-दिन, लुका-छिपी का खेल।
जनरेटर कब तक चले, इनवर्टर भी फेल॥

धनी काटते शीत से, घन निदाघ का फंद।
बसें पहाड़ी क्षेत्र में, फिरें मुदित निर्द्वंद्व॥

दिवस बने कारा कठिन, हुई सजा-सी रात।
पावस जब रिमझिम झरे, तभी बने कुछ बात॥

मिश्रा नर्सिंग होम, सिद्धार्थ कॉलोनी
आर्य समाज रोड, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
दूरभाष : ०९४१२२११७६३

कहानी

दो फुट जमीन

● सुषमा मुनींद्र

उच्च न्यायालय के परिसर में प्रवेश करते हुए शिवचरण और कालीचरण दोनों में से किसी ने नहीं सोचा था कि पंद्रह वर्ष से चल रहे मुकदमे को आपसी रजामंदी से इस तरह वापस ले लेंगे। झगड़ा, जो दो फुट जमीन को लेकर आरंभ हुआ, इन पंद्रह वर्षों में आर्थिक, सामाजिक, वैचारिक, पारिवारिक, प्रत्येक स्तर पर लड़ा गया। दो भाइयों की लड़ाई दो परिवारों, दो गुटों की लड़ाई हो गई है। दोनों की छातियों में अपमान, वैमनस्य, प्रतिशोध, घृणा, क्रोध की कई-कई परतें जम चुकी हैं। इस बीच दोनों एक-दूसरे से बोले नहीं हैं। तभी बोले हैं, जब अपनी-अपनी छतों या चौगान में खड़े हो हाथ भाँजे हैं। ऐसे में मुकदमा वापस लेना चकित कर देनेवाला अनुभव है।

कभी माँ की छाती रत्न जनने के अभिमान से चौड़ी हो जाती थी, 'मेरे दो लाल हैं। दो के चार हाथ हैं। चार हाथ काम साधेंगे तो घर भर जाएगा।'

माँ भोली थी। नहीं जानती थी कि चार हाथ काम कम साधते हैं, तबाही अधिक मचाते हैं। माँ उस दिन बहुत प्रसन्न थी, जिस दिन पुश्तैनी कच्चे घर के सामने रिक्त पड़ी भूमि में दोनों पुत्रों ने अगल-बगल बनाए जानेवाले अपने-अपने पक्के मकान की नींव की खुदाई हेतु भूमि-पूजन किया था। पक्के मकान में रहने की साध लिये माँ चगन-मगन थी—

'छह माह शिव के घर रहूँगी, छह माह काली के। कितना अच्छा होता, जो आज तुम्हारे बाबू होते।' माँ भोली थी, नहीं जानती थी, स्वेच्छा से किया गया यह अर्द्ध-वार्षिक अनुबंध विवश अनुबंध सिद्ध होगा कि दोनों में से कोई उन्हें मन से रखने को तैयार न होगा, और एक दिन वह साधारण से ज्वर में पकड़ी गई खाट को भवबंध से मुक्त होकर छोड़ेगी।

दो गज जमीन। कफन-दफन-अग्नि संस्कार के लिए दो गज जमीन बहुत होती है, पर मनुष्य की भूपति बनने की इच्छा सदियों पुरानी है। जर-जोरू-जमीन बड़े-बड़े मनीषियों की मति भ्रष्ट कर देती है। अब यह विश्वास करना कठिन है कि कभी कालीचरण ने एक वर्ग संघर्ष में फँसे शिवचरण का दोष स्वयं पर आरोपित कर तीन माह का कारावास भोगा था। शिवचरण अड़ गया था, 'काली, तुम यह क्या बेवकूफी करते हो?'

'बेवकूफी तुम कर रहे हो भाई। तुम खेत-पात हमसे अच्छी तरह सँभालते हो। सरपंच पद के दावेदार भी हो। तुम्हारा रिकॉर्ड खराब नहीं होना चाहिए। हम मस्तमौला मनई, जैसे यहाँ वैसे जेल में।' कालीचरण भी अपनी तरह का हठी आदमी था। उसकी पत्नी ने समझाने में पूरा जोर लगा दिया था, 'जो करे वही भरे, तुम काहे जहल जाओ?'

सुप्रसिद्ध कथाकार। 'गृहस्थी', 'छोटी सी आशा', 'मेरी बिटिया', 'नुक्कड़ नाटक', 'महिमा मंडित', 'अस्तित्व', 'मृत्युगंध' कृतियाँ चर्चित। कहानियों का मलयालम, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी तथा उर्दू में अनुवाद। 'चंद्रधर शर्मा गुलेरी पुरस्कार', 'प्रेमचंद हंस कथा-सम्मान', 'निर्मल साहित्य पुरस्कार' समेत कई पुरस्कारों से सम्मानित।

'तुम मेहरिया हो मेहरिया की तरह रहो। हम भाइयों के बीच में न पड़ो।' कालीचरण ने दो-टूक सुना दिया था।

मानव-मनोविज्ञान भी कम विचित्र नहीं। वह हो जाता है, जो होना नहीं चाहिए या जिसका हम सोच नहीं पाते। गाँव-जवार में चर्चित राम-लखन की जोड़ी दो फुट जमीन के लिए विगत पंद्रह वर्षों से एक-दूसरे को नीचा दिखाने के सकल जतन और जुगत कर रही है।

चूल्हे अलग होते ही विचार अलग हो जाते हैं, मन बदल जाते हैं। यह दो फुट जमीन का प्रपंच सचमुच सुलझ नहीं पा रहा था। दोनों भाइयों के मकानों के मध्य बच रही आठ बाई तीस फुट भूमि में जब बाड़ी रुँधाने की बात उठी तो शिवचरण के नाप के अनुसार उसकी ओर दो फुट भूमि अधिक निकल रही थी। कालीचरण ने आपत्ति की। पटवारी बुलाया गया। पटवारी ने नाप-जोखकर शिवचरण के नाप को सही बताया।

'पटवारीजी, यह कैसे हो सकता है। जमीन बरोबर-बरोबर मिलनी चाहिए।'' कालीचरण ने असहमति दरशाई।

पटवारी बोला, 'बरोबर कैसे मिलेगी। मैं सही नाप बता रहा हूँ। तुम्हारे घर में अधिक जमीन लग गई है।'

'मैं नहीं मानता।'

'क्यों नहीं मानोगे, हमारा विश्वास न करो तो पटवारीजी का तो करोगे।' शिवचरण ने आँखें तरेरीं।

'यह तुम्हें क्या हो गया है, भाई! तुम तो ऐसे नहीं थे।'

'तुम भी ऐसे नहीं थे, काली। जरा सी जमीन के लिए हमसे बहस कर रहे हो। पटवारीजी सरकारी मुलाजिम हैं। तुम्हें इनकी बात माननी चाहिए।'

माँ अपने जीवन भर का अनुभव उड़ेलने लगी। दोनों ने उन पर

पक्षपात का आरोप लगा दिया, 'माँ, तुम बचपन से काली को अधिक मानती आई हो।'

'माँ, तुमने भाई के सामने हमेशा हमें नालायक समझा है। हम सदा भाई की मुँहदेखी करते आए हैं। आज चुप नही रहेंगे।'

'यहीं की है मुँहदेखी। इतनी सी जमीन के लिए तांडव कर रहे हो।' शिवचरण ने व्यंग्य मारा।

'तुम जान माँग लो, दे दें, पर यह दो फुट जमीन हथियाने के पीछे तुम्हारा कौन सा काम सधेगा, हमको समझ में नहीं आ रहा है।' कालीचरण अपनी बात पर अड़ा रहा।

'काम क्या सधेगा? हमारे हिस्से की जमीन है, हम ले रहे हैं।'

लोग जुहाने लगे। पटवारी विक्षुब्ध हो फीता समेटकर चला गया। शाम को उद्विग्न कालीचरण पटवारी के घर जा पहुँचा। पटवारी पान चबाता हुआ अखबार बाँच रहा था।

'यह सब क्या है पटवारी?'

'आओ बैठो, तुम चाहो तो शिवचरण की दो फुट क्या चार फुट जमीन तुम्हारी तरफ खिसका दें।' पटवारी कुटिलता से मुसकराया। झगड़े की स्थिति बने, इसीलिए पटवारी ने गलत नाप कर दी थी। इन झगड़ों में पटवारी का हित निहित होता है।

'जमीन भी खिसकती है?'

'चुटकियों में। कुछ खरचा-पानी देना होगा। शिवचरण वैसा दूध का धुला नहीं है, जैसा तुम समझते हो। उसे जमीन का लालच हो गया है।'

कालीचरण को किसी बड़े षड्यंत्र की बू आने लगी। पटवारी की बातों ने उसे प्रभावित किया। उसने पटवारी की अच्छी खातिर की। इस बार जमीन की नाप हुई तो कालीचरण की ओर अधिक जमीन निकल रही थी। इस भूमि स्थानांतरण पर क्रुद्ध शिवचरण ने पटवारी और कालीचरण को खूब ललकारा। बंदरबाँट में पटवारी ने दोनों पक्षों से पैसा हजम किया और नेक सलाह दी—'तुम दोनों को मुझ पर विश्वास नहीं है। मामला नायब तहसीलदार के समक्ष ले जाओ। वहीं फैसला होगा।'

इस खानदान में अभी तक किसी ने मामला-मुकदमा नहीं लड़ा था। यह पहली पीढ़ी थी, जो मुकदमा लड़ने जा रही थी। माँ रोई-धोई। गाँव भर में भद्द पिटी, पर अहं आड़े आ जाए तो व्यक्ति हतबुद्धि हो जाता है। नायब तहसीलदार की अदालत से अदालती लड़ाई का प्रथम चरण आरंभ हुआ। वकीलों, अधिकारियों, बाबुओं, पेशकारों के चेहरे बेनकाब होने लगे। पेशी की बढ़ती तारीखों ने दोनों भाइयों को हैसियत याद दिला दी कि गाँव में प्रतिष्ठित समझे जानेवाले लोग अदालत पहुँचकर कैसे निरीह, निस्सहाय, निष्प्रभावी हो उठते हैं। पेशी के दिन कलेवा कर दोनों भाई अलग-अलग साधनों से अदालत पहुँचते। अपने वकीलों का मुँह जोहते कार्यालय में बैठे रहते। जब साँझ घिरने लगती, वकील दो-

दोनों भाइयों की पत्नियाँ, जो ममेरी-फुफेरी बहनें हैं और जिनमें कभी अच्छा सामंजस्य था, अपने बच्चों से दूसरे पक्ष की गुप्तचरी करातीं। बच्चे छोटी बात को लाग-लपेटकर बड़ी बना देते। बात को मुद्दा बना, दोनों बहनें आँगन, छत, खिड़की, द्वार से एक-दूसरे की दिशा मे प्रक्षेपास्त्र दागतीं। माँ समझा-बुझाकर थक गई और एक दिन इहलोक छोड़ गई। गाँववालों को मुफ्त की नौटंकी देखने को मिल रही थी।

टूक सुना देते—'पेशी बढ़ा दी गई है। साहब की साली आई हुई है। उन्हें चचाई फाल दिखाने के लिए दोपहर बाद घर चले गए हैं।'

दोनों पक्ष के वकील प्रत्येक पेशी के लिए तय राशि झटक लेते और दोनों भाई हारे हुए जुआरियों की भाँति गाँव की ओर जानेवाली बस पकड़ने के लिए चल पड़ते। राम-राम कर फैसला हुआ, जो कि शिवचरण के पक्ष में चला गया। कालीचरण का मुख स्याह पड़ गया। उसी ने मुकदमा दायर किया था और वही हार गया। गाँववाले कहेंगे कि बड़े भाई की जमीन पर जबरन कब्जा करना चाहता था। लो, हो गया दूध-का-दूध, पानी-का-पानी। शिवचरण ऊपर की ओर उमेठी हुई मूँछों में हँस रहा था। कालीचरण पछाड़ खा रहा था। वकील ने साधा, 'परेशान क्यों होते हो भाई। मुझे तो साफ लगता है, नायब तहसीलदार ने शिवचरण से घूस खाई है। तभी गलत फैसला सुनाया है। हम मामला कलेक्ट्रेट में ले जाएँगे। जीत तुम्हारी होनी है।'

'चाहे जितना रुपया-दाम लग जाए, मुकदमा हमको जीतना है, वकील साहब। हम हार गए तो लोग समझेंगे कि हम भाई का हक छीन रहे थे।'

कालीचरण ने अपनी पराजय को चुनौती की तरह लिया।

'शिवचरण तुम्हारा हक छीन रहा है। तुम्हें तुम्हारा हक मिलेगा।'

कालीचरण का चित्त अस्थिर था। लग रहा था, वकील उसके पक्ष में बोलता रहे। सिद्ध करे कि उसके साथ पक्षपात हुआ है।

मामला डिप्टी कलेक्टर के समक्ष ले जाया गया। पेशी की तारीखें बढ़ती रहीं। अधिकारी कभी दौरे पर, कभी छुट्टी पर, कभी मंत्रियों की सेवा में, कभी किसी पक्ष का वकील अनुपस्थित, कभी शिवचरण अस्वस्थ। किसी तरह सुनवाई हुई। डिप्टी कलेक्टर ने प्रकरण विशेष जाँच का निर्देश देते हुए नायब तहसीलदार की अदालत में रिमांड हेतु भेज दिया। जिसके पक्ष में निर्णय नहीं हुआ, उसी ने अपने वकील के साथ मिलकर ताल ठोंकी और प्रकरण राजस्व मंडल तक घसीटा गया।

वर्ष गुजरते रहे। मुकदमा जीतना प्रतिष्ठा का विषय बन गया। झगड़ा दो फुट जमीन का कम, आत्मसम्मान का अधिक हो गया। दोनों भाइयों का पूरा दिन अदालत आने-जाने में खप जाता। खेती-बाड़ी के कार्यों में व्यवधान पहुँचता। दोनों भाइयों के बच्चों, जो कभी साथ खाते-स्कूल जाते थे, में छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा होने लगा। बच्चे अपनी-अपनी छतों पर चढ़कर एक-दूसरे को अँगूठा दिखाते, जीभ चिढ़ाते, अनर्गल प्रलाप करते। दोनों भाइयों की पत्नियाँ, जो ममेरी-फुफेरी बहनें हैं और जिनमें कभी अच्छा सामंजस्य था, अपने बच्चों से दूसरे पक्ष की गुप्तचरी करातीं। बच्चे छोटी बात को लाग-लपेटकर बड़ी बना देते। बात को मुद्दा बना, दोनों बहनें आँगन, छत, खिड़की, द्वार से एक-दूसरे की दिशा मे प्रक्षेपास्त्र दागतीं। माँ समझा-बुझाकर थक गई और एक

दिन इहलोक छोड़ गई। गाँववालों को मुफ्त की नौटंकी देखने को मिल रही थी।

राजस्व मंडल का निर्णय कालीचरण के पक्ष में गया। शिवचरण झाग सा छोड़ने लगा, 'वकील साहब, यह तो अंधेर नगरी चौपट राजा का राज हो गया। मुकदमा में इतना पैसा स्वाहा हुआ और जमीन पाएगा काली? यह भाई है कि करिया नाग। इसी के कारण हमारी सरपंची गई। माँ मरी। न यह मुकदमा ठोंकता, न इतना सब नाटक होता।'

पराजय की विक्षुब्ध व्यथा, अदालती दौड़-धूप की थकान, वकीलों की फीस, अधिकारियों-बाबुओं को पैसा खिलाने का अर्थदंड। शिवचरण चकित था। बाबू लोगों को खुश न रखो तो फाइल ही कार्यालय से गायब कर दी जाए। शिवचरण से कालीचरण का विजयोल्लास पचाया नहीं जा रहा था। इस कालीचरण के कारण ही उसे सरपंची नहीं मिल पाई। वह दो बार से लगातार सरपंच चुना जाता रहा है, किंतु इस बार शिवचरण-विरोधी वातावरण बनाने में कालीचरण ने मोटी राशि व्यय की। शिवचरण को सरपंची नहीं मिलने दी। भूमि के नामालूम से टुकड़े की खातिर दोनों भाइयों का अटूट प्रेम टूट गया। अहं भाव और वकीलों की चुनौती ने उन्हें ऐसे दोराहे पर ला छोड़ा था, जहाँ से वे सही मार्ग का अनुमान नहीं लगा सकते थे। अपने वकील की उत्प्रेरणा और भाई को पटकनी देने की मंशा। शिवचरण ने सिविल सूट दायर कर दिया। उबाऊ और थका देनेवाली लड़ाई नए सिरे से आरंभ हुई। दोनों भाई अपने-अपने वकीलों के इशारे पर जमूरे की भाँति नर्तन करते हुए निचली अदालत में सिर फोड़ते रहे। निर्णय शिवचरण के पक्ष में हुआ। कालीचरण का उन्नत शीश छाती पर ढुलक आया। उसके वकील ने नाजुक नब्ज पकड़ी—

'कालीचरण, तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है। तुम्हें हाई कोर्ट जाना चाहिए। यह प्रजातंत्र है। प्रजातंत्र में न्याय पाने का अधिकार सबको है।''

इतने वर्षों की तबाही या पराजय के आघात ने ऐसा विचलित कर दिया कि वह जैसे सन्निपात में कहने लगा, 'वकील साहब, हमें तो लगता है कि जमीन का मोह छोड़ दें। बहुत हुआ। जमीन भाई ले ले। हम तो आजिज आ गए। मूड़ के बाल पक गए इस मुकदमे में।'

'कालीचरण, यह तुम नहीं तुम्हारी निराशा बोल रही है। अरे, यह वह देश है, जहाँ महाभारत लड़ा गया था। तुम हार मानकर बैठ जाना चाहते हो, यही करना था तो इतने साल क्यों पनही घिसते रहे? समझने की कोशिश करो। अब यह मुकदमा थोड़ी सी जमीन का नहीं रह गया है, इसमें कानून की नई व्याख्या सामने आएगी।'

वह वकील ही क्या, जो मुवक्किल को उत्साहित करना न जाने।

'कानून की क्या कहें। जमीन की कीमत से कई गुना मुकदमे में खर्च हो गया है।'

'पैसा तुम्हारे स्वाभिमान से बढ़कर हो गया। अब यह केस तुम्हारी ही नहीं, मेरी भी प्रतिष्ठा का मुद्दा बन गया है। यह शिवचरण का वकील अपने आपको समझता क्या है? कल बार में बैठकर मेरी हँसी उड़ा रहा था कि मैं यह केस जीत नहीं सकता, दिखा दूँगा, मैं भी कोई हस्ती हूँ। हाथी निकल गया है, बस पूँछ बाकी है।'

अनिच्छा से ही सही पर एक मौका और सोचकर कालीचरण प्रकरण उच्च न्यायालय में ले गया। उधर पेशी बढ़ती रही, इधर शिवचरण की पुत्री जसोमती का विवाह हुआ। जसोमति दोनों भाइयों के बच्चों के बीच अकेली लड़की है। कभी कालीचरण कहा करता था, वह जसोमती का कन्यादान करेगा। अब परिस्थिति यह थी कि गाँव के बूढ़े-सयानों के समझाने पर भी न शिवचरण ने कालीचरण को विवाह में बुलाया, न कालीचरण भतीजी को आशीर्वाद देने गया। बगल में बरात के ढोल-ढमाके-नगरिया बजती रही। कालीचरण अँधेरा किए पड़ा रहा। कुछ मुँहफट बराती सारा कांड खोद-खोदकर पूछते रहे। कुछ जागरूक घराती गाथा बताते रहे, सुनकर शिवचरण के भीतर लपटें उठती रहीं। संयोगवश कालीचरण की दुधारू गाय शिवचरण के खेत में घुस गई। शिवचरण के भीतर की आँच गाय पर टूटी। गौमाता का एक पैर तोड़ डाला। गाय की दुर्दशा पर कालीचरण और शिवचरण के लड़कों में मार-पीट हुई। किसी ने पुलिस चौकी में रपट लिखा दी। दो सिपाही पहुँचे। दोनों भाइयों को दुत्कारा और रुपए ऐंठे।

उच्च न्यायालय। पेशी का दिन। वादी-प्रतिवादी आमने-सामने। जज साहब ने शिवचरण से पूछा, 'कितने साल से मुकदमा लड़ रहे हो?'

'पंद्रह साल से माई-बाप।'

'जमीन कितनी है?'

'आठ बाई तीस हुजूर। झगड़ा बीच के दुई फुट का है।'

जज साहब ने चौंकते हुए चश्मा उतारकर मेज पर रख दिया।

'दो फुट और आप लोग लड़ते हुए इस अदालत तक आ पहुँचे हैं। इतनी सी बात आप दोनों भाई आपसी समझ-बूझ से नहीं सुलझा सकते थे—अपने हक के लिए लड़ना प्रत्येक नागरिक का संवैधानिक अधिकार है, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि अदालती प्रकिया को खिलवाड़ समझ लिया जाए। अदालत यदि इसी तरह के छोटे-मोटे झगड़े निपटाती रहे तो उन मामलों को कब निपटाएगी, जो वास्तव में अदालतों के जरिये ही निपटाए जा सकते हैं। लोग कहते हैं कि अदालती प्रकिया बड़ी लंबी और पेचीदा है। क्योंकि अदालतों पर बोझ बहुत बढ़ गया है। रोज सैकड़ों मुकदमे दायर किए जाते हैं। अदालत पर अनावश्यक काम का बोझ पड़ेगा तो जरूरी मामले लंबित होते चले जाएँगे। आप दोनों भाई स्वयं को देखें। पंद्रह वर्ष बहुत होते हैं। आप लोगों ने अपने कुछ बहुत अच्छे साल इस अदालती लड़ाई को भेंट चढ़ा दिए हैं। मेरी सलाह मानिए, आप दोनों समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाइए, आपस में विचार-

विमर्श कीजिए। मैं समझता हूँ, आप में वह क्षमता है, जिससे आप आपसी बातचीत से इस मामले को सुलझा सकते हैं। बात कुछ भी नहीं है। आप लोगों ने इतनी बढ़ा दी है। बाहर बैठकर अहं भाव भूलकर आपस में बातचीत कीजिए। फैसले का दायित्व मैं आप दोनों पर छोड़ता हूँ। एक घंटे बाद मुझे अपना फैसला बताइए! यदि आप किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचेंगे तो फैसला मैं सुनाऊँगा।'

ऊँची छतवाले कक्ष में गूँजता जज साहब का नितांत अनपेक्षित स्वर दोनों भाइयों की कनपटियाँ झनझना गया। पंद्रह वर्षों की थकान, परेशानी, तनाव, संघर्ष, ऊहापोह, मतभेद ने दोनों भाइयों के वृद्ध हो चले चेहरे को शिथिल कर दिया। इस अद्‌भुत और विचित्र परिस्थिति की आशा या आशंका दोनों में से किसी को नहीं थी। कदाचित् उस समय कक्ष में उपस्थित किसी भी व्यक्ति को नहीं थी। दोनों भाइयों की दृष्टि एक निमिष को मिली और विलग हो गई। दोनों पक्ष के वकीलों की तनी भंगिमाएँ शिथिल पड़ गईं। खोदा पहाड़ और निकली चुहिया की त्रासदी से दोनों के मुख लुटे-पिटे से दिखने लगे।

'जाइए, आपस में विचार-विमर्श कीजिए। एक घंटे बाद आइए।'

दोनों भाई अपने-अपने वकील के साथ कक्ष से बाहर आ गए। अस्थिर चित्त, निस्तेज मुख, लटपटाते पैर, भँवर में फँसी मन:स्थिति, लंबे दालान और परिसर की गहमा-गहमी से हटकर चारों लोग नीम की छाया में खड़े हो गए। कुछ क्षण चुप्पी छाई रही। जैसे चारों बोलना भूल गए हों या बोलने के लिए कुछ न बचा हो। फिर शिवचरण के वकील ने कहा, 'इस तरह फैसला होता है, खुद को सबकुछ कर लेना होता तो हम इतनी दौड़-धूप ही क्यों करते? जज साहब अजीब आदमी हैं।'

'हाँ, जज साहब ने तो असमंजस में डाल दिया।' शिवचरण बोला, अंजाम क्या है। साफ कह दो, तुम मुकदमा वापस नहीं लोगे। जज साहब फैसला सुनाएँ। फैसला तुम्हारे पक्ष में होना है।''

'वकील साहब, आपको ऐसा नहीं लगता, जज साहब ठीक कह रहे हैं? बात की बात में बात बढ़ गई। वैसे बात कुछ भी नहीं थी।' कालीचरण ने अपने वकील से कहा।

सुनते ही शिवचरण अविश्वास से अनुज को ताकने लगा। यह वही कालीचरण है न, जिसे गाँव के सारे प्रबुद्ध-अनुभवी लोगों ने समझाया था, कोर्ट-कचहरी में न पड़े। यह नहीं माना था। शिवचरण बहुत दिनों बाद, शायद सदियों बाद कालीचरण को इस तरह स्थिर दृष्टि से देख रहा था। उसे कालीचरण बहुत बूढ़ा लगा। आह! यह तो जवान पट्ठा था। बूढ़ा कब···इन पंद्रह वर्षों में···।

'बात क्या थी, क्या नहीं, लेकिन बिना फैसले के खत्म नहीं होगी।'

वकील ने कालीचरण का जोश कायम रखना चाहा।

'क्या बताएँ। जब साहब की बातों ने हमें तो नींद से जगा दिया। सोचते हैं, मुकदमा वापस ले लें। बात सेंत-मेंत में इतनी बढ़ गई। हम वह जमीन भाई को दे देंगे। गरीब न हो जाएँगे।'

प्रभावी पद पर आसीन प्रभावी व्यक्ति की प्रभावी बातों का प्रभाव था या धैर्य चुक गया था। कालीचरण ने अपना मंतव्य स्पष्ट कर दिया। सुनकर शिवचरण लज्जित हुआ। कालीचरण छोटा होकर बड़प्पन दिखा रहा है। यह वही कालीचरण तो है, जो बीमार पड़ता था तो वह उसकी चारपाई के इर्द-गिर्द डोलता फिरता था। और आज वह इतना बड़ा शत्रु नजर आ रहा है? फिर अहं ने फन उठाया, जमीन दान कर बड़प्पन तो नहीं लूटना चाहता है। पंद्रह वर्षों की ऐंठ यों ही तो सीधी नहीं होगी। शिवचरण ने दर्प से छाती तानी—'वकील साहब, ऐसी बात है तो वह जमीन काली रखे। भगवान् ने हमको बहुत दिया है।'

'भगवान् बहुत दिए हैं तो पंद्रह साल से क्यों लड़ रहे हो?' कालीचरण अब सीधे शिवचरण से संबोधित हुआ।

'मुकदमा तुम्हीं ने ठोंका था। जमीन लो और किस्सा खतम करो।'

'हम जमीन नहीं लेंगे। इस जमीन के कारण इतना सब नाटक हुआ।'

एक इंच भूमि छोड़ नहीं रहे थे। अब ले नहीं रहे हैं। दोनों वकीलों ने असहाय दृष्टि से अपने-अपने मुवक्किल को ताका।

मानव स्वभाव की विचित्रता। पल में तोला पल में माशा। दोनों भाइयों के समक्ष विगत चलचित्र की तरह घूमने लगा। पंद्रह वर्ष। सुदीर्घ पंद्रह वर्ष। दोनों भाई युवा से वृद्ध हो चुके हैं, टूट चुके हैं, थक गए हैं। बहुत कुछ खो चुके हैं—माँ, सरपंची, संचित धन, भाईचारा, प्रतिष्ठा, सम्मान, बच्चों का आपसी मेल-जोल, स्नेह। इस संघर्ष से जूझते बच्चे आज बच्चोंवाले हो गए हैं। दोनो भाइयों के ज्ञानचक्षु खुल गए। बोधिसत्त्व प्राप्त हो गया। दोनों की बरौनियाँ आत्मीयता से पड़पड़ाईं। जैसे पंद्रह वर्ष के बिछुड़े आज मिले हों।

'अब बुत बने खड़े न रहो, कुछ बोलो। जज साहब को जवाब देना है।' शिवचरण के वकील ने हाथ की उँगलियाँ चटकाना बंद कर कहा।

'हम मुकदमा वापस लेंगे, वकील साहब। वह जमीन दोनों की साझा रहेगी।'

शिवचरण के प्रस्ताव का कालीचरण ने अनुमोदन किया, 'अब की है भाई तुमने बड़प्पन की बात। तुम बड़े हो, तुम्हारी बात पत्थर की लकीर है।'

'चलो, तुम्हें बड़े का आदर करने का सहूर तो आया। अब तक तो जैसे किसी ने टोना मार रखा था।' शिवचरण न चाहते हुए भी कटाक्ष कर गया।

'व्यंग्य मारने की तुम्हारी आदती जाएगी नहीं।'

'तो तुम्हें क्या?'

मुकदमा वापस ले लिया गया।

सदियों बाद दोनों भाई एक साथ बस की सीट पर अगल-बगल बैठे गाँव लौट रहे थे। दोनों चुप, शायद सोच रहे थे कि पहले सद्‌बुद्धि आ जाती तो यह क्षति न होती, जो हो गई।

लक्ष्मी मार्केट
रीवा रोड, सतना-४८५००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०७८९८२४५५४९

राम झरोखे बैठ के

लाल बत्ती की विदाई

● गोपाल चतुर्वेदी

उनके कान में मच्छर भिनभिना रहा है। वह एक-दो बार हाथ को कान के पास ले जाकर उसे मुट्ठी से पकड़ने का असफल प्रयास कर चुके हैं पर यह उनके क्षेत्र की जनता के समान बदमिजाज है। हल्ला मचाने से बाज ही नहीं आता है। स्थिति सामान्य होती तो वह अब तक अधिकारियों को फोन कर आसमान सिर पर उठा लेते, ''जब मंत्रियों के आवास को आपने गंदगी और अक्षमता से मच्छरों का अड्डा बना दिया है तो आम आदमी का क्या होगा?'' यों वह आम आदमी का नाम सुविधा की तुलना में अपने हाथी और उसकी चींटी सी तुलना के संदर्भ में ही दोहराता है।

मोहल्ले के मोहल्ले जलाभाव से त्रस्त हैं। पीने को पानी नहीं है। प्रतिवेदन, प्रतिनिधिमंडल, अखबार के समाचार, मजाल है कि किसी से उनके कानों पर जूँ रेंगी हो? उनका लॉन और बगीचा तो हरा-भरा है। तीनों बाथरूम में पानी की इफरात है।

पर वह चुपचाप मगरूर मच्छर के आतंक से अपनी निजी कोशिशों से जूझते रहे। यहाँ तक कि उसे मारने के चक्कर में एक बार उन्होंने खुद ही अपने कान पर थप्पड़ तक मार लिया। उनका सिर भन्ना उठा, पर मच्छर का बाल भी बाँका नहीं हुआ। गजब की जिजीविषा है मच्छर की भी। कतई देश के सामान्य इनसान जैसी। मच्छर के अलावा इस वक्त उन की बड़ी चिंता लाल बत्ती की विदाई की है।

अभी हाल ही में करोड़ों फूँककर उन्होंने अपनी बिटिया का विवाह किया है। उन्हें याद है कि उसकी विदाई के समय वह अंदर-ही-अंदर फूट-फूटकर रो रहे थे, पर बाहर वह अच्छे मेजमान के समान दामाद, समधी और बरात की सुरक्षित और मंगलमय यात्रा के प्रबंध में जुटे थे। पुलिस का 'एक्कॉर्ट' आया कि नहीं? बसें वातानुकूलित तो हैं—प्रशासन को निर्देश दिया कि पीछे भी हथियारबंद सिपाहियों की जीप रहे। रास्ते का भरोसा नहीं है। लूटपाट की घटनाएँ होती ही रहती हैं। फिर यह तो बरात है, जो मंत्री की बेटी को लेकर लौट रही है। इसका लुटना तो सरकार की साख का लुटना है।

इस दृश्य को उनके मित्र और परिचित भी देख रहे हैं। उनका एकमत निष्कर्ष है कि यह इनसान है कि मुखौटों की चलती-फिरती दुकान? ऐसी खास किस्म की दुकान, जो मुखौटों का फ्री प्रचार और विज्ञापन तो करती है, पर उनकी खरीद-फरोख्त नहीं। जो भी इस अभिनव दृश्य का साक्षी हो, वह आश्चर्य करे। संसार में ऐसा कौन सा पाहन हृदय पिता संभव है, जो बेटी की विदाई के वक्त अंदर उफनती भावनाओं को नियंत्रित कर उन्हें आँसुओं से व्यक्त न होने दे? पर यही तो मुखौटे का कमाल है। वास्तविक मुख कुछ भी महसूस करे, मुखौटा वही दरशाता है, जो दूसरे देखना चाहते हैं। तभी तो चुनावी चयन में खारिज नेता मन-ही-मन कोसता तो जनता की मूर्खता को है, पर सार्वजनिक रूप से दोष ई.वी.एम. को देता है। जनता की झूठी तारीफ उसका धर्म है, ''उस बेचारी ने तो बिना किसी लोभ और प्रलोभन के हमें अपना बेशकीमती वोट देकर कृतार्थ किया, पर सारी नापाक हरकत तो इस वोटिंग मशीन की है, जिसने हमारा वोट दूसरे दल के खाते में डाल दिया।''

हमें लगने लगा है कि मुखौटा एक कामयाब नेता, नागरिक या व्यापारी का स्थायी शृंगार है। मुखौटा संस्कृति आज के समाज में रुपए सी प्रचलित है। इसका पहला उसूल है कि 'मन भाई नहीं, सिर्फ मुँह देखी' बात करो। यदि पप्पू सामने खड़े हैं तो उसकी अतिरंजित प्रशंसा और अगर गप्पू आए तो उसकी खुलकर तारीफ, साथ ही उसे अधिक कर्णप्रिय बनाने को पप्पू की जी खोलकर बुराई। इस नई संस्कृति की अन्य अपेक्षा अंतर की भावना पर कठोर कंट्रोल और अवसर के अनुरूप व्यवहार है, जैसा विदाई पर बिटिया के बाप प्रदर्शित कर चुके हैं या दूसरे बड़े-बड़े जनसेवक मौका मिलने पर करते रहते हैं।

लाल बत्ती उनकी हसरत, महत्त्वाकांक्षा और जीवन के चहेते सपने के समान रही है। उसे पाने के लिए उन्होंने क्या-क्या जतन-जुगाड़ नहीं किए हैं। क्या-क्या हथकंडे नहीं आजमाए हैं। कभी किसी की चरण-वंदना, किसी की चाटुकारिता, किसी को चने के झाड़ पर चढ़ाने का प्रयोग, हर संभव प्रतियोगी को अपने प्रिय पत्रकारों अथवा कानाफूसी से नीचा दिखाने की जुगाड़। वर्षों की तपस्या को भंग करने के बाद मेनका को निहारकर जाने विश्वामित्र उल्लसित हुए थे या नहीं, पर हमारे जनसेवक की सारी साधना तो लाल बत्ती की मेनका के लिए ही थी। जैसे उनके मुखौटों की संख्या का अनुमान कठिन है, वैसे ही लाल बत्ती की खबर पाकर उनकी प्रसन्नता के पारावार का।

फिर भी हम उनके मुखौटा-लगाव की दाद देते हैं। उल्लास के इस विरल पल में भी वह वस्तुनिष्ठता का मुखौटा लगाए हर बधाई देनेवाले का मुँह मीठा करवा रहे हैं। मजाल है कि किसी माई के लाल को उनकी

आंतरिक प्रफुल्लता का रत्ती भर भी अहसास हो। उल्टे वह हर श्रोता को विश्वास दिला रहे हैं कि उनका जनसेवा का भार बढ़ गया है। अब कहना मुश्किल है कि उन्हें अपने स्नेही जनों से मिलने का वक्त भी मिले, न मिले? वह तो इसी ऊहापोह में हैं कि नई जिम्मेदारी स्वीकार करें कि न करें। अपनी प्यारी जनता से दूर रहने का दु:ख उन्हें खाए जा रहा है। अब तो उन्हें सूबे की राजधानी में रहना पड़ेगा। श्रोता आश्चर्य और अविश्वास से एक-दूसरे को ताक रहे हैं। ऐसे भी वह कब इस छोटे शहर में रहे हैं? विधायक बनने के बाद तो 'गुमशुदा की तलाश' के विज्ञापन भी उनके क्षेत्र में लग चुके हैं। उनका अधिकतर समय तो पद, प्रतिष्ठा और पैसे के चक्कर में महानगर में ही गुजरता है। खैर, अब तो क्षेत्र से बाहर रहने का उनके पास सरकारी बहाना है।

लाल बत्ती तो केवल एक प्रतीक है, सामान्य व्यक्ति से श्रेष्ठता की मानसिकता का। यह मानसिकता भी जाए तो बात बने, वरना हमें डर है, कहीं वह अंगद के पाँव सी टिकी रही तो देश में वास्तविक प्रजातंत्र कब आएगा? नाम बदलकर सामंततंत्र को जनतंत्र कहने और एक पारिवारिक राजा के जाने और दूसरे के आने का अनवरत सिलसिला क्या हमेशा चलता रहेगा? 'लाल बत्ती लल्लू' देश के लिए चिंतित हैं।

यों जब भी वह जनता से जनप्रियता का मुखौटा लगाकर मिलते हैं तो हर व्यक्ति से हर काम के लिए उनके शब्दकोश में केवल 'हाँ' है। नौकरी, तबादला, पुलिस की तफतीश रुकवाने की गुहार, सबमें उनका उत्तर सिर्फ सकारात्मक रहता है। एक बार तो किसी हरकती दुश्मन ने उनके बेटे के खिलाफ थाने में मारपीट की रिपोर्ट दर्ज करवाने का आवेदन दिया तो उन्होंने उस पर भी बिना पढ़े हस्ताक्षर कर दिए। जब अपने ही घर में दंगल मचा तो उन्हें स्वयं मुखौटे की मूर्खता पर क्रोध आया। गनीमत है कि तब तक वह विधायक बनकर अनधिकृत लाल बत्ती का उपयोग करने लगे थे। उन्होंने थानेदार को घर बुलाकर चाय पिलाई और झूठी शिकायत की गाथा का वर्णन किया। ''अब आप तो जानते हैं। न कहना हमारे स्वभाव के विपरीत है। क्या बताएँ, कोई व्यक्ति कुछ लिखकर दे तो अविश्वास कैसे करें? इसी गफलत में वह हमारी ही पीठ में छुरा भौंक गया। आप जरा देख लीजिएगा।''

दुनियादार थानेदार ने समझदारी का परिचय देते हुए ''हो जाएगा, सर!'' कहकर सैल्यूट ठोंका तो उनका दिल बाग-बाग हो गया। उन्हें अहसास हुआ कि लोग पुलिस और प्रशासन को व्यर्थ में कोसते हैं। यही तो वे संस्थाएँ हैं, जो निस्स्वार्थ जनसेवा में जुटी हैं। अराजक तत्त्व निहित स्वार्थवश इन पर भ्रष्टाचार के निर्मूल आरोप लगाते रहते हैं।

औपचारिक लाल बत्ती पाने के बाद वह एक बेहद लोकप्रिय और सिविल सेवाओं के अनुसार 'सफल' मंत्री रहे हैं। उन्होंने अपने विभागीय सचिव की सलाह का अनुपालन करवाने में कभी कोई कसर नहीं छोड़ी है। इसके एवज में उन्हें अपने निजी चुनावी फंड में नियमित अंशदान भी बिना रोक-टोक के मिलता रहा है। साथ ही प्रशासन तंत्र में 'गुडविल' भी। प्रशासनिक अधिकारी कहते हैं कि ''मंत्री हो तो ऐसा। कभी जनसेवा के कार्य के बारे में सोचता तक नहीं है, करना तो दूर की बात है।'' पूरे प्रदेश में उनकी कार्य-कुशलता की छवि बनाने में प्रशासनिक सेवाओं का सक्रिय योगदान है। मुख्यमंत्री भी उनकी प्रशासनिक क्षमता से प्रभावित हैं। जैसा अकसर होता है, उनके आँख-कान भी कुछ चुनिंदा और भरोसे के अफसर हैं। किस मुख्यमंत्री को पार्टी, विपक्ष और शासकीय समस्याओं के चलते इतनी फुरसत है कि वह जनता की समस्याओं से दो-चार हो सके। यदि उसके इलाके में उसी के निर्देश से सड़क, स्कूल या अस्पताल बन गया तो वह इसे पूरे सूबे की प्रगति और विकास से जोड़ता है। कभी-कभी तो वह अपने ही प्रचार-तंत्र का शिकार बनकर खुद की अतिशय लोकप्रियता के मुगालते में चमचों की प्रशंसा-कव्वाली को जनता के सच का प्रतिबिंब मान बैठता है। देश में ऐसे शहीद नेताओं की तादाद प्रगति पर है।

इसी बीच मंत्रीजी औपचारिक और 'ऑफिशियल' लाल बत्ती के आदी हो चुके हैं। मुख्यमंत्री की कृपा है। कभी दिल्ली भी सरकारी कामकाज से सिधारते हैं तो राज्य के हवाईजहाज की सेवा उन्हें उपलब्ध रहती है और लाल बत्ती की गाड़ी भी।

वहाँ सचिवालय के गलियारे में घूमकर उन्हें आभास हुआ है कि वह जैसे किसी 'रेड लाइट एरिया' के भ्रमण पर निकले हों। हर सचिव, अतिरिक्त और संयुक्त सचिव के कमरे की लालबत्ती ऐसी जगमगाती है कि क्या राजधानी में रात को विज्ञापन की होर्डिंग चमकें। उनके साथ आए सरकारी अफसर ने उन्हें सूचित किया, ''सर! यह लाल बत्ती जताती है कि साहब अभी सरकारी कार्य या मीटिंग में व्यस्त हैं।''

वह जान-बूझकर यह बताना भूल गया कि कई बार सहयोगी से निजी गपशप या कोई पुराने या नए प्रेम की लौ लगाने को भी लाल बत्ती की व्यवस्था उपयोगी है। मंत्री ने सूबे की राजधानी लौटकर पहला काम यह किया कि अपने कमरे में लगी लाल बत्ती के सतत उपयोग का निर्देश जारी किया, ''किसी मिलनेवाले या अधिकारी के अंदर आते ही लाल बत्ती जलना जरूरी है, वरना समझ लीजिए कि मेरे स्टाफ से आपका असमय प्रस्थान होकर रहेगा।''

दिल्ली से लौटकर वह अपने मंत्रालय को 'रेड लाइट एरिया' बनाने में व्यस्त हो गए। उनके विभागीय सचिव ने भी उनका साथ दिया। नतीजतन जनता का प्रवेश, जो सुरक्षा प्रबंधों से पहले ही सीमित था, तकरीबन बंद हो गया और मंत्री का जनसंपर्क भी। कोई फरियादी कैसे प्रवेश करे? कभी आ भी गया तो लालबत्ती से कैसे पार पाए? घर पर भूले-भटके आए लोगों को हर बात पर 'हाँ, हो जाएगा' के आश्वासन से भरमाते रहते। शुरू-शुरू में तो दर्शनार्थियों पर इसका सुखद असर पड़ा, 'कितना विनम्र है यह व्यक्ति, मंत्री बनकर भी कभी न नहीं करता। व्यस्तता के मारे देर भले हो, अंधेर तो नहीं होगी।' कुछ दिनों बाद मंत्री की 'हाँ' की कलई अपने आप खुल जाती।

मंत्री के लाल बत्ती लगाव का असर ऐसा है कि उनके बँगले के सेवकों की संतानें भी अपनी ट्राई-साइकिल के हैंडिल पर लाल बत्ती

लगाकर 'मंत्री-मंत्री' खेलते हैं। इसमें नन्हे बच्चे विधायक बनकर पहले आपस में रेस लगाते हैं। जो जीतता है, उसे लाल बत्ती लगाने का अधिकार है। धीरे-धीरे उन्हें अहसास हुआ कि एक विजेता को लाल बत्ती मिली भी तो खेल कैसे आगे बढ़ेगा? अब वह एक-एक कर गला फाड़कर चिल्लाते हैं। देखने में आया है कि चीखने-चिल्लाने में बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा प्रशंसनीय ही नहीं, बेमिसाल भी है। मंत्री घोषित होने की शर्त उनके माँ-बाप या बड़े का बाहर आकर उन्हें चुप रहने का निर्देश देना है। इसमें सब कामयाब होकर, मंत्री बनकर ट्राई-साइकिल की रेस के हकदार हो जाते हैं।

कालपनिक विकास और सिर्फ जुबानी जनसेवा का परिणाम यह रहा है कि मंत्री ही क्यों, उनका दल भी चुनावी दंगल में चारों खाने चित गिरा है। लाल बत्ती एक आदत ही नहीं, ऐसी लत है, जो आसानी से पीछा नहीं छोड़ती। अब वह अपनी गाड़ी के पीछे 'भू.मं.' (भूतपूर्व मंत्री) का बोर्ड लगाकर लाल बत्ती का प्रयोग करते हैं। पुलिस से उनका लेन-देन का रिश्ता है। जिला प्रशासन भी उदासीन है। वह क्यों बचकानी हरकतों पर ध्यान देकर बर्र के छत्ते को छेड़े? बच्चे उन्हें देखते ही ताली बजा-बजाकर 'लाल बत्ती के लल्लू' का समवेत कोरस छेड़ते हैं। बड़ों में तो वह लोकप्रिय हैं ही इसी नाम से।

मंत्री के लाल बत्ती लगाव का असर ऐसा है कि उनके बँगले के सेवकों की संतानें भी अपनी ट्राई-साइकिल के हैंडिल पर लाल बत्ती लगाकर 'मंत्री-मंत्री' खेलते हैं। इसमें नन्हे बच्चे विधायक बनकर पहले आपस में रेस लगाते हैं। जो जीतता है, उसे लाल बत्ती लगाने का अधिकार है। धीरे-धीरे उन्हें अहसास हुआ कि एक विजेता को लाल बत्ती मिली भी तो खेल कैसे आगे बढ़ेगा? अब वह एक-एक कर गला फाड़कर चिल्लाते हैं। देखने में आया है कि चीखने-चिल्लाने में बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा प्रशंसनीय ही नहीं, बेमिसाल भी है।

जबसे प्रधानमंत्री ने हर पद से लाल बत्ती को बंद करने की घोषणा की है, लल्लू खुश हैं, ''बड़ा हमें हराकर सूरमा बनता था। अब तो कतई सामान्य आदमी बन गया है। कमबख्त की लाल बत्ती भी जाती रही।''

हमें लल्लू जैसों से हमदर्दी है। जब चवन्नी चलन से गई तो हमें भी महँगाई के आगे अपने और उसके पिद्दी से व्यक्तित्व की अनुभूति से हार्दिक पीड़ा हुई थी। चवन्नी गई तो गई, पर अब भी चवन्नी छाप लोग शेष ही नहीं, तरक्की पर भी हैं।

लाल बत्ती तो केवल एक प्रतीक है, सामान्य व्यक्ति से श्रेष्ठता की मानसिकता का। यह मानसिकता भी जाए तो बात बने, वरना हमें डर है, कहीं वह अंगद के पाँव सी टिकी रही तो देश में वास्तविक प्रजातंत्र कब आएगा? नाम बदलकर सामंततंत्र को जनतंत्र कहने और एक पारिवारिक राजा के जाने और दूसरे के आने का अनवरत सिलसिला क्या हमेशा चलता रहेगा? 'लालबत्ती लल्लू' देश के लिए चिंतित हैं। बिना बत्ती आज जीवन नहीं चलता है तो बिना लाल बत्ती शासन कैसे चलेगा?

साअ
९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

भारतीय सूफी संत और कवि-परंपरा

● हेमंत कुकरेती

भारतवर्ष सर्वसमावेशी रहा है। इसने अपने प्रतिपक्ष में पड़नेवाले विचारों का सम्मान करने की शिक्षा दुनिया को दी है। भक्ति आंदोलन के दौरान निर्गुण संतों और सगुण भक्तों के साथ-साथ सूफियों का काम खासा महत्त्व का है। ये भारतीय संतों से प्रभावित थे। इनके दिशा-निर्देश पर जायसी, कुतुबन, दाऊद, मंझन जैसे सूफी कवियों ने हिंदू धर्म और अध्यात्म को आधार बनाकर उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। पश्चिमोत्तर भारत पर तुर्क हमलों के साथ सूफी भारत में दाखिल हुए। उत्तर-पश्चिमी भारत में सबसे पहले सुहारावर्दी संप्रदाय का प्रवेश हुआ। वे उत्तर-पश्चिम और सिंध जैसे इलाकों से आगे नहीं बढ़ सके। उनके बाद चिश्ती संप्रदाय का गहरा असर भारत पर पड़ा। इन लोगों ने खुद को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लिया। ११४३ ई. में उत्पन्न ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने सन् ११९१ में गौरी के आक्रमण से थोड़ा पहले इस संप्रदाय को भारत में प्रवेश दिलाया। उनके व्यक्तित्व का उनके समय और समाज पर गहरा असर पड़ा।

चिश्ती संत अपने आध्यात्मिक विचारों को संगीत के माध्यम से व्यक्त करते थे। गीत और संगीत की लय से जो आवेश उत्पन्न होता था, उससे भक्तिभाव में सराबोर भक्त बेहोश हो जाते थे। यह हिंदू पूजा-साधनाओं में देवी-देवताओं के आने या आविष्ट होने जैसा अनुभव था। मूर्च्छित होने की चरम अवस्था में मुईनुद्दीन के शिष्य ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की मृत्यु हो गई थी। उनकी मृत्यु के बाद संप्रदाय को बाबा फरीद गंज शकर ने नेतृत्व दिया। जिनके बाद निजामुद्दीन औलिया गद्दी-नशीन हुए। दिल्ली के तत्कालीन तुर्क सुल्तान और साधारण जन उन्हें हार्दिक आदर-सम्मान देते थे। ये सूफी-संत परम तत्त्व के साधक थे; उनका मानना था कि उन्होंने भारतीय संतों से ही ब्रह्मविद्या सीखी है। यही कारण है कि सूफी संत बादशाहों, नवाबों, सामंतों के प्रलोभनों से सर्वदा मुक्त रहते थे। असल ये में जनहृदय में बसे सम्राट् थे।

सूफी साधकों ने हिंदू-मुसलिम जनता के बीच सद्भाव और भाईचारा बनाने के लिए लगातार संघर्ष किया। उन्होंने कट्टरपंथियों, मुल्लाओं और गयासुद्दीन तुगलक जैसे संकीर्ण मानसिकता वाले बादशाहों का विरोध भी झेला। ये लोग इन सूफी-संतों की लोकप्रियता से डरते थे। लेकिन सूफियों के खिलाफ कोई सख्त कदम उठाने की हिम्मत उनमें नहीं थी। प्रसिद्ध इतिहासकार और भारतविद्या मर्मज्ञ वासुदेवशरण अग्रवाल

वरिष्ठ रचनाकार। अब तक पाँच कविता-संग्रह प्रकाशित। भारत-भूषण सम्मान, कृति सम्मान, केदार सम्मान से सम्मानित। कविताएँ देसी-विदेशी भाषाओं में अनूदित। संप्रति श्यामलाल कॉलेज (दि.वि.वि.) से संबद्ध। 'साहित्य अमृत' (मासिक) के संयुक्त संपादक।

के अनुसार मुसलमानी शासकों ने देश के अनेक भूभागों पर अधिकार जमाकर राज्यशक्ति को अपने हाथ में कर लिया था। पर उन सत्ताधारियों से कहीं अधिक प्रभावशाली उन धर्म गुरुओं का संगठन था, जिन्होंने जनता के भीतर प्रविष्ट होकर जनता की भाषा में उसी के स्तर पर धर्म का प्रचार किया। इन सूफी संतों का संगठन उत्तर-पश्चिम से बंगाल और गुजरात के दक्षिण तक फैला था। इन धर्म गुरुओं की कई गद्दियाँ और लाखों शिष्य थे। इन्होंने इसलाम धर्म को विचारों के एक नए साँचे में ढाल दिया, जिसमें भारतीय धर्म-परंपरा के साथ इसलामी विचारों का उदार समन्वय हो गया। कायासाधन, ध्यान, उपवास, व्रत, नामजप, गुरुमहिमा, आत्मा की परमात्मा के साथ एकता, पिंड और ब्रह्मांड की एकता, हृदयकमल या हृदयगुफा में ईश्वरीय ज्योति का दर्शन, साक्षात्कार द्वारा अनुभव, ईश्वर के प्रति गाढ़ा अनुराग, उसकी प्राप्ति के लिए आतुर साधक की साधना और आत्मा-परमात्मा के बीच स्त्री-पुरुष की प्रेम पद्धति की सर्वात्मना स्वीकृति—ऐसी कितनी ही युक्तियों, परिभाषाओं और मान्यताओं का जनता में प्रचार करते हुए सूफी संतों और कवियों ने धर्म, दर्शन और काव्य की त्रिधा शक्ति को एक में मिलाकर समाज में ऐसी नवीन प्रेरणा को जन्म दिया, जिसकी सरसता, उदारता और प्रत्यक्ष प्रभाव ने जनता पर मोहिनी सी असर डाल दिया। इन धर्म गुरुओं की बड़ी शक्ति इनकी भाषा संबंधी नीति थी। अवधी भाषा को इन्होंने खुलकर अपनाया। उसे इन्होंने 'हिंदुई' कहा है। वही इनके और जनता के बीच का माध्यम बनी। गाँवों में रहनेवाले करोड़ों हिंदू-मुसलमानों के लिए वही सुलभ साधन थी, जिसके द्वारा उनकी अक्षर से भेंट हो सकती थी। ऐतिहासिक नजरिए से निजामुद्दीन औलिया का सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। वे उदार व्यक्तित्व के धनी थे। बदायूँ में संवत् १३९३ विक्रमी में जनमे निजामुद्दीन मुसलिम समाज को

संबोधित करते हुए कहते थे कि 'ओ मुसलमानो! मैं कसम खाकर कहता हूँ कि खुदा उसी को प्यार करता है, जो उसके लिए इनसानों को और इनसानों के लिए खुदा को प्यार करते हैं!' उन्होंने मानवीय प्रेम को महान् आध्यात्मिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इस महान् सूफी संत ने जनता ही नहीं, बादशाहों का नजरिया भी बदलकर रख दिया। अकबरकालीन शेख सलीम उसी संप्रदाय में दीक्षित भक्त थे।

मुल्तान में सुहारावर्दी संप्रदाय के शेख मुहाउद्दीन जकरिया भी उस दौर में महत्त्वपूर्ण काम कर रहे थे। हमीदुहीन नागौरी उनके गुरुभाई थे। वे संगीत के गहरे मर्मज्ञ थे। उन्होंने 'तब्लिउश्मल' तथा 'लवाईह' जैसी दो उत्कृष्ट किताबें फारसी में लिखी हैं। इसमें लेखक ने हिंदू दर्शन और संगीत के प्रति गहरा आदरभाव प्रदर्शित किया है। जकरिया के शिष्य हुसैन अमीर हुसैनी ने तसव्वुफ (अंतर्ज्ञान) पर कई किताबें लिखी हैं। इस संप्रदाय के संत जहाँगश्त को मोहम्मद तुगलक भी काफी आदर देता था। उसने उन्हें शेख-उल-इस्लाम नियुक्त किया, लेकिन वे इससे मुक्त हो गए। इस संप्रदाय के प्रसिद्ध संत मुसा सुहाग ने 'सदा सुहागिन' संप्रदाय चलाया।

नवाब और बादशाह सूफी संतों के प्रभामंडल एवं जनमानस पर उनके असर को देखकर उन्हें कई प्रकार के प्रलोभन देते थे, लेकिन सूफी संत इनसे मुक्त रहते आए। फिर्दौसिया संप्रदाय के सूफी संत शेख सरफुद्दीन यह्या मनयरी (मृत्यु १४३७ विक्रमी) का सम्मान फिरोज तुगलक करता था। आज के बिहार प्रांत पर इस संप्रदाय का काफी असर पड़ा। मनेरी के दार्शनिक विचारों का संकलन 'मकतुबात' में मिलता है। कादरी संप्रदाय को शाह नियामतुल्लाह और मरहूम मोहम्मद जिलानी ने पंद्रहवीं सदी के आखिरी दौर में भारत में प्रवेश दिलाया।

सूफी संप्रदाय में नक्शबंदी संप्रदाय का काफी महत्त्व है। यह विक्रम की १७वीं सदी के आस-पास भारत में ख्वाजा बाकीबिल्लाह साहब के माध्यम से अस्तित्व में आया। इन प्रमुख संप्रदायों के अलावा कई अन्य संप्रदाय भारत में सक्रिय रहे। 'आईने अखबरी' में अबुल फजल ने १४ सूफी संप्रदाय चिह्नित किए हैं—चिश्ती, सुहरावर्दी, जैदी, इयादी, अधयी, दुबरी, हवाजी, तफूजाकरर्वी, सधती, जुनैदी, गाजरूनी, तूसी और फिरदौसी। इन संप्रदायों ने समूचे भारतवर्ष को सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरातल पर गहरे तक प्रभावित किया।

साहित्यिक धरातल पर सूफी-संत कवियों ने हिंदू-मुसलिम सीमाओं को तोड़ते हुए ऐसा महान् साहित्य रचा, जिसमें व्यक्त मानवीय मूल्य आज भी प्रासंगिक हैं। सूफी कवियों ने बिंब, प्रतीक और खासकर हिंदू धर्म के रूपकों का बेहतरीन रचनात्मक इस्तेमाल किया है। यह्या मनयरी का एक गहन प्रतीकार्थ संपन्न रूपक देखिए—

काला हंसा निरमला, बसे समुंदर तीर।
पंख पसारै बिख हरै, निरमल करे सरीर॥

शम्स बलखी स्त्री-पुरुष के रूपक के माध्यम से आत्मा-परमात्मा के संबंध उजागर कर देते हैं—

बाट भली पर साँकरी, नगर भला पर दूर।
नाँह भला पर पातला, नारी कर हिय थूर॥

आत्मा परमात्मा में सदा के लिए विलीन हो जाए; ऐसी कामना करते हुए बू अली कलंदर कहते हैं—

साजन सकारे जाएँगे, नयन मरेंगे रोय।
विधन ऐसि रैन कर, भौर कधूँ नहि होय॥

अमीर खुसरो आत्मा का परमात्मा के प्रति एकांत समर्पण का भाव व्यक्त करते हैं—

खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भये इक रंग॥

लगभग ऐसा ही निहितार्थ बाबा फरीद भी प्रस्तावित करते हैं—

साई सेवत गल गई, मास न रहिया देह।
तब लग साई सेवसाँ, जब लग हौं सो गेह॥

खल्क से नहीं, खालिक से नेह लगाने का भाव शेख फतहुल्लाह कुछ इस तरह जाहिर करते हैं—

मेरा हियरा दहदहा, जी जानै डेह जाउँ।
साग फूँक करैला खा, खालिक से नेह लगाउँ॥

उपर्युक्त काव्य-पंक्तियाँ साबित करती हैं कि सूफी संत कवियों ने भाव और भाषा भारतीय सरजमीं से ही ग्रहण किए; इतना ही नहीं, उनकी गुरु-शिष्य परंपरा भी विशुद्ध भारतीय है।

भारतीय परंपरा के अनुसार गुरु के लिए सभी शिष्य समान होते हैं लेकिन प्रत्येक शिष्य गुरु से अपनी पात्रता के अनुसार ज्ञान ग्रहण कर पाता है। सूफी भी मानते थे कि मुर्शिद यानी गुरु हरेक मुरीद यानी शिष्य को उसकी मुराद के मुताबिक ज्ञान देता है। 'हिंदी साहित्य' के संपादक धीरेंद्र वर्मा के अनुसार, हिंदी के सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानकों को पूर्व प्रचलित, परंपरित भारतीय साँचे में ही ढालना अधिक पसंद किया। उन्होंने उनकी रचना के लिए अवधी बोली का प्रयोग किया जो सर्व-साधारण के समाज में लोकप्रिय बन चुकी थी। दोहा, चौपाई इत्यादि छंदों के एक निश्चित क्रम को अपनाया, जिसका आदर्श अपभ्रंश के जैन चरित काव्यों के लिए बहुत पहले से ही स्वीकृत हो चुका था। इन कवियों ने उन कथानक-रूढ़ियों को स्थान दिया, जो प्रचलित लोककथाओं के भीतर न जाने किस काल से प्रवेश कर चुकी थी और सबसे बढ़कर उस भारतीय वातावरण को भी सुरक्षित रखने की चेष्टा की, जो सबके लिए परिचित था। इन रचनाओं के समांतर यहाँ भक्ति-काव्य का निर्माण होता रहा, शृंगार रस एवं वीर रस की कविताएँ लिखी जाती रहीं तथा बहुत से ऐसे प्रेमाख्यान भी निर्मित होते रहे, जिन्हें अन्य उपयुक्त नाम न होने के कारण हमने 'असूफी' कहकर परिचित कराया है। परंतु सूफी प्रेमाख्यानों की यह विशेषता रही कि इनके द्वारा हमें प्रेमतत्त्व के व्यापक रूप को समझ पाने में अधिक सहायता मिली और इनके कारण धर्म, संप्रदाय अथवा वर्गगत भेदभावों को दूर कर एक सर्वमान्य समाज की स्थापना के लिए प्रेरणा भी प्राप्त हुई। हिंदी साहित्य के अंतर्गत हम इन्हें इसलिए भी एक विशेष स्थान दे सकते हैं, क्योंकि इनकी रचनाओं द्वारा लोक-रंजन के साथ लोक-मंगल की भी सिद्धि हुई है।

इन कवियों ने हिंदू पर्व-त्योहारों की उत्सवधर्मिता का भरपूर आनंद उठाया है—

अम्मा मेरे बाबा को भेजो री, कि सावन आया
बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा री, कि सावन आया
अम्मा मेरे भाई को भेजो री, कि सावन आया
बेटी तेरा भाई तो बाला री, कि सावन आया
अम्मा मेरे मामू को भेजो री, कि सावन आया
बेटी तेरा मामू तो बांका री, कि सावन आया

सूफी कवियों का पारलौकिक शक्ति का लौकिक बखान विशुद्ध भारतीय है—

बहुत दिन बीते पिया को देखे,
अरे कोई जाओ, पिया को बुलाय लाओ
मैं हारी वो जीते, पिया को देखे बहुत दिन बीते।
सब चुनरिन में चुनर मोरी मैली,
क्यों चुनरी नहीं रँगते?
बहुत दिन बीते।
खुसरो निजाम के बलि बलि जइए,
क्यों दरस नहीं देते?
बहुत दिन बीते।

सूफी कवि नफरत और हिंसा के पागलपन के बीच अविचलित रहकर मानवीय प्रेम की पक्षधरता करते रहे। प्रसिद्ध सूफी कवि अमीर खुसरो का कहना था कि कव्वाली असल में प्रभु-भजनों की अनंत शृंखला, यानी काव्यावली है, इसलिए सूफियाना कलाम असल में भजन ही हैं। यही कारण है कि वहाँ लौकिक प्रेम पारलौकिक अर्थग्रहण कर लेता है। हिंदू भजनों की तरह वह भी अपने साथ बहा ले जाता है। इस उत्कृष्ट कविता में संगीत के साथ-साथ गीत, नृत्य और चित्रकला का मिश्रण है।

सूफी संतवाणी से प्रेरित महत्त्वपूर्ण सूफी साहित्य-रचनाएँ इस प्रकार हैं—

कवि	*रचना*	*समय*
१. मुल्ला दाऊद	चंदायन	हि.सं. ७७९ (१३७७ ई.)
२. शेख कुतबन	मृगावती	हि.सं. ९०९ (१५०३ ई.)
३. जायसी	पद्मावत	हि.सं. ९२७ (१५२० ई.)
४. मंझन	मधुमालती	हि.सं. ९५२ (१५४५ ई.)
५. शेख उसमान	चित्रावली	हि.सं. १०२२ (१६१३ ई.)
६. जान कवि	कनकावती	सं. १६७५ (१६१८ ई.)
७. शेख कवि	ज्ञानदीप	हि.सं. १०२६ (१६१८ ई.)
८. जान कवि	कामलता	सं. १६७८ (१६२१ ई.)
९. जान कवि	मधुकर मालती	सं. १६९१ (१६३४ ई.)
१०. जान कवि	रतनावती	सं. १६९१ (१६३४ ई.)

भक्ति के एकांत समर्पण भाव से युक्त सूफी काव्य के रचनाकार केवल मुसलिम नहीं हैं, अनेक हिंदू कवियों ने भी इसमें अपनी भागीदारी की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'सूरदास' नामक पंजाबी हिंदू सूफी कवि का उल्लेख करते हैं। आचार्य शुक्ल सूफी कवियों का महत्त्व रेखांकित करते हुए कहते हैं कि 'कबीर ने अपनी झाड़-फटकार के द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को दूर करने का जो प्रयास किया, वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करनेवाला नहीं। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है, वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के जीवन में जिस हृदयाभास का अनुभव मनुष्य कभी-कभी किया करता है, उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। कुतबन, जायसी आदि प्रेम कहानी के इन कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन दशाओं को सामने रखा, जिनका मनुष्यमात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदू हृदय और मुसलमान आमने-सामने करके अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। यह जायसी द्वारा पूरी हुई।'

हजारी प्रसाद द्विवेदी कवि ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' को पहली सूफी रचना मानते हैं। कई आलोचक सूफी काव्य-परंपरा को अभारतीय मानकर उसे हिंदी साहित्य से बेदखल करते रहे हैं। यह ठीक नहीं है। सूफी बाहर से आए जरूर थे। वे जन्मना अभारतीय बेशक रहे हों, लेकिन वे यहीं बस गए थे। उनकी भारतीयता पर शक नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे मुसलिम बादशाहों के खिलाफ भारतीय जनता के साथ खड़े मिलते हैं। वे स्थानीय शब्दावली में सामान्य जनता की बात रखते हैं।

ए-३/५०, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ०९८१८५४०१८७

कहानी

अब माँ का क्या होगा

● आभा पूर्वे

कामिनी अपने बाएँ कंधे पर भारी-भरकम बैग लटकाए और दाहिने हाथ में ब्रीफकेस लिये जब पटना जानेवाली बस में चढ़ी, तो उसका सारा शरीर थकान और दर्द से चूर-चूर हो रहा था। पीछे-पीछे बस में चढ़ी कामिनी की माँ की भी वही हालत थी। शायद उससे कहीं ज्यादा बुरी हालत। स्वाभाविक ही था। कहाँ कामिनी की उम्र चालीस वर्ष और माँ, तो कम-से-कम सत्तर वर्ष की अवश्य रही होगी। चेहरे पर झुर्रियाँ साफ-साफ नजर आ रही थीं और थकान की वजह से कुछ और ही ज्यादा दिखाई दे रही थीं।

कामिनी ने बस में अपनी सीट की तलाश शुरू कर दी और माँ शायद एक भी मिनट अपने को खड़ा रखने में असमर्थ महसूस कर सामने की ही एक खाली सीट पर एक लंबी साँस लेकर बैठ गईं। दरअसल, वह तीन दिन से लगातार घर में व्यस्त ही तो रही थीं। घर छोड़ने से पहले उन्होंने अपने एक-एक सामान को एकत्र किया था, फिर एक-एक सामान को अलमारी में, बक्से में और संदूक में बंद किया था। जिनके-जिनके पास जो-जो चीजें गई थीं, याद कर-करके उसे वापस ले आई थीं और फिर किस-किसको अपनी पुरानी चीजें दान कर गौरवान्वित होना था, वह सब भी करती रही थीं। बुढ़ापे का शरीर तो था ही, थक जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। वह तो बेटी कामिनी के यह कहने पर कि जमालपुर में रखा ही क्या है, शेष जिंदगी राजधानी के सुख-मौज में काट लेना। माँ ने वह सबकुछ कर लिया था, जो उससे किसी तरह भी संभव नहीं था और चलते वक्त कपड़े तथा अन्य सामान से ठसाठस एक बैग कंधे से लटकाए और दूसरे हाथ से कामिनी की तरह एक सूटकेस थामकर बस स्टैंड की तरफ पैदल ही चल पड़ी थीं। चार बजे सुबह ही गाड़ी खुल जाती है और फिर इतनी सवेरे मोहल्ले के आसपास किसी सवारी का मिलना कठिन ही होता है।

कुछ ही समय बीता होगा कि कामिनी माँ के पास लौटी और एक दूसरी सीट पर माँ को जमी देख झुँझला उठी, ''हद करती हो माँ, कहने को कहती हो रिटायर्ड ऑफिसर और बस-ट्रेन में तुम्हारी हालत तो एक गँवारू औरत से भी ज्यादा बुरी होती है। बिना सोचे-समझे जहाँ जी चाहा बैठ गए, चलो उठो, तेईस और चौबीस नंबर की सीट हम दोनों की है।''

माँ ने कामिनी की झुँझलाहट को साफ महसूस किया था और उसका यह व्यवहार कुछ अजीब-सा लगा, लेकिन शायद यह सोचकर कि थकान और परेशानी के कारण ही वह ऐसा व्यवहार कर गई है, माँ चुप ही रहीं। फिर माँ की आँखों में तो राजधानी के फ्लैट, राजधानी के राजमार्ग, राजधानी के होटल आदि के चित्र भी छाए हुए थे। इसी से माँ ने कामिनी की बातों को सहजता में लेते हुए बैग और अटैची को दोनों

सुपरिचित रचनाकार। सीतायण (प्रबंध-काव्य), केकरों चाँद, केन्हों चाँद (अंगिका-हिंदी), नैहरा रो ओलती आरो ऐंगन (आत्मकथा), तुलसी के काव्य में राम रो रूप आरो स्वरूप (अंगिका आलोचना), खोई हुई लड़की का खत आदि प्रकाशित।

हाथों में लिया और उन सामानों से कहीं अधिक अपनी देह को घसीटती हुई तेईस नंबर की सीट पर जाकर बैठ-सी गईं। कामिनी भी उसके बगल में जाकर इस तरह बैठी, जैसे वृक्ष से कोई भारी चीज गिरकर मिट्टी में धँसकर स्थिर हो गई हो।

सावन का महीना था। कुछ दिन पहले जमकर बारिश हुई थी। पानी के साथ बादल, फिर बादल के साथ मौसम की आर्द्रता भी बिल्कुल गायब हो गए थे। उमस वैसे भी माथे पर चढ़कर बोल रही थी। ऐसे में ड्राइवर ने जैसे ही गाड़ी खोलने की संकेत ध्वनि की, तो सभी को ऐसा ही लगा जैसे पूरी बस में एक बर्फीली हवा सरसराकर दौड़ गई हो। गाड़ी अपनी तेज रफ्तार से हॉर्न के साथ भाग रही थी और बस की खुली खिड़कियों से ठंडी-ठंडी हवा का झोंका सब की देह में आलस्य और आँखों में नींद भरने लगा था। कामिनी ने बगल में बैठी माँ को देखा तो उनकी पलकें बंद हो चुकीं थीं। उसने एक बार अपने सारे सामान को देखा कि वह सुरक्षित तो है और फिर अपनी सारी थकान को दूर कर लेने के खयाल से उसने भी अपनी पलकें बंद कर लीं। लेकिन उसके दिमाग में जैसे कुछ कौंध सा गया। उसने झटके से अपनी आँखें खोलीं और माँ को कनखी से ही बड़े गौर से देखा, जो अब तक थकान के कारण सचमुच में ही सो रही थीं। कामिनी ने इसे जान लिया था। दरअसल, माँ जब गहरी नींद में होती हैं तब वह लेटी रहें या बैठी, खर्राटे की आवाज जरूर करती हैं और यही उनकी गहरी नींद की पहचान है।

खर्राटे की आवाज सुनकर कामिनी को बेहद गुस्सा आया, बस में बैठे यात्री भला इस औरत के बारे में क्या सोच रहे होंगे? समझते होंगे, एकदम गँवार, जंगली इस वी.आई.पी. गाड़ी में सवार हो गई है। कामिनी का गुस्सा एक क्षण के लिए काफी तेज हो गया था, माँ के रहन-सहन के व्यवहार को स्मरण कर। इसके पहले भी माँ जब उसके साथ पटना गई थीं, तब वहाँ उन्होंने देसी भाषा में ही पड़ोसी से बातें करनी शुरू कर दी थीं, वह तो मैंने तुरंत घर भेज देने की धमकी दी, तो अपनी आदत में सुधार ले आईं। लेकिन ठहरी तो आखिर गाँव की ही, गँवारू आदत कैसे

जाएगी? घृणा से कामिनी की नाक सिकुड़ गई थी, लेकिन कुछ सोचकर ही वह मौन रही थी कि माँ की नींद अगर उचट गई तो?

उसने आहिस्ता से नीचे रखी अटैची उठाई और धीरे से उसे अनलॉक करते हुए एक-एक करके अंदर के सारे कागजात देखे। बड़ी तेजी के साथ। और यथास्थान पर रखे दस्तावेज को देखकर वह निश्चिंत-सी हो गई थी। उसने अटैची को धीरे से बंद किया और फिर माँ की जाँघ पर चुटकी काटती हुई खा जानेवाली आँखों से देखा, माँ ने जब हड़बड़ाकर आँखें खोलीं, तो उसके चेहरे को देखते ही वह समझ गईं कि वह जरूर ही नींद में खर्राटे ले रही होंगी, वह सँभलकर बैठ गई थीं।

कुछ देर के लिए बस में एकदम खामोशी छा गई थी, अगर खामोशी नहीं थी, तो माँ के खर्राटे लेते रहने के कारण।

बस सड़क पर सपाट भागी चली जा रही थी। आगे-पीछे एक लय में तेज आवाज करती हुई। कुछ क्षण के लिए मौन रहने के बाद कामिनी ने माँ को टोका था, 'माँ, चलते वक्त भाभी बाहर तक नहीं आई। पिताजी खैर···लेकिन भैया तो ऐसे नहीं थे।' यह कहते ही उसके चेहरे पर दु:ख की छाया सघन हो गई। और उस छाया को दूर करने के लिहाज से माँ ने कहा था, 'अच्छा ही हुआ, अपशकुन होने से बच गया।' माँ की आवाज में सचमुच में घृणा थी, लेकिन कामिनी ने कहा, 'अच्छा नहीं हुआ। लेकिन नहीं सामने आए तो इसमें उन लोगों का ही क्या दोष है। मैंने उनसे कहा ही कहाँ था कि मैं कल ही सुबह की गाड़ी से घर को रवाना हो जाऊँगी। एक बार मन में हुआ भी था कि कह दूँ, लेकिन फिर जाने क्या हुआ, नहीं कह पाई।' कामिनी ने मन-ही-मन में यह सब सोचा और अपना सिर अपनी सीट के पीछे टिका लिया। आँखें प्रयत्नपूर्वक बंद कर लीं और फिर बीते पच्चीस दिनों की सारी बातों को एक-एक कर याद करने लगी। याद क्या करने लगी थी—याद आने लगीं। तीन महीने पूर्व जब वह अपने मायके आई थी, तो इसी जमीन को लेकर किस तरह हो-हंगामा हो गया था। तब भैया-भाभी तो एकदम मौन थे। पिताजी ही कहाँ कुछ बोले थे, बोल रही थी तो बस छोटी बहन भामिनी। देवर ने भी कुछ आपत्ति नहीं उठाई थी। उठाता भी होगा तो सूने में। पत्नी को आगे कर देता होगा। हाँ, किसी भी लड़ाई में पत्नी ही सबसे अच्छा ढाल हो सकती है। मेरे पति ने ही क्या किया, ढाल ही तो बनाया। सारी लड़ाई के बीच मैं ही तो केंद्रित हो गई। स्वयं तो इस तरह साफ-सुथरे निकल गए, जैसे उनको इस जमीन से कुछ लेना-देना ही न हो। उस बार जब मेरे साथ यहाँ आए थे, तो भामिनी से किस तरह मुसकराते हुए यह कहते हुए निकल गए थे, 'भामिनी, तुम तो सबसे पहले मेरी साली हो और फिर अब तो भभज भी हो, मैं इस जमीन पर थूकता हूँ, अब तो मन का बैर मिटाओ।'

जाहिर है, इस बात से भामिनी ने ही क्या सोचा होगा—जमीन हड़पने की इच्छा दीदी की है, जेठ को झूठ-मूठ को सामने ला रही हैं। और इस बार जब मैं उनके साथ पटना लौट गई थी, तब किस कदर मुझे बच्चे की तरह फुसलाते हुए कहा था, 'अरे, तुम समझती नहीं हो कामिनी, वह तो मैंने भामिनी को वैसे ही जमीन पर थूकने की बात कह दी थी, तुम्हें मालूम भी है, उस तीन कट्ठे जमीन की कीमत आज के दिनों में क्या होगी—आठ लाख रुपए। सोचो, अगर उस जमीन को किसी तरह हम लोगों ने हासिल कर लिया, तो पाँच लाख और मिलाकर इस पटना की खास जगह पर अपना एक फ्लैट होगा। बस, माँ को किसी तरह अपने पक्ष में बनाए रखो। यह राजनीति की बात है और राजनीति में कुनीति भी नीति होती है। माँ से कहती रही हो कि मैं उनको कितना सम्मान देता हूँ। बेटे से भी बढ़कर और तुम उनकी पतोहू से भी ज्यादा बढ़कर मानती हो। माँ के मन में बस यह भय पैदा करती रहो कि वह वहाँ मरेंगी तो लाश को उठाने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। बस, उस घटना को गाहे-बगाहे याद कराती रहो कि किस तरह, जब वे कुएँ पर बाल्टी उठाते हुए गिर पड़ी थीं और बेड पर पड़ी-पड़ी भगवान् को सुमरती रही थीं, लेकिन किसी ने भी उनकी रात-दिन जगकर सेवा नहीं की और फिर सेवा की, तो उसकी कामिनी बेटी ने ही, और वह ठीक हुईं तो कामिनी बेटी से ही। बस समझो वह जमीन अपने हाथ में है और वह जमीन अपने हाथ में हुई, तो तुम मोहल्ले में किराएदारिन कहकर नहीं पुकारी जाओगी, बल्कि मकान मालकिन कही जाओगी, मकान मालकिन।' और उनकी बातों में सचमुच मुझे दम लगा था और उसी रात मैंने माँ को फिर टेलीफोन किया था। एकदम कोर्ट शैली में बातें हुई थीं। माँ ने मुझे बुलाया था और मैंने तीसरे ही रोज वहाँ पहुँचने की बात कहकर टेलीफोन रख दिया था।

कामिनी को स्मरण है कि वह जब अपने मायके पहुँची थी, तो किस तरह पूरे घर में एक खलबली मच गई थी और कुछ ही दिनों के बाद से उसने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि इस बार वह अपने घर में एक बेटी, बहन और एक भाभी बनकर नहीं आई है, कोई अज्ञात मगर निश्चित और खतरनाक रोग की तरह घर में चली आई है, और इसी कारण घर के सारे लोग उससे बचने की कोशिश करने लगे थे। बस एक माँ थीं, जो मेरे आगे-पीछे छाया की तरह इस एक महीने तक साथ रहीं। सच्चाई तो यह थी कि उस घर में मैं महीने भर में इतनी परेशान और शायद अपने से ही भयभीत रही कि किसी को उसके संबोधन से भी नहीं पुकार पाई। जैसे उस घर में सारे लोग मेरे लिए अजनबी थे और मैं सबके लिए अजनबी बन गई थी।

जैसे कोई नन्हीं बच्ची माँ के पीछे-पीछे ही लगी रहती है, बस वही हालत हो गई थी मेरी। नीचेवाला अँधेरा कमरा, जो माँ के लिए था, उसी कमरे में मुझे भी रहना होता था, माँ के साथ ही। न रोशनी, न हवा। अब

मैं सोचती, माँ सचमुच में कैसे इस कमरे में अपने जीवन के इतने साल गुजार गई होंगी। बगल से नाले और शौच की आती दुर्गंध, ओह! मैं तो महीने भर में ही तंग आ गई थी, लेकिन लोभ आदमी को क्या-क्या न सह जाने के लिए मजबूर कर देता है। मैं भी चुपचाप सह गई थी सबकुछ। माँ हमारे दु:ख से और भी दु:खित हो रही थीं और घर में सारे लोगों का क्रोध चरम पर चढ़ गया था। तब मुझे रात-दिन बस यही लगा करता कि जैसे घर के सारे लोग मेरी हर साँस पर निगरानी रख रहे हैं। आखिर क्यों नहीं रखते। मैं भी तो सही नहीं थी। कुछ इस तरह से टेलीफोन पर अपने काका से बतियाती थी, जैसे इसकी जानकारी मैं अपनी साँसों को भी नहीं देना चाहती थी। मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि अगर मैं गलत थी तो काका और काकी ने मेरे इस कदम का समर्थन क्यों किया? आखिर काका तो मेरे पिताजी का अपना खून हैं, पिताजी को भी उनसे कितना मोह है। रोज साइकिल पर जब तक उनके घर का एक चक्कर नहीं लगा आते, उनको चैन नहीं पड़ता था। उनके ऐश्वर्य और शान-शौकत की बड़ाई करते थकते नहीं थे। फिर काका ने क्यों इस बात को पिताजी से छुपा लिया। हो सकता है कोई भीतरी घात हो, जिसे पिताजी भी नहीं जानते। और माँ के नाम की यह जमीन मेरे नाम से रजिस्ट्री कराने में उन्होंने इसीलिए मदद की हो, जिससे उनका विरोध संतुष्ट हो जाए। लेकिन शायद उन्हें भी अब यह मालूम हो गया होगा कि ऐसा करके काका ने उस अजनबी जगह पर अपने खून के रिश्ते के बीच ही एक ऐसी खाई बना ली है, जिसके आर-पार खड़े हुए दोनों अब कभी नहीं मिल सकते।

अगर काका ने यह सोचा होगा कि रजिस्ट्री का काम बहुत चोरी से हुआ है, और जोकि हुआ भी था, लेकिन पिताजी से इस जगह की कोई बात छिपी नहीं रह सकती है, जो रह जाएगी। यह काका ने समझ कैसे लिया? जिस दिन एकदम चोरी-छिपे जमीन की रजिस्ट्री हुई थी, उस रात को पिताजी ने कुछ ऊँची आवाज में भामिनी से कहा था—जिसे मैं और माँ भी सुन सकूँ कि भामिनी, तुम्हें काकी ने मिठाई नहीं भेजी। आज तो तुम्हारे काका के यहाँ पचास किलो लड्डू बाँटे गए हैं'''और फिर इसके बाद घर में जो एक उदास सन्नाटा और चुप्पी फैल गई थी, उसमें मेरा रहना एकदम से संभव नहीं रह गया था। मैंने माँ से कहा था—'माँ तुम यहाँ रहना चाहो तो रह सकती हो, लेकिन मैं एक पल के लिए भी नहीं रह सकती।' तब माँ ने अपनी आँखों में एक और भारी भय को भरते हुए कहा था, 'यहाँ मैं ही कैसे रह सकती हूँ, मेरा तो अब जो कुछ है, बस तुम हो, और उसी क्षण माँ ने अपने सारे सामान को जहाँ-तहाँ से बटोरा था। उन्हें बक्से और संदूकों में बंद किया था और शाम के समय पूजा के बाद कान में कहा था, 'बेटी, हम दोनों एकदम मुँह अँधेरे यहाँ से निकल जाएँगे।' यह बात कल की ही तो है। रात को माँ का चेहरा कितना रुआँसा हो गया था, शायद यह सोचकर कि इस घर से हमेशा-हमेशा के लिए संबंध टूट रहा है। बच्चों से, पति से, माँ यह भी सोच रही होगी कि क्या हुआ हम पति-पत्नी आपस में लड़ते ही तो थे, लेकिन आमने-सामने रहकर ही तो। लेकिन आज से मेरा वह भी सुख हमेशा के लिए छिन रहा है। मैंने माँ को अपने आँचल से आँख के कोरों को छुपाकर पोंछते हुए देखा था।

कामिनी ने अपनी गरदन थोड़ी सी बाईं ओर की थी, माँ को देखने के लिए। उसे लगा था कि शायद यह सब हो जाने में कहीं से वही सबसे बड़ी अपराधिनी है। माँ को पिताजी से हमेशा के लिए अलग कर देने का अपराध उसी के माथे पर है, इसी से उसने चोर निगाहों से ही माँ की ओर देखा, माँ का सिर अब खिड़की के शीशे से सटा हुआ था। हाँ, खर्राटे की आवाज नहीं हो रही थी, लेकिन नींद जरूर आ गई थी। कामिनी ने माँ के चेहरे को बड़े गौर से देखा था। उसे लगा था, जैसे रातभर में ही उसके चेहरे पर झुर्रियों का जंगल उग आया हो। वह एक क्षण के लिए भीतर से सिहर गई। फिर शायद अपने को संतुलित करने के खयाल से ही वह सीधी होकर बैठ गई और खिड़की के बाहर की ओर देखा, 'गाड़ी कहाँ पर है?' कामिनी ने बगल की सीट पर बैठी महिला से पूछा।

उस महिला ने उत्तर में बताया कि बस अभी सिटी के आस-पास है।

'अब तो हम लोग पटना आ पहुँचे', कामिनी ने अपने आपसे ही सवाल किया था और उसने माँ को आहिस्ता से जगाते हुए कहा था—'माँ, जागो, हम लोग पटना पहुँच रहे हैं।' माँ इस तरह से अचकचाकर सावधान हो गई थीं, जैसे कोई बहुत बड़ी अनहोनी बात हो गई हो और फिर सीट पर ही बैठे-बैठे अपने सारे सामान को देखा, एकाध को अपने नजदीक भी कर लिया, जैसे उतरने-चढ़ने की आपाधापी में कोई उनके सामान को इधर-उधर न कर दे।

बस लगभग दस बजे पटना पहुँची। कामिनी ने चाहा कि वह स्वयं ही बैग और ब्रीफकेस को अपने हाथों में उठा ले, लेकिन माँ ने उसे ऐसा करने नहीं दिया और यह कहती हुई कि ''भारी बोझ है बेटी, अकेले नहीं उठा पाओगी।'' और उसने अपनी अब तक टूटती देह के बावजूद भारी बैग को अपने दोनों हाथ से उठाकर कमर पर रख लिया। कामिनी को विश्वास था कि उसका पति देवव्रत बडुवा अवश्य ही उसे लेने के लिए बस स्टैंड आया होगा, उसने घर से निकलने के दिन ही अपने पति से कह भी दिया था कि वह किसी भी दिन इस गाड़ी से चलकर पटना आ सकती है।

इसी से रोजाना अवश्य ही वह गाड़ी को देख आया करे। लेकिन कामिनी ने जब देवव्रत को वहाँ नहीं देखा, तो जैसे उसका सारा बचा-खुचा उत्साह और उसकी खुशी भी शेष हो गई थी। उसने एक ऑटो रिक्शा किया, उसमें अपना सामान लादने के बाद माँ को एक ओर बिठाया और जब गाड़ी चली तो कामिनी का एक मन हुआ जैसे वह ऑटो ड्राइवर से कहे कि जमालपुर तक फिर लौटा ले जाने का क्या भाड़ा लेगा? उसने मन-ही-मन सोचा, कितना लेगा, ज्यादा-से-ज्यादा हजार रुपए! वह यह भी दे देगी। लेकिन देवव्रत के द्वारा उसकी की गई यह उपेक्षा उसे सहन नहीं हो सकती। लेकिन तभी उसे इसका स्मरण हो आया था कि किस तरह उसके मायके के पिछवाड़े में ही उस औरत का गला टीपकर फेंक दिया गया था। दूसरे दिन अखबार में छपा था कि कुछ गुंडों ने शाम के समय सड़क से उसे खींच लिया था और उसके साथ अनैतिक

कर्म करने के बाद उसका गला दबा दिया था। इस घटना का स्मरण होते ही कामिनी सिर से पाँव तक सिहर उठी। सुबह-सुबह ही खबर फैल गई थी। उसे एक क्षण के लिए उस दिन के उजाले में ही लगा था कि कहीं कोई उसका पीछा कर रहा है और उस समय तो वह सचमुच में एकबारगी चौंक ही उठी थी, जब ड्राइवर ने गाड़ी रोककर उससे पूछा था, 'कौन से नंबर के फ्लैट पर पहुँचना होगा बीवीजी।' कामिनी का सारा बदन ही पसीने से चुहचुहा आया था। माँ ने यह सब नहीं देखा था। उसने अपने पसीने को साड़ी के छोर से पोंछा था और सिर्फ इतना भर कहा था, ग्यारह नंबर।'

ऑटो ग्यारह नंबर पर रुका। नौकर ने मालकिन को देखा और दौड़कर सारा सामान लेकर ऊपर चला गया और कामिनी ने माँ को सहारा दिया और उसके साथ ही लिफ्ट से अपने क्वार्टर में पहुँच गई। देवव्रत द्वार पर खड़ा अपनी पत्नी कामिनी का बेसब्री से इंतजार कर रहा था और जब कामिनी को माँ के साथ देखा तो उसे सारी बातें समझते देर न लगी। देवव्रत के चेहरे पर अचानक ही अनदेखी खुशियों की चमक लहरा गई थी। कामिनी के मन में कुछ उठ रहा था—वह कुछ कहना चाह रही थी। लेकिन देवव्रत जैसे कुछ भी सुनने को तैयार न था। उसने अपने दोनों हाथों से कामिनी की बाँहों को पकड़ते हुए कहा, ''तुम कुछ नहीं बोलो, तुम जो कुछ भी कहना चाहती हो, मैं वह सब जानता हूँ, डार्लिंग! आज तुमने अगर मेरा साथ नहीं दिया होता, तो मैं जिंदगी की इतनी बड़ी बाजी बिना किसी परिश्रम के जीत भी नहीं सकता था। जीतने की बात तक नहीं सोच सकता था। तुम नाराज तो नहीं हो कि तुम्हें बस स्टैंड से यहाँ तक अकेले चलकर आना पड़ा। दरअसल डार्लिंग, जबसे तुम माँ के पास गई हो, तब से ही मैं उस मुंबई वाले फ्लैट को खरीदने के चक्कर में दिन-रात व्यस्त रहा और तुम्हारे आने से दस मिनट पहले ही गोवर्धन जालान ने मुझे छोड़ा था। लेकिन तुम्हें यह जानकर बेहद खुशी होगी कि फ्लैट अब हम दोनों को नि:संदेह मिल जाएगा। हम रजिस्ट्री की हुई जमीन को पाँच-छह रोज के अंदर ही बेच देंगे। पाँच-छह लाख तो मिल ही जाएँगे और फिर अपनी कमाई की रकम है, पंद्रह रोज के अंदर मुंबईवाला फ्लैट ले ही लेंगे। फ्लैट में दो कमरे हैं, किचन-बाथरूम अलग से। हम लोगों को और चाहिए क्या? एक में हम दोनों और एक में हमारे बच्चे।''

''लेकिन माँ का क्या होगा?'' कामिनी ने अनजाने भय से भयभीत होते हुए पूछा, और इस पर देवव्रत ने उतनी ही उपेक्षा और सहजता से कहा था, ''डार्लिंग, तुम भी कभी-कभी अपनी माँ की तरह बन जाती हो, एकदम गँवार किस्म की औरत। भला माँ हम लोगों के साथ मुंबई में क्या करेंगी। अब तो उनकी उम्र अपने पोते, अपनी बहू और जैसे भी हो पति के साथ रहने के लिए है, यही उनका सुख भी है और तुम्हीं कहो, हम लोग उनकी उम्र का यह सुख उनसे क्यों छीनें?''

''लेकिन···''

''ये लेकिन-वेकिन का झमेला छोड़ो। मैं अपनी कार से उन्हें जमालपुर भेज दूँगा। नौकर साथ में जाएगा। कोई तकलीफ नहीं होगी। और तुम्हें यह बहुत बुरा लगा तो स्वयं मैं पहुँचा दूँगा। लेकिन सच पूछो, तो इस छोटी-मोटी बात के लिए मुझे एकदम फुरसत नहीं है। अब तुम्हारा एक काम और बाकी रह गया है, जिस तरह माँ को अपने पक्ष में करके उनकी जमीन को अपने नाम करवाया है, अब किसी तरह उन्हें राजी कर अपने घर जाने के लिए भी तैयार कर दो। मैं आज के ही आज प्लेन से जालान साहब के साथ मुंबई निकल जाऊँगा।'' इतना कह देवव्रत बाहर निकल गया था।

माँ अब भी बाहरवाले कमरे में बैठी अपने बैग से एक-एक करके उन चीजों को बाहर कर रही थीं, जिसे वह अपने घर से जैसे-तैसे समेटकर लाई थीं। कामिनी बहुत थके-थके पाँव से माँ के करीब आई और बाहर निकाले गए सामानों को पुन: एक-एक कर माँ के बैग में रखने लगी। यह कहती हुई, ''माँ सामान को इतनी जल्द बाहर निकालने की क्या जरूरत है, अभी इसे बैग में ही रहने दो न। उठो, थक गई होगी, पहले फ्रेश तो हो लो।''

माँ ने अपनी आँखों में अपार ममता भरकर कामिनी को देखा, पर कामिनी माँ को बिना देखे ही उठी और अपने बेडरूम में आकर निढाल-सी होकर बिस्तर पर गिर गई।

शरतचंद्र पथ, मशाकचक
भागलपुर-८१२००१ (बिहार)
दूरभाष : ०९६६७२०४९९८

इस अंक के चित्रकार

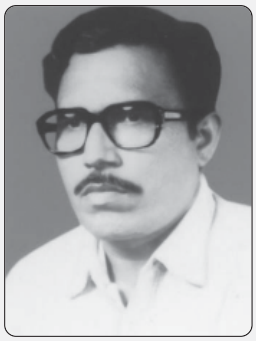

राजेंद्र परदेशी

सुपरिचित रचनाकार एवं चित्रकार। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में रचना-कर्म। 'हताश होने से पहले' (कविता-संग्रह), 'भोजपुरी लोककथाएँ', 'दूर होता गाँव' (लघुकथा-संग्रह), 'शब्दों के संधान' (हाइकु-संग्रह), 'शब्द शिल्पियों के सान्निध्य में' (साक्षात्कार-संग्रह) तथा रेखांकन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित हो रहे हैं।

संपर्क : भारतीय पब्लिक अकादमी,
चांदन रोड, फरीदी नगर, लखनऊ-२२६०१५
दूरभाष : ०९४१५०४५५८४

उपन्यास-अंश

हमारे हिस्से की छत

● **अश्विनी कुमार दुबे**

सुपरिचित व्यंग्य लेखक एवं उपन्यासकार। 'घूँघट के पट खोल', 'शहर बंद है', 'अटैची संस्कृति', 'अपने-अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तसवीर', 'कदंब का पेड़' (व्यंग्य-संग्रह), 'जाने-अनजाने दुःख' (उपन्यास)। उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतेंदु पुरस्कार, अखिल भारतीय अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्राप्त।

छह महीने होने को आए और राजधानी स्थित कार्यालय से प्रभाकरजी की लेखा स्लिप सुधरकर नहीं आई। उसके सही हुए बिना वे अपने एकाउंट से पर्याप्त राशि नहीं निकाल सकते। इसी बीच उन्होंने उच्च कार्यालय को कई स्मरण-पत्र भी लिखे, परंतु कहीं कुछ नहीं हुआ, मानो ऊपर कोई डाक पढ़ी ही नहीं जाती।

एक दिन जिला कार्यालय के बड़े बाबू साहूजी से प्रभाकरजी ने अपनी परेशानी बताई। प्लॉट खरीदने की विभागीय अनुमति साहूजी ने ही दिलाई थी। प्रभाकरजी से उनका परिचय हो गया था। पहले तो साहूजी बोले, ''आप जी.पी.एफ. से पैसे क्यों निकलवाते हैं? आपके पास पैसों की भला क्या कमी! आपके दोनों बेटे बढ़िया कमाते हैं। आप भी अभी नौकरी में हैं। कुछ वर्षों तक आप सर्वशिक्षा अभियान में भी रहे, वहाँ तो अवश्य आपने बहुत पैसे कमाए होंगे। खर्च आपके कुछ हैं नहीं, तब जमा पूँजी निकालिए न, बना डालिए उसी से शानदार भवन।''

''नहीं साहूजी, मेरे पास कोई जमा पूँजी नहीं है। वेतन के अलावा दो-चार ट्यूशन करके ही मैंने कुछ रुपए कमाए होंगे। इसके अलावा मेरी आय के कोई स्रोत नहीं रहे और न हैं। रही बेटों की बात, सो उनके अपने खर्चे हैं। उनसे क्या माँगना।'' प्रभाकरजी ने दुःखी मन से कहा।

''आपकी बात पर भरोसा तो नहीं होता, परंतु आपको परेशान देखकर चलो, आपकी बात मान ही लेते हैं। वहाँ राजधानी के बड़े कार्यालय में अपना एक परिचित है। आप उसके पास अपने पत्राचार के सब कागज लेकर चले जाओ। मैं फोन से उसे बोल दूँगा कि प्रभाकरजी अपने ही आदमी हैं। जो फीस माँगे, चुपचाप उसे दे देना। आपका काम तुरंत हो जाएगा।'' साहूजी ने सुझाव दिया।

राजधानी वाले बाबू का नाम-पता लेकर प्रभाकरजी स्कूल आ गए। आज उनका पढ़ाने में मन नहीं लगा। वे रह-रहकर सोचते रहे कि आज अपनी तनख्वाह का पैसा निकालने में कितनी तकलीफ हो रही है। अपना पैसा निकलवाने के लिए भी फीस देनी पड़ेगी, तब वह पैसा निकल पाएगा। अभी पैसा निकलवाना तो दूर, उसका एकाउंट सुधरवाने की बात है, जो छह महीने से नहीं सुधर पा रहा है। पीरियड खत्म होने के बाद वे अपने स्कूल के स्थापना बाबू से मिले और उनसे अपना दुखड़ा बताने लगे।

स्थापना बाबू ने छूटते ही कहा, ''एक आपका एकाउंट गड़बड़ नहीं है, यहाँ लगभग सब लोगों का एकाउंट गड़बड़ है। यह गड़बड़ी जान-बूझकर की जाती है। आप लोग समय-समय पर ऊपरवालों से मिलते रहें, इसलिए ये उपाय खोजे गए हैं।'' इतना कहकर वे हो-हो करके हँसने लगे, जैसे यह वेदना की नहीं, हँसने की बात है। प्रभाकरजी वहाँ से उठकर स्टाफ-रूम में आ गए। वहाँ पाठकजी को देखकर उन्हें संतोष हुआ। वे उनके परम हितैषी हैं। सच्ची सलाह देते हैं, उसमें कोई लाग-लपेट नहीं होता। उन्होंने पाठकजी को सारी कहानी बताई।

पाठकजी सारी बातें सुनकर बोले, ''सचमुच यह बात ठीक नहीं है कि अपनी एकाउंट स्लिप सुधरवाने के लिए राजधानी के चक्कर लगाते हुए वहाँ के बाबुओं को उपकृत किया जाए। स्टाफ में कई लोगों के साथ ऐसा हुआ है। किसी ने एजेंट के माध्यम से स्लिप सुधरवाई। कोई खुद राजधानी गया। किसी ने आपकी तरह सिर्फ पत्राचार किया और स्लिप सुधरकर आ गई। समझ में नहीं आता कि यह क्या चक्कर है। फिलहाल आप एक आवेदन दिल्ली स्थित उनके हेड ऑफिस को लिखो और उसकी प्रतिलिपि इन्हें भेजो। शायद ऊपरवालों के कानों में जूँ रेंगे।''

''छह महीने हो गए प्लॉट खरीदे। पैसे मिलें तो मकान का काम शुरू किया जाए।'' प्रभाकरजी ने आह भरी।

''पैसे तो देर-सबेर मिल ही जाएँगे। सबसे पहले आप नगरपालिका से अधिकृत एक इंजीनियर को पकड़ो और उससे अपने मकान का नक्शा बनवाओ। फिर उस नक्शे के अनुसार एस्टीमेट बनवाकर नगर-पालिका से मकान बनाने की स्वीकृति प्राप्त करो, तब कहीं जाकर प्लॉट पर काम शुरू करने की बात सोचो।'' पाठकजी ने गुरु-गंभीर शैली में प्रभाकरजी को समझाया।

प्रभाकरजी चौंके, सचमुच यह बात तो उन्होंने अब तक सोची ही नहीं थी। प्लॉट खरीदने के बाद उसपर मकान बनाने के लिए नगर-पालिका से नक्शा भी स्वीकृत कराना पड़ता है। निर्माण कार्य कराने की वहाँ से मंजूरी लेनी पड़ती है। पाठकजी की बात ने जैसे उन्हें सोते से जगाया। वे तो यह मान बैठे थे कि प्लॉट खरीदा, पैसों का इंतजाम किया और निर्माण कार्य चालू। अब आज ही वे नगरपालिका से अधिकृत इंजीनियर की तलाश करेंगे।

शाम को उनके मकान मालिक ने ही उन्हें इंजीनियर रवि शर्मा का नाम-पता बता दिया। वे अपनी रजिस्ट्री के कागजात लेकर उसके पास

पहुँचे। उसने प्रभाकरजी से सिर्फ प्लॉट का साइज पूछा और तीन-चार प्रकार के बने-बनाए नक्शे निकालकर प्रभाकरजी को दिखा दिए।

प्रभाकरजी उन नक्शों को गौर से देखकर बोले, ''हमें अपना घर अपने अनुसार बनवाना है। आप हमारी इच्छानुसार जैसा हम चाहते हैं, वैसा एक नक्शा बना दें।''

इंजीनियर शर्माजी ने शांतिपूर्वक प्रभाकरजी को समझाया, ''अभी तो आपको सिर्फ नगरपालिका में नक्शा पास करवाना है और निर्माण कार्य के लिए मंजूरी लेनी है। आवेदन के साथ इसमें से कोई एक नक्शा लगा दें, फिर बनाते समय उसमें आप कोई भी फेरबदल कर लेना।''

प्रभाकरजी को ऐसा करने में संकोच हुआ। उन्हें लगा कि अभी हम कोई भी नक्शा लगाकर नगरपालिका से मंजूरी लें, बाद में कोई परेशानी न हो, इसलिए पहले पूरी तरह यह पक्का कर लेना ठीक है कि हमें मकान कैसा बनाना है।

उन्होंने घर आकर शोभा से सलाह ली कि घर कैसा बनवाना चाहिए। इस बीच मोहल्ले में सबको मालूम हो गया था कि प्रभाकरजी ने उधर शहर के छोर पर मालवीय नगर में एक प्लॉट खरीद लिया है। अब वे वहाँ मकान बनवाने जा रहे हैं। पड़ोस की महिलाओं ने शोभा के पास तरह-तरह के सुझाव पहुँचाए थे। एक दिन सामने रहनेवाले चौबेजी की मिसेज आकर बोलीं, ''बहनजी, सुना है, आप अपना मकान बनवा रही हैं। मेरा तो कहना है बहनजी, रसोईघर अच्छा बड़ा बनवाइएगा। लोगबाग मकान तो अच्छा-खासा बड़ा बनाते हैं, परंतु किचन छोटा सा, जिसमें ठीक से खड़े होते तक न बने। काम तो हम लोगों को किचन में करना पड़ता है, छोटे से किचन की परेशानी ये पुरुष क्या जानें। इसलिए बहनजी, आप तो अच्छा बड़ा सा किचन बनवाइएगा, जिसमें खूब सारी अलमारी हों। लंबा सा प्लेटफॉर्म हो और पास में सिंक हो बरतन धोने के लिए। पीने का पानी भरने के लिए नल का कनेक्शन भी सीधे किचन में ही होना चाहिए। लोग आँगन में नल लगवा देते हैं। अब पीने का पानी किचन से बाहर जाकर आँगन से भरकर लाओ। पानी से भरे हुए बड़े बरतन उठाने में कमर दुखने लगती है। बहनजी, आप तो किचन अपने सामने अपनी पसंद से बनवाइएगा।''

शोभा ने मिसेज चौबे की बातों की हाँ-में-हाँ मिलाई और सोचा यह कहती तो ठीक हैं। अभी मकान बनना तो शुरू हो, फिर देखेंगे कहाँ क्या बनाना है।

मोड़ पर खरेजी का मकान है। खरेजी एक्साइज इंस्पेक्टर हैं। उनकी पत्नी रंजना बहुत मिलनसार हैं। शोभा का उनके यहाँ आना-जाना है। एक दिन रंजना दु:खी मन से बोली, ''बहनजी, हमने आपका प्लॉट तो नहीं देखा। प्रभाकरजी पढ़े-लिखे हैं, समझदार हैं। उन्होंने सब बातें सोच-समझकर ही प्लॉट लिया होगा। हमारा तो बस इतना ही कहना है कि मकान दक्षिणमुखी नहीं होना चाहिए। दस साल पहले हमने यह बना-बनाया मकान इसका दोष देखे बिना खरीद लिया। इसका द्वार दक्षिण मुखी है। जबसे हम लोग इसमें आए, कुछ-न-कुछ परेशानी लगी ही रहती है। यहाँ आने के बाद से मेरी तबीयत लगातार खराब रहती है। खरेजी भी अपनी नौकरी में परेशान रहते हैं। कहते हैं, अब पहले जैसी कमाई नहीं होती। इस दक्षिणमुखी मकान में रहते हुए बहुत आर्थिक तंगी झेलनी पड़ रही है। कोई अच्छा ग्राहक मिले तो हम लोग इसे बेचकर कहीं और प्लॉट लेकर नया मकान बनवा लें। लोग बताते हैं कि इसके पहलेवाले मकान मालिक भी इसमें रहते हुए परेशान रहे। लड़कों के पास झाँसी में शिफ्ट होने का तो एक बहाना था। दक्षिणमुखी मकान होने के कारण उन्होंने इसे बेचा। बहनजी, आप भी इस बात का जरूर खयाल करिएगा कि मकान दक्षिणमुखी कभी न हो।''

मिसेज खरे की बात शोभा की समझ में बिल्कुल नहीं आई। शहर में सैकड़ों दक्षिणमुखी मकान हैं, क्या उसमें रहनेवाले सब लोग परेशान हैं। यदि सचमुच दक्षिणमुखी मकान ही आदमी की परेशानी का कारण होते हैं तो इस तरह के मकान बनाए जाने पूरी तरह बंद हो जाने चाहिए। कितने सरकारी मकान, स्कूल, अस्पताल और आलीशान भवन इस शहर में दक्षिणमुखी बने हैं। क्या उनमें रहने-बसनेवाले सभी लोग खरे परिवार की तरह परेशान रहते होंगे। यह दक्षिणमुखी वाली बात सरासर अंधविश्वास है। फिर अगले ही क्षण शोभा ने यह सोचा कि कितनी मुश्किलों के बाद तो हम लोग एक घर बनाने की सोच पा रहे हैं। आदमी घर बनाता है, उसमें सुखपूर्वक रहने के लिए। कहीं किसी कारण से उसकी सुख-शांति में बाधा आए, यह बात ठीक नहीं है। बुढ़ापे में हम लोग किसी कारण से कोई नई मुसीबत नहीं झेलना चाहते। हम लोगों ने जीवन में बहुत परेशानियाँ उठाई हैं। पेट काट-काटकर हम लोगों ने बच्चों को कैसे पढ़ाया-लिखाया, हम ही जानते हैं। मकान बनाते समय उसका द्वार किसी ओर दिशा में बनाएँ तो क्या हर्ज है। माना कि दक्षिणमुखी मकान के कारण किसी के जीवन में परेशानी आने की बात जँचती नहीं, परंतु यदि हम सुविधापूर्वक किसी और दिशा में गृहद्वार बना सकते हैं तो क्या हर्ज है। शोभा ने मिसेज खरे से कुछ कहा तो नहीं, परंतु उनके दिमाग में उथल-पुथल चलती रही।

मोहल्ले में महिलाएँ जब भी मिलती-जुलतीं और शोभा उनके बीच होती तो उनके बननेवाले मकान पर ही तरह-तरह की चर्चाएँ होतीं। सुझाव देने में क्या लगता है। कोई कहता—शोभा बहन, आँगन बड़ा बनाना भले ही कमरे छोटे रह जाएँ। कोई कहता—दीदी, बैठक अच्छी होनी चाहिए। उसी से घर की शान है। कोई मेहमान घर में आए, बैठे तो घर की तारीफ करता रह जाए। शोभा सबकी बातें सुनती और मुसकराती रहती। उसके दिमाग में तो रह-रहकर मिसेज खरे की बात कौंधती रहती कि बहनजी जब से हम लोग इस दक्षिणमुखी मकान में आए हैं, कुछ-न-कुछ परेशानी लगी ही रहती है।

प्रभाकरजी ने जब शोभा से घर के नक्शे के विषय में विचार-विमर्श करना चाहा तब शोभा तुरंत बोली, ''देखो, नक्शा कैसा भी बनाओ हमें तो सिर्फ एक ही बात कहनी है कि मकान दक्षिणमुखी नहीं होना चाहिए बस! और हमें कुछ नहीं कहना।''

शोभा की बात सुनकर प्रभाकरजी हँसने लगे। उन्होंने यों ही पूछा, ''ये अंधविश्वास भरी बातें तुम कब से करने लगीं? हम लोग पढ़े-लिखे

हैं। पंडित जरूर हैं, परंतु पोंगा पंडित कतई नहीं।''

पति के सामने कभी जिद न करनेवाली शोभा ने स्पष्ट कहा, ''इस मामले में आप मेरी बात मानो। हमें उस मकान में अपना बुढ़ापा काटना है। कभी कोई दुखता-पिराता होगा तो मन में लगेगा कि मकान दक्षिण-मुखी है, इस कारण से ऐसा है। हालाँकि मुझे मालूम है कि किसी भी परेशानी का संबंध किसी दिशा विशेष से नहीं होता; परंतु मन में कोई संदेह क्यों रह जाए।''

प्रभाकरजी असमंजस में पड़ गए। शोभा ने कभी उनकी कोई बात नहीं टाली। अब उसकी इच्छा है कि मकान दक्षिणमुखी नहीं होना चाहिए। उन्हें समझते देर न लगी कि किसी ने शोभा के मन में यह बात भर दी है, इसलिए उसका मन डगमगा गया। कोई कुछ न कहे। कहीं से भी हमें कुछ भी मालूम न हो कि मकान हमें किस दिशा में बनाना है तो अपनी मरजी से जैसा चाहो वैसा बना लो। मन में किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं आता। अब किसी ने संदेह का बीज मन में बो दिया तो खटका तो लगा ही रहेगा। प्रभाकरजी अखबार में कभी राशिफल नहीं पढ़ते। उन्होंने शोभा को भी राशिफल पढ़ते नहीं देखा। अच्छा राशिफल हुआ तो ठीक। अच्छा न हुआ तो मन में व्यर्थ की कुशंकाएँ आने लगती हैं। अब जो होना है, सो होगा। हर परिस्थिति के लिए आदमी को हर वक्त तैयार रहना चाहिए। एक बार प्रभाकरजी ने शोभा को मनाने की फिर कोशिश की, ''किसी दिशा विशेष में मकान का द्वार होने से कुछ नहीं होता। ये व्यर्थ की बातें हैं। अपना प्लॉट किनारे का है। दक्षिण की तरफ मुख्य द्वार रखेंगे तो प्लॉट की गहराई ज्यादा मिलेगी, जिसमें भीतर तक सुविधाजनक मकान बन जाएगा। मुख्य द्वार यदि पूर्व की ओर रखते हैं तो सामने चौड़ाई चालीस फीट रहेगी और गहराई पैंतीस फीट, इससे भीतर की तरफ निर्माण कार्य के लिए जगह बहुत कम मिलेगी।'' कागज पर लकीरें खींचकर प्रभाकरजी ने शोभा को दिखाईं।

शोभा ने फिर अपनी बात दोहराई, ''आपकी बात सोलहों आने सच है, परंतु मेरा मन शांत कैसे हो? हमें शांति और सुख चाहिए। बहुत ज्यादा अड़चन न हो तो आप सामने की तरफ चालीस फीट वाली लाइन में ही मुख्य द्वार बनवाओ। वही ठीक रहेगा।''

प्रभाकरजी को लगा कि इस बात पर शोभा अब कोई समझौता नहीं करनेवाली। किनारे की बजाय यदि बीच में कहीं प्लॉट होता तो प्रभाकरजी शोभा को और समझाते। फिर किसी-न-किसी प्रकार वे उसे अपनी शर्तों से सहमत करा लेते। प्लॉट किनारे का है। मुख्य द्वार की दिशा बदलने से सिर्फ प्लॉट की गहराई कम हो रही थी। सामने चालीस फीटवाली लाइन में यदि मुख्य द्वार बनेगा, तो मकान बहुत बड़ा दिखेगा, परंतु भीतर उसमें जगह कम रहेगी। कागज पर लकीरें खींचकर उन्होंने पहले मुख्य द्वार बनाया। ठीक उसके बगल से बीचोबीच ऊपर जाने के लिए सीढ़ियों की जगह छोड़ी। छत पर जाने के लिए वे सीढ़ियाँ आँगन में बनाते, परंतु पीछे जगह ही नहीं बच रही थी। अब सीढ़ी और मुख्य द्वार की जगह छोड़कर दोनों ओर जो जगह बची, उसमें उन्होंने दो-दो कमरों के खाँचे खींच दिए। और पीछे किचन और लेट्रिन-बाथरूम के लिए थोड़ी-थोड़ी जगह निकाल दी। इस प्रकार एक रफ-सा नक्शा बनाकर वे बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने उत्साहपूर्वक शोभा को दिखाया। शोभा ने उस कागज पर उचटती हुई निगाह डालकर इतना भर कहा, ''मुझे और कुछ नहीं देखना, बस मेरा एकमात्र सुझाव है कि मकान का मुख्य द्वार दक्षिण दिशा में न रखते हुए किसी भी दिशा की ओर कर दिया जाए।''

''मैंने तुम्हारी यह बात मान ली है, परंतु आगे फिर मिलने-जुलनेवाले या पड़ोसी कोई और विचार तुम्हारे मन में न डाल दें, जैसे किचन इस दिशा में होनी चाहिए। लेट्रिन-बाथरूम की वह दिशा गलत है। पानी इस कोण पर होना चाहिए। सीढ़ियाँ आगे से क्यों बनाईं इत्यादि, तब?'' प्रभाकरजी ने शंका व्यक्त की।

''अब मैं किसी की एक न सुनूँगी। किसी से मकान के बाबत बात ही नहीं करूँगी। लोग खुद बात में से बात निकाल लेते हैं। मैंने किसी से कुछ पूछा थोड़े ही था। लोग यों ही अपनी पसंद-ना पसंद हमें बताते रहते हैं। आप तो अपने अनुसार, जैसा आप ठीक समझें, नक्शा बनवाकर काम शुरू करवाओ। मुझे अब कुछ नहीं कहना।'' शोभा ने प्रभाकरजी को आश्वस्त किया। अब निश्चिंत होकर प्रभाकरजी ने उस कागज पर खींची गई लाइनों को अंतिम रूप दिया और सीधे पाठकजी के पास पहुँचे। वहाँ उनके शिक्षक मित्र सिन्हाजी भी बैठे हुए थे। प्रभाकरजी ने खुशी-खुशी अपना कागज फैलाकर दोनों को दिखाया।

नक्शा देखकर सिन्हाजी बोले, ''ठीक है प्रभाकरजी। आपकी आवश्यकता के अनुसार इतना पर्याप्त है, परंतु गांधी चौक पर एक आर्किटेक्ट का ऑफिस है, वहाँ भवन के नक्शे बनाए जाते हैं। उनके यहाँ एक्सपर्ट हैं। वे हमसे ज्यादा जानकार हैं। आप वहाँ भी सलाह ले लो। ठीक रहेगा।''

''हाँ, सही कहते हैं आप। विषय के जानकार लोगों से ही सलाह लेनी चाहिए।'' पाठकजी ने सहमति जताई।

प्रभाकरजी अपने द्वारा बनाए इस रफ नक्शे से पूरी तरह संतुष्ट थे। अब उन्हें और किसी से सलाह लेने की आवश्यकता महसूस नहीं हो रही थी। परंतु सिन्हाजी और पाठकजी का अभिमत था कि जानकार लोगों

''अब मैं किसी की एक न सुनूँगी। किसी से मकान के बाबत बात ही नहीं करूँगी। लोग खुद बात में से बात निकाल लेते हैं। मैंने किसी से कुछ पूछा थोड़े ही था। लोग यों ही अपनी पसंद-ना पसंद हमें बताते रहते हैं। आप तो अपने अनुसार, जैसा आप ठीक समझें, नक्शा बनवाकर काम शुरू करवाओ। मुझे अब कुछ नहीं कहना।'' शोभा ने प्रभाकरजी को आश्वस्त किया। अब निश्चिंत होकर प्रभाकरजी ने उस कागज पर खींची गई लाइनों को अंतिम रूप दिया और सीधे पाठकजी के पास पहुँचे। वहाँ उनके शिक्षक मित्र सिन्हाजी भी बैठे हुए थे। प्रभाकरजी ने खुशी-खुशी अपना कागज फैलाकर दोनों को दिखाया।

की भी राय ले ली जाए, तो चलो, उनसे भी सलाह ले लेते हैं।

पाठकजी को लेकर प्रभाकर आर्किटेक्ट के दफ्तर में पहुँचे। नक्शा देखते ही उनके इंजीनियर ने कहा, ''यह भी कोई नक्शा है। मकान का नक्शा कहीं ऐसे बनता है!''

''हमें मालूम है कि ऐसे नहीं बनता, इसीलिए तो आपके पास सलाह लेने आए हैं।'' पाठकजी ने जवाब दिया।

''आपको कितना बड़ा मकान बनवाना है—सिंगल स्टोरी कि डबल स्टोरी? आपका क्या बजट है? आपकी क्या-क्या रिक्वायरमेंट हैं। ये सब विस्तार से आप बताएँ, तब उसी अनुसार हम आपका नक्शा बना देंगे। इसमें तो आपने रेल की दो बोगियाँ बना दीं, ऐसे थोड़े ही मकान बनते हैं। दरवाजे के बगल से सीढ़ियाँ नहीं चलेंगी। फिर ये पैंतीस फीट वाली लाइन की ओर भी सड़क है। मुख्य द्वार यहाँ बनाया जाएगा, तब तो भीतर कमरे बनाने के लिए जगह बचेगी। इसमें तो भीतर कुछ बनाने के लिए जगह ही नहीं बच रही।'' इंजीनियर ने अपनी विशेषज्ञता झाड़ते हुए कहा।

प्रभाकरजी निराश हुए। उन्होंने इंजीनियर से कुछ नहीं कहा। चुपचाप अपने नक्शेवाला कागज उठाकर जेब में डाला और चलने को हुए। पाठकजी ने ही इंजीनियर से कहा, ''ठीक है, आपने जो-जो कहा है, उस पर विचार करके हम आपसे फिर मिलते हैं।''

रास्ते में प्रभाकरजी बड़बड़ाए, ''यह आर्किटेक्ट समझता है कि हमें कोई आलीशान भवन बनाना है। बहुत बड़े बजट के साथ हम उसके पास एक प्रोजेक्ट लेकर आए हैं। अरे, हमें एक साधारण सा घर बनवाना है, बहुत थोड़े बजट में। इस आर्किटेक्ट से सलाह लेना बहुत महँगा पड़ेगा। अच्छा हुआ हमने नक्शा तैयार करने के लिए उसकी फीस नहीं पूछी।''

''नगरपालिकावाले रवि शर्मा के पास ही चलते हैं। उनसे ही नक्शा बनवाएँगे और कहेंगे कि इसे ही नगरपालिका से मंजूर करवाओ। फीस तो लगनी ही है। वहीं चलकर बात करते हैं।'' पाठकजी ने अपनी मंशा बताई।

''हाँ, हाँ, यह ठीक रहेगा।'' कहते हुए प्रभाकरजी और पाठकजी शर्माजी के घर की ओर मुड़ गए।

शर्माजी ने भी नक्शा देखकर वही कहा, ''क्या मास्साब! यह भी कोई मकान है। सामने से इतना लंबा। बीच में दरवाजा और बगल से सीढ़ियाँ। गहराई में मात्र दो छोटे कमरों की जगह। पीछे और कुछ बनाने के लिए जगह ही नहीं बचती।''

''देखो भैया, घर हमारा है। अच्छा-बुरा जैसा भी बने, हमें ऐसे ही बनवाना है। आप तो इसी प्रकार हमारा पक्का नक्शा बना दो और उसे ही नगरपालिका से पास भी करवा दो। हम नक्शे के अनुसार ही निर्माण कार्य कराना चाहते हैं।'' प्रभाकरजी ने स्पष्ट कहा।

''ठीक है। हमें क्या! आप जैसा चाहेंगे, हम वैसा ही नक्शा बना देंगे। नगरपालिका के नियम के अनुसार सामने नाली के बाद दो फीट जमीन छोड़कर निर्माण कार्य कराना होगा। बाकी जैसा आप यह नक्शा बनाकर लाए हैं, उसी प्रकार हम ट्रेसिंग क्लाथ में पक्का नक्शा बना देंगे। दो कमरे इधर, दो कमरे उधर। बीच में मुख्य द्वार और सीढ़ियों के लिए जगह। पीछे जो जगह बचेगी उसमें एक ओर किचन, दूसरी ओर लेट्रिन-बाथरूम। बस!'' शर्माजी ने नक्शे का प्रारूप समझाया।

''बिल्कुल ठीक, ऐसा ही?'' प्रभाकरजी ने हामी भरी।

''नगरपालिका से निर्माण कार्य की मंजूरी लेने के लिए और क्या करना पड़ेगा।'' पाठकजी ने शर्माजी से पूछा।

''आप आवेदन-पत्र के साथ नक्शे की एक प्रति और प्लॉट की रजिस्ट्री के पेपरों की छायाप्रति लगाकर नगरपालिका कार्यालय में जमा कर दें। जरूरत होगी तो उनके कार्यालय से कोई व्यक्ति जाकर प्लॉट का मुआयना कर आएगा। बस, इसके बाद आपको मंजूरी मिल जाएगी।'' शर्माजी ने कहा।

''तो यह नक्शा आप कब तक बनाकर दे देंगे?'' प्रभाकरजी ने पूछा।

''दो-तीन दिन बाद ले जाइएगा।'' शर्माजी ने कहा।

''और आपकी फीस?'' प्रभाकरजी ने पूछा।

''जो सबसे लेते हैं, वह आपसे भी ले लेंगे। पहले आपका नक्शा तो तैयार हो जाए।'' शर्माजी हँसकर बोले।

रास्ते में प्रभाकरजी ने पाठकजी से कहा, ''बंधु, मकान बनाने की तैयारी तो हम कर रहे हैं, परंतु पैसे बिल्कुल नहीं हैं। ऐसे कैसे मकान बनेगा?''

''अभी आपकी दो साल सर्विस और है। कुछ रुपए होम लोन के रूप में बैंक से लेना ठीक रहेगा। तनख्वाह से किश्त कटती जाएगी। तब तक आपकी जी.पी.एफ. स्लिप सुधर जाएगी। फिर कुछ पैसा उसमें से निकाल लेना।'' पाठकजी ने कहा।

''यह बात आपने ठीक कही। बैंक से होम लोन लेना उचित रहेगा। आज ही मैं बैंक से लोन-फॉर्म लेकर आता हूँ।'' प्रभाकरजी उत्साहित हुए।

होम लोन का फॉर्म अंग्रेजी में था। उसमें हर पेज पर आठ-दस कॉलम देखकर प्रभाकरजी चकराए। उन्होंने पूरा फॉर्म ध्यान से पढ़ा, परंतु उन्हें कुछ भी समझ में नहीं आया। अंग्रेजी उनकी बहुत अच्छी नहीं है, परंतु बहुत खराब भी नहीं। लिख-पढ़ के वे अपना काम चला लेते हैं। इधर बैंकों द्वारा खूब प्रचार-प्रसार किया जाता है कि सब काम अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी में करें। १४ सितंबर के आसपास बैंकवाले हिंदी पखवाड़ा भी मनाते हैं, जिसमें हिंदी के उपयोग पर जमकर भाषणबाजी होती है। पिछले साल प्रभाकरजी भी बैंक के ऐसे ही एक कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में गए थे। होम लोन का यह फॉर्म जटिल अंग्रेजी में देखकर प्रभाकरजी को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने बहुत सोच-समझकर उसे भरा और बैंक मैनेजर के पास पहुँच गए। मैनेजर ने फॉर्म देखा और उसमें बहुत सारी गलतियाँ बताईं, फिर उन्हें पूरा करके लाने को कहा। प्रभाकरजी अपना-सा मुँह लेकर चले आए।

५२५-आर, महालक्ष्मी नगर, इंदौर-१०
दूरभाष : ०९४२५१६७००३

कहानी

उनका फैसला

● विपुल ज्वाला प्रसाद

सूरज बांसेक भर आकाश में चढ़ आया था। एकाएक उसे आया देख वे अतीव आनंद-उल्लास में चहक-चहक पड़ रहे थे। उससे लिपट-लिपट पड़ रहे थे। उनका मन उन सबको देख-देख अघा ही नहीं रहा था। बड़े अटक-अटक कर उनके मुख से बोल फूट रहे थे। ''बड़े दिनों में लौटे बेटा! तुम सबको निहारने भेंटने के लिए मैं कितना तरस गया था। वह तो इन कुछ किराएदार बच्चों के सहारे दिन फोड़ता रहा। नहीं तो मैं तुम सबके बिना जीवित ही नहीं रह पाता।''

उन सबकी आमद से फ्लैट भरा-पूरा, सुहाना, अत्यधिक प्यारा लग रहा था। फ्लैट भी बड़ा सुंदर-आकर्षक, मनोहारी था।

उन्होंने टैक्सी से उसका सामान उतरवा, तरतीब से एक कमरे में लगवाया। ड्राइंग रूम में जब वे सब सुस्ता लिए तब उन्होंने अनिता को संकेत किया, ''बेटा! किचन में जाकर सबके लिए चाय-नाश्ता तैयार कर लो। वहाँ सामने छोटी अलमारी में बिसकुट, ब्रेड भी रखे हैं, उन्हें भी लेती आना।''

उनका संकेत पा अनिता किचिन में चली गई। सौरभ फ्रेश होने चला गया। उनके जहन में विगत के पखेरू उड़ान भरने लगे—सौरभ को आई.आई.टी. की कोचिंग तथा उसकी डिग्री कराने में उन्हें तथा उनकी पत्नी मनोरमा को कितनी मेहनत करनी पड़ी थी? सौरभ सीनियर सैकंडरी उत्तीर्ण करके ही कोटा आ गया था। उन्होंने उसे वहाँ कोचिंग के लिए एक कोचिंग इंस्टीट्यूट में भरती करा दिया था। स्वयं का भी उन्होंने छबड़ा से कोटा स्थानांतरण करवा लिया था।

सौरभ की कोचिंग का खर्चा उनके वेतन से तो चल नहीं पाता था। अत: खर्च के जुगाड़ के लिए वे स्कूल का समय समाप्त होने पर, ट्यूशनों में माथा फोड़ी किया करते थे। उन दोनों का बस एक ही सपना था, किसी भी तरह सौरभ को आई.आई.टी. करवाना।

सौरभ फ्रेश हो शेविंग करने लगा था। बच्चे बाहर फ्लैट की वाटिका में खेल-कूद में मस्त थे। अनिता चाय-नाश्ता बनाने में मशगूल थी। अत: उनके विचारों का अजस्त्र प्रवाह, प्रवहमान ही था। सौरभ पहले ही प्रयास में आई.आई.टी. की प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया था। अध्ययन के लिए उसे कानपुर का आई.आई.टी. कॉलेज मिला।

उन्होंने सौरभ की कोचिंग का खर्चा जैसे-तैसे झेल, उसे आई.आई.टी. कॉलेज में तो प्रवेश दिलवा दिया, किंतु अब उसके अध्ययन का खर्च ढोने में उन्हें बहुत कठिनाई अनुभव हो रही थी।

सुपरिचित साहित्यकार। कई कहानियाँ, नवगीत तथा लघुकथाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। भारत सरकार से पुरस्कृत। सहस्त्राब्दी सम्मान तथा और भी सम्मानों से सम्मानित।

उन्होंने अपने छबडा के पैतृक खेत बेच दिए। पत्नी मनोरमा के सोने-चाँदी के जितने भी गहने-गुड़िया थे, वे सब स्वाहा कर दिए। फिर भी खर्चा पूरा नहीं पड़ा तो उन्होंने पत्नी मनोरमा को आँगनबाड़ी में नौकरी पर लगा दिया।

अनिता चाय-नाश्ता बनाकर ले आई थी। बच्चे-सौरभ-अनिता सब चाय-नाश्ता करने लगे। लेकिन डाइनिंग टेबल की कुरसी पर बैठे होने पर भी उनके विचारों की श्रृंखला टूट ही नहीं रही थी। ''चाय-नाश्ता करो न पापा! ठंडे हो रहे'' सौरभ ने उन्हें टोका। ''अरे ही बेटा! तुम्हारे आने की खुशी में मैं तो सबकुछ ही भूल गया।'' उन्होंने चाय का कप उठा लिया। नाश्ते की प्लेट से थोड़ा नाश्ता।

विचारों के परिंदे एक बार पंख फड़फड़ाकर उड़ने लगें, तो फिर वे बैठने का नाम नहीं लेते। सौरभ की आई.आई.टी. की डिग्री पूरी हुई। डिग्री पूरी होते ही सौरभ के पास बड़ी-बड़ी कंपनियों से प्लेसमेंट के लिए बड़े-बड़े ऑफर आने लगे।

लेकिन उनकी नियति तो देखो—उधर सौरभ के पास नौकरी के लिए ऑफर आ रहे थे, इधर मनोरमा को मस्तिष्क ज्वर हो आया। जब तक होश में रही यही कहती रही ''मेरे लाल का ध्यान रखना देखो मेरे पूत को कोई तकलीफ न होने पाए।'' लेकिन जब वह कोमा में चली गई, तब उसके तरह-तरह के वात्सल्य भरे वाक्य बंद हुए। अंतत: उसके प्राण-पखेरू उड़ ही गए। उनकी आँखें आँसुओं से लबालब हो आईं। किंतु किसी को पता नहीं चले, इसलिए वे बाथरूम में जा आँसुओं को पोंछने लगे।

सौरभ के पास नौकरी के लिए ऑफर आने के साथ-साथ एक आई.ए.एस. अधिकारी की निगाह उस पर गढ़ गई। उसने सौरभ पर ऐसा जादू डाला कि वह उसके कहने में नाचने लगा। उसने सौरभ को पटा-पटू उसकी लड़की से उसका विवाह कर दिया। उनकी तो मात्र औपचारिक स्वीकृति ही ली थी। विवाह होने के बाद ही एक ऑस्ट्रेलियन कंपनी ने

सौरभ को भारी वेतन पर झपट लिया। उसका ससुर तो राजी था ही, उन्होंने भी मजबूरी में स्वीकृति दे दी। अगर वे मनाही भी करते तो भी ससुर के दबाव के कारण उसे तो जाना ही था। सौरभ ऑस्ट्रेलिया के लिए फुर्र हो गया। रह गए वह अकेले खटने-खपने के लिए। लेकिन उन्होंने मन को समझा लिया, सौरभ विदेश गया है तो इससे उनकी भी प्रतिष्ठा बढ़ी है। लोग कहते हैं, ''श्यामलालजी का लड़का विदेश में लै। यह सुन उनका जीर्ण-शीर्ण सीना मारे दर्प के दो-दो फुट तन जाता है।

दिन का हारा-थका सूरज अब पहाड़ की ओट में आराम करने जा चुका था। नगर निगम के लैंप पोस्ट अब दूधिया रोशनी का वृत्त बनाने लगे थे।

अनिता भोजन बना डाइनिंग टेबल पर ले आई थी। खाना खाते-खाते बात का छोर सौरभ ने ही उठाया, ''पापा अब आप यहाँ अकेले नहीं रहेंगे। मैं ऑस्ट्रेलिया से सदैव के लिए भारत आ गया हूँ।''

''अच्छा बेटा!'' मारे खुशी-प्रसन्नता के उछल पड़े।

''यहाँ कहाँ पोस्टिंग हुई बेटा तुम्हारी!''

''यहाँ बंगलुरु में। एक बहुत बड़ी कंपनी है। मैं उसमें भारी वेतन पर लग गया हूँ। कंपनी की तरफ से मुझे सारी सुविधाएँ मुहैया कराई गई हैं। बड़ा बँगला दिया है कंपनी ने मुझे। बड़ी फोर व्हीलर गाड़ी भी दी है। नौकर-चाकर की भी सुविधा है कंपनी की तरफ से।''

''बहुत अच्छा रहा बेटा! अब कभी-कभी मैं तुम्हारे पास आ जाया करूँगा।''

''नहीं...नहीं...कभी-कभी क्यों? अब आप मेरे साथ ही रहेंगे।'' यह सुन वह भीतर ही भीतर मारे प्रसन्नता-उल्लास के फूले नहीं समाए। देखो, उनके भाग्य ने कैसा गजब का पलटा खाया है। कहीं तो वह सोचते थे, उनके जीवन में यह अकेलापन उनका दम लेकर ही रहेगा। उनको मुखाग्नि देने के लिए सौरभ शायद ही समय पर यहाँ विदेश से आ सके। विधाता ने पता नहीं उन्हें किसके हाथ की लकड़ी बख्शी है? लेकिन नियति को तो देखो, वह मुझे कुछ दूसरा ही करिश्मा दिखाने पर उतारू है।

शाम को छड़ी ले वह घूमने निकले तो उनका चेहरा आनंद, प्रसन्नता-उत्साह में दिप-दिप कर रहा था। मन अतीव खुशी में नाच रहा था। साथियों ने आखिर पूछ ही लिया, ''क्या बात है श्यामलालजी? आज तो गजब की ही प्रसन्नता में थिरक रहे हैं। वह अत्यधिक हर्षित-उल्लसित हो बोले, लड़का विदेश गया था, वापस देश आ गया है। अब मैं उसके साथ ही रहूँगा। उस नीली छतरीवाले ने इस बुढ़ापे में मेरे ऊपर बड़ी कृपा कर दी। सहारे की लाठी पकड़ा दी।'' दुआ में उनके दोनों हाथ ऊपर उठ गए।

फिर तो हमारा-तुम्हारा मिलना बहुत मुश्किल है।

''नहीं-नहीं...यारो! यहाँ मेरी इतनी प्रोपर्टी है। इसे देखने-सँभालने तो आता ही रहूँगा।''

एक-दो रोज बाद वे तीनों शाम को भोजन कर रहे थे। चुन्नू-मुन्नू वाटिका में धमा-चौकड़ी मचा रहे थे। सौरभ ने उनसे एकाएक पूछा, ''आपने ऐसा बढ़िया लंबा-चौड़ा फ्लैट कैसे बनवा लिया पापा?''

''कुछ मत पूछ बेटा! इसकी विचित्र रामकहानी। जब तू विदेश गया। मैं यहाँ रहने लगा। यहाँ उस समय बहुत कम बस्ती थी। एक लंबा-चौड़ा मकान मुझे बहुत सस्ता मिल गया।

तुड़ा-तुड़ू वेतन, ट्यूशन तथा छठे वेतन आयोग की आमदनी ये कुछ कमरे खड़े किए। फिर इस क्षेत्र में बहुत कोचिंग संस्थान खुल गए। उन संस्थानों के विद्यार्थियों को कमरे किराए पर देता रहा। इस सब आमदनी से फ्लैट यह रूप ले सका।

''इसका मतलब इस फ्लैट की यहाँ बहुत कीमत होगी?''

''हाँ...बेटा! बहुत ज्यादा लगभग एक करोड़। यह तलवंडी इलाका कोटा का हृदय स्थल है। यहाँ कोचिंग के लिए देश के कोने-कोने से विद्यार्थी आते हैं। कोटा आज देश की प्रमुख शैक्षणिक नगरी है।''

''यह बहुत अच्छा किया पापा आपने।''

''सब बेटा! समय की बलिहारी। अनुकूल समय का जिसने लाभ उठा लिया वह मीर...।

रात को अपने कमरे में सोते समय उनके मित्रों की कही हुई बातें उनके मस्तिष्क में घूम रही थीं। अब तो वह सब चिंताओं...परेशानियों से मुक्त...अब उनका शेष जीवन सुख-शांति में निकलेगा। आधी रात तक वह इन्हीं विचारों में विचरते रहे। उन्हें पता ही नहीं चला कि वे कब नींद के आगोश में बँध गए। आज तो पास के कमरे से आ रही जोर-जोर की बातों से उनकी नींद उचटी। उस समय पौ फट रही थी। सौरभ अनिता से कह रहा था, ''अब पापा हमारे साथ ही रहेंगे बंगलुरु में...''

''मैं किसी को भी नहीं रखनेवाली अपने पास...'' यह अनिता की आवाज थी।

''अरे यार! बोलने से पहले कुछ सोच भी लिया करो...''

''क्या?''

''यू नो कि पापा का यह फ्लैट लगभग एक करोड़ का है। कुछ नगद भी उनके पास होंगे? सो उन्हें बैंगलोर दो-चार महिने अच्छी तरह रख तथा उन्हें पोट-पाट उनके फ्लैट सहित उनकी सारी जमीन, जायदाद अपने नाम रजिस्टर्ड वसीयत के रूप में करा लूँगा। यह सब होने पर

उन्हें जो सब होना चाहिए''

''वह क्या?''

''अरे यार! यह भी एक्सप्लेन करना होगा।'' वह ठहाका मार बोला, ''फिर इन्हें बेदखल कर दूँगा बँगले से और वृद्धाश्रम का रास्ता दिखा दूँगा।'' यह सुन अनिता जोर का ठहाका लगाने लगी। 'वैरी गुड वैरी गुड'' साथ में सौरभ ने भी ठहाका लगाया।

''डियर सौरभ! एक्चयुली यू आर वैरी जीनियस तुमने क्या गजब की प्लानिंग की है।''

उन्होंने सब उनकी बातें सुन ली थीं। सौरभ-अनिता ने तो सोचा था, वे रोजाना की तरह घूमने चले गए होंगे।

वह सौरभ की सब बातें सुन, सकते में आ गए। उन्हें लगा जैसे उन्हें किसी ने पहाड़ की ऊँची चोटी से धोखे से जोर का धक्का दे उनकी जान लेनी चाही है। वह सोचने लगे, यह तो बड़ा धोखेबाज, ठग धूर्त क्रूर दुष्ट बेरहम कसाई वह गहन वेदना संताप व्यथा में आकंठ डूब आए। उनकी आँखों से आँसुओं का पनाला बहने लगा। वह भीतर से टूटने को हो आए। लेकिन उन्होंने तुरंत स्वयं को संयत कर लिया। यह जीवन प्रकृति का अमूल्य उपहार है। यह इस तरह पीड़ा, दु:ख, वेदना, अवसाद में डूबकर नष्ट करने के लिए नहीं है। विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य में जीवन के एक-एक क्षण को भी आनंद-उल्लास में बिताने की दृढ पात्रता होनी चाहिए।

वह बहुत धैर्य, संयमित हो छड़ी उठा, अपने कमरे से औचक निकले। कुछ दूर तक गए और लौट आए। वहाँ से कुछ फूल चुने। अंदर आए तो डाइनिंग रूम में अनिता चाय-बिसकुट-नाश्ते की ट्रे मेज पर लगा रही थी। सौरभ ने उन्हें पुकारा।

''पापा! चाय-नाश्ता कर लीजिए।''

''हाँ आया''

वह चाय पीने लगे। चाय पीते-पीते सौरभ उनसे बोला, ''तो पापा 'तत्काल' में आपका भी आज ट्रेन में रिजर्वेशन करा आता हूँ बंगलुरु चलने के लिए। मेरे पास अब अधिक समय नहीं। मुझे कल जाना ही जाना है।''

''नहीं नहीं मेरा रिजर्वेशन मत कराना भैया!''

''क्यों पापा?'' सौरभ-अनिता उन्हें आश्चर्यचकित हो देखने लगे।

''तुम दोनों की सुबह की सब बातें मैंने सुन ली हैं। अब मैंने अपना फैसला बदल लिया है, इस फ्लैट को मैं शहर की मूक-बधिर, अंध विद्यालय की समिति को दान करूँगा। और स्वयं किसी परोपकारी संस्था से जुड़ूँगा। इस शरीर को भी मुखाग्नि उसी संस्था के किसी सदस्य द्वारा दे दी जाएगी। तुम्हारी आवश्यकता नहीं रहेगी। सब वसीयतनामा में लिख जाऊँगा।

वह चाय पी, गुसलघर में घुस गए। वहाँ से वह सीधे अपने पूजागृह में चले गए थे। सौरभ-अनिता उन्हें अवाक् से देखते ही रह गए थे।

कृष्णा कॉलोनी
रामगंजमंडी-३२६५१९ (राजस्थान)
दूरभाष : ९१६६०९९२९९

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

वही लड़की

मूल : **दाशरथि भूयाँ**
अनुवाद : **राजेश कुमार साहु**

हीराखंड एक्सप्रेस दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर दौड़ रही थी। खट-र-खट्, खट-र-खट् संगीत के ताल में पेड़-पौधे, बिजली के खंभे, पहाड़-पर्वत सभी ट्रेन की विपरीत दिशा में दौड़ रहे थे। खोरधा रोड स्टेशन की साधारण बोगी की भीड़ अनहोनापन बढ़ा रही थी। भीड़ के बीच एक जीर्ण-शीर्ण बुढ़िया भी चढ़ी थी। सीट की जाँच-पड़ताल में बुढ़िया की कमजोर आँखें इधर-उधर चलने लगीं। कहीं भी खाली सीट उसकी निगाहों में नहीं आई। उस बुढ़िया के लिए खड़े होकर सफर करना हद से ज्यादा तकलीफ भरा था। बुढ़िया के कंधे पर एक पुराना बैग लटक रहा था। वह बैग एक युवा के सिर पर झूल रहा था। युवक बार-बार बुढ़िया से बैग हटाने का आग्रह कर रहा था। सीट न मिलने पर बुढ़िया की अस्थिरता और बढ़ गई थी। खौफ से उसका तन काँप उठा। कोई भी बुढ़िया को पास बिठाने के लिए तैयार नहीं था। बुढ़िया की नजर सूरत (गुजरात) से लौट रहे पत्ते खेल रहे अनपढ़, अर्द्ध-शिक्षित चार-पाँच लड़कों पर पड़ी। बुढ़िया सोच रही थी कि उनके पास सीट मिलना मुमकिन है, पर वे बुढ़िया को पास बिठाना नहीं चाहते थे। पास बैठी हुई एक लड़की बुढ़िया की घबराहट को आत्मसात् कर रही थी। लड़की ने एक बार बुढ़िया के बदन को देखकर उन लड़कों की ओर देखा। वे सभी पत्ते खेलने में दिलचस्पी ले रहे थे। किसी दूसरे का दखल देना उन्हें पसंद नहीं था। वे खेल रहे थे, हँस रहे थे और पास बैठी लड़की की खूबसूरती को निहारते हुए मजा ले रहे थे।

ट्रेन निराकारपुर स्टेशन पार कर चुकी थी। बुढ़िया की वेदना और बढ़ गई थी। लड़की ने एक बार फिर बुढ़िया के दर्द भरे शरीर की ओर देखा। लड़के वहाँ बैठी हुई लड़की तथा खड़ी हुई बुढ़िया के बीच अटैची रखकर, उसके ऊपर चादर बिछाकर पत्ते खेल रहे थे। लड़की बुढ़िया को देखकर कुछ सोच रही थी। कुछ सोचने के बाद उसके लबों पर एक हल्की सी मुसकराहट फूट पड़ी। वह बुढ़िया को बुलाकर बोली, ''मौसी! आप यहाँ आइए, मेरे पास बैठिए।''

लड़की की इसी शराफत से लड़कों को गुस्सा आ गया। वे एक-दूसरे को ताकते हुए लड़की पर क्रोध प्रकट करने लगे। एक युवक ने दूसरे युवक से कानाफूसी में कहा, ''साली ज्यादा शराफत दिखा रही है।'' दूसरे युवक ने लड़की को गला फाड़कर सुनाया, ''यहाँ बैठने के लिए जगह कहाँ है? बुढ़िया क्या हमारे सिर पर बैठेगी?'' तीसरे युवक ने अन्य दो की बात का समर्थन करते हुए कहा, ''बुढ़िया को अंदर बिल्कुल मत आने देना। देखते हैं, कोई हमारा क्या बिगाड़ लेगा?''

बुढ़िया ने लड़की के पास जाने में प्रबल तत्परता दिखाई, परंतु युवाओं के नाज-नखरे से बुढ़िया को वैसे ही खड़ी रही देखकर लड़की ने उसे फिर अपने पास बिठाने को बुलाया। इस बार हिम्मत समेटती हुई बुढ़िया ने जब लड़की के पास बैठने के लिए कदम बढ़ाए, तब सभी युवाओं ने अपनी उँगलियों के इशारे से उसे निर्देश दिया, ''ठहर बुढ़िया! हमारा खेल खत्म हो जाए। हम ब्रह्मपुर उतर जाएँ। उसके बाद चैन से बैठना।''

बुढ़िया ने दीनता भरे स्वर में युवाओं से विनती की, ''बाबू साहब! मैं भी ब्रह्मपुर तक जाऊँगी।''

ट्रेन अपने वेग से चली जा रही थी। बुढ़िया का आपाद-मस्तक और हल्का सा तन ट्रेन की खट-र-खट् खट-र-खट् संगीत की धुन में झूल रहा था।

बुढ़िया एक बार फिर युवाओं से विनती करती हुई बोली, ''मैं तुम्हारे खेल में बिल्कुल अड़चन नहीं डालूँगी। मुझे थोड़ा बैठने दो।'' बुढ़िया के अनुरोध से बार-बार खेल में एकाग्रता भंग हो रही थी, परेशान होकर एक युवक ने गुस्से में कह डाला, ''ऐ बुढ़िया! खेल खत्म हो जाए, फिर तेरे बैठने की बात सोचेंगे।''

बोगी के दूसरे कोने में बैठे हुए एक नौजवान और एक बुजुर्ग बुढ़िया और लड़की के साथ हो रही युवाओं की बहस को खेल समझकर दिल्लगी कर रहे थे।

लड़की ने तीसरी बार उन लड़कों से विनती भरे स्वर में कहा, ''मौसी को थोड़ा सा बैठने दीजिए।''

लड़की की तीसरी गुजारिश पर भी लड़कों ने जवाब नहीं दिया। उन्होंने जान-बूझकर उसकी गुजारिश को लापरवाही में टाल दिया, इस बात को समझती हुई लड़की ने इस बार कुपित स्वर में कहा, ''मौसी को मेरे पास आने देंगे या नहीं। नहीं तो मुझे यह अटैची हटानी पड़ेगी।''

उनमें से एक मोटे से साँवले युवक ने गुस्से में जवाब दिया, ''ऐ छोकरी! यदि हो सके तो हमारी इस अटैची को एक बार हाथ लगाकर तो देख।''

लड़की भी कहाँ छोड़नेवाली थी। जवाबतलब करनेवाली लड़की ने भी जवाब दिया, ''तो फिर क्या कर लोगे? यह लो मैं अभी यहाँ से अटैची हटाकर मौसी को बैठने की इजाजत देती हूँ।'' कहती हुई लड़की ने दोनों अटैची के ऊपर रखी चादर हटा दी। पत्ते चादर से सरसराते हुए खिसकने लगे। उसी वक्त लड़की ने अटैची को सीट के नीचे ढकेलते हुए बुढ़िया को हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए अपने पास बुलाया।

सभी युवा सम्मिलित स्वर में पागलों की भाँति प्रलाप करने लगे, ''ऐ छोकरी! औरत होकर बड़ी मर्दानगी दिखा रही है। ब्रह्मपुर स्टेशन आने दे, हम तुझे अपनी असली मर्दानगी दिखा देंगे।'' लड़की ने व्यंग्यात्मक अट्टहास करते हुए कहा, ''ब्रह्मपुर स्टेशन पर चार-पाँच लड़कों का मिलकर एक लड़की पर जुल्म ढहाकर खिसक जाना, किस तरह की मर्दानगी है? धिक्कार है तुम्हारी मर्दानगी पर।''

क्रोधित लड़की के वाक्यबाणों की झिड़कन से लड़के बिल्कुल निश्चल पड़ गए। यहाँ तक कि दूसरों की लड़ाई में मजा ले रहे नौजवान और बुजुर्ग इस बात को जानने के लिए बेकरार हो उठे थे कि इसका नतीजा क्या होगा। लेकिन लड़कों के नरम रवैये से दोनों के मन में फुरती नहीं थी। घटना का खात्मा इतनी सहजता से हो जाएगा, उन्हें इसका अंदाजा नहीं था। लड़की की इस निराली साधना को देख, वे सभी उसके बदन को टुकुर-टुकुर देख रहे थे। ट्रेन इस वक्त ब्रह्मपुर स्टेशन पर पहुँच चुकी थी।

लड़कों के ट्रेन से उतरने से पहले लड़की ने इतना जरूर कहा कि आपके खेल में अड़चन डालने की वजह से मैं दु:खी हूँ। शर्मसार लड़के बिना कोई जवाब दिए ही ट्रेन से उतर गए। लड़की ने बुढ़िया का हाथ पकड़कर उसे प्लेटफॉर्म पर उतार दिया। लड़की की सीट के पास खाली जगह देखते ही बगल में बैठा नौजवान और बुजुर्ग फटाफट वहाँ अपनी-अपनी सीट दबोचने लगे। लड़की के पास बैठने से सफर सुहाना हो जाएगा, यह सोचकर वे दोनों मन-ही-मन खुश हुए। बुजुर्ग ने अपनी तरफ लड़की से कहना शुरू किया, ''मैडम! आपकी अक्ल और हिम्मत की कद्र किए बिना मैं नहीं रह सकता। आपकी फटकार से जीर्ण होकर लड़के ऐसे ठंडे पड़ गए कि और जवाब देने की हिम्मत नहीं जुटा सके। बेचारे कान-सिर सहलाते उतरकर चले गए। आप शायद कोरापुट जाएँगी। हम भी अपने भानजे के लिए लड़की देखने कोरापुट जा रहे हैं। यह मेरा भानजा वीरेंद्र है। मैं उसका मामा प्रभु प्रसाद पाढ़ी। संक्षेप में मैं ओड़िशा में पी.पी.पी. के नाम से मशहूर हूँ। हमारी पार्टी अब सत्ता में है। मुझे किसी भी बात की कोई परवाह नहीं। वे लोफर छोकरे यदि ज्यादा कुछ बोलते तो मैं छत्रपुर के एस.पी. को मोबाइल से बता देता। अभी तो मेरे दोस्त का बेटा भी इसी जिले का कलेक्टर है। वह तो सबकुछ सँभाल लेता। मेरा भानजा वीरेंद्र अभी नारी सशक्तीकरण से संबंधित एक अंतरराष्ट्रीय एन.जी.ओ. का कर्णधार है। ओड़िशा के सभी बुद्धिजीवी वर्गों में उसकी बहुत जान-पहचान है। यानी वह एक लेखक की हैसियत से वाकिफ है। उसके द्वारा लिखी गई 'नारी सशक्तीकरण' पुस्तक फिलहाल देश के कई विश्वविद्यालयों की पाठ्यक्रम में प्रचलित है।''

मामा की खुशामदी की बातों से भानजे का सीना फूला न समाया। लड़की की प्रतिक्रिया जानने के लिए वीरेंद्र लड़की को निहारते हुए कुटिल मुसकान के साथ मुसकराया। ऐसे मनोहर परिवेश के बीच मामा और भानजे की ट्रेन यात्रा और रसपूर्ण हो उठी।

विजयनगरम् स्टेशन से कुछ और मुसाफिर उसी बोगी में चढ़े थे। नए मुसाफिरों के बीच तीन लड़के थे। तीनों के कंधे पर कॉलेज युवाओं की भाँति बैग लटक रहे थे। वे एक अजब-गजब की वेशभूषा में थे। शेर की चमड़ी सी जींस-शर्ट पहने हुए थे। उनके टी शर्ट पर भद्दे नारे छपे हुए थे। उनके नाज-नखरों से वे सब छात्र से नहीं लग रहे थे।

उनके बीच पिंटू नाम के लड़के की आँखों के लेंस पर लड़की की परछाईं आते ही उसने अपने दूसरे साथियों से चिल्लाकर कहा, ''अरे बंटी, बबलू, यहाँ बैठने की जगह खाली है। अरे, यहाँ बैठते हैं, आ जाओ!'' यह कहते हुए पिंटू उसी लड़की के पास सटकर बैठ गया। दरवाजे के पास खड़े बंटी एवं बबलू भी वहीं आ गए। युवाओं के ऐसे प्रवेश से मामा और भानजे का मन फीका पड़ गया। उनके बैठने के ढंग से नाराज मामा बोल उठा, ''ओ बाबू साहब! आगे काफी खाली जगह है। यहाँ भीड़ में क्यों बैठोगे।'' मामाजी की बातों से गुस्सा होकर बंटी ने कहा, ''मौसा, तुम और ज्यादा बक-बक मत करो। आजकल यह सारी सलाह बहुत सस्ती हो गई है। तुम अपनी सलाह को कहीं और बेचना। मौसा, तुम क्यों नहीं उधर चले जाते, खिड़की की तरफ पान की पीक फेंकने में भी आसानी होगी। उसके साथ खुली हवा भी मिल जाएगी।''

यह कहते हुए बंटी मामा के पास बैठ गया। मामा ने प्रलाप भरे स्वर में कहा, ''अरे! क्या मेरे सिर पर बैठोगे?''

बंटी ने विद्रूपता भरे स्वर में संवाद छेड़ा, ''हाय! मैं क्या करूँ, मुझे बूढ़ा मिल गया।'' बंटी के ऐसे तीखे ताने से मामाजी थोड़े शर्मसार और तौहीन महसूस कर वीरेंद्र की ओर देखने लगे। परंतु वीरेंद्र उन दुराचारी लड़कों को कुछ कह सकने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। उनके बैठ जाने के बाद मामा और भानजे का सफर जैसे जहरीला हो गया।

ट्रेन अपनी गति से आगे बढ़ रही थी। कुछ समय के नीरव अंतराल के बाद मीटू ने लड़की की ओर तिरछी नजर डालते हुए पूछा, ''आप शायद कोरापुट तक जाएँगी।''

लड़की ने अपनी भलमनसाहत से उत्तर दिया, ''हाँ, मैं कोरापुट लौट रही हूँ।''

लड़के ने फिर पूछा, ''आप क्या करती हैं?''

लड़की ने उत्तर दिया, ''मैं कुछ नहीं करती। पुलिस एस.आई. इंटरव्यू देने भुवनेश्वर गई थी। इस गाड़ी में लौट रही हूँ।''

तीनों लड़कों ने एक-दूसरे की ओर देखा। इसका मतलब लड़की अकेली है। फिर भी शक से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने एक बार फिर लड़की से पूछा, ''क्या आप अकेली इंटरव्यू देने गई थीं?'' वीरेंद्र ने लड़कों की बातों में दखल देते हुए कहा, ''लड़कियों के अकेले ट्रेन में सफर करने की बात शायद आपको अटपटी-सी लग रही है। नारी सशक्तीकरण के दौर में आप महिलाओं को इतना कमजोर क्यों समझते हैं? मैंने अपनी किताब में नारियों की इस नई शक्ति के वैशिष्ट्य का बारीकी से वर्णन किया है।''

धारदार चाकू देखकर पास बैठे मुसाफिर काँपने लगे। हर मुसाफिर पर निशाना साधते हुए बंटी जोर से चिल्लाया, ''सब यहाँ से कहीं और जाएँगे या नहीं! मैं कहता हूँ जाओगे या नहीं?'' कहते हुए उसने बगल में बैठे मामा एवं वीरेंद्र को भौंह से उस जगह छोड़ने का निर्देश दिया। बंटी की जबरदस्त धमकी से मामाजी की नेतागीरी एवं वीरेंद्र की बहादुरी पर पानी फिर गया। मामा और भानजे फटाफट अपनी जगह से उठकर दूसरी ओर चल पड़े। उनका पथ-अनुसरण करते हुए साथी यात्री एक-एक करके अपनी-अपनी सीट छोड़कर चले गए।

मामा, भानजे और तीनों लड़कों के बीच लड़की के अकेले ट्रेन सफर को लेकर जो कहा-सुनी होती रही, उससे लड़की को थोड़ी-सी शर्म-हया भी महसूस हुई। उसके अकेले आने से इनका क्या वास्ता है? इसे लेकर उनके बीच इतनी बहस क्यों चल रही है? वह कुछ समझ नहीं पा रही थी।

बेटी ट्रेन में अकेले इंटरव्यू देने भुवनेश्वर जाएगी। बिटिया के पापा इस बात पर राजी नहीं थे। वे बेटी के साथ भुवनेश्वर आने की जिद कर रहे थे। लेकिन बेटी ने अपने पापा को यह समझाया था कि क्या हर पल एक आदमी का एक औरत की हिफाजत में रहना निहायत ही जरूरी है? क्या औरत के पास अपना कोई एतबार नहीं है? औरत को भी भगवान् ने अक्ल और ताकत दी है। वह भी आदमी की भाँति हर मोड़ पर अपने आपको उसी साँचे में ढालती हुई चल सकती है। वह आनेवाली हर कठिनाई का मुकाबला कर सकती है।''

पापा साथ में आएँ, लड़की को यह बिल्कुल मंजूर नहीं था। बेटी की तर्क भरी बातों से वे चुप रह गए थे।

लड़की को सोच में डूबे हुए देख बंटी ने पूछा, ''आप क्या सोच रही हैं? अकेलापन महसूस कर रही हैं क्या? आप फिलहाल अकेली नहीं हैं। हम आपके साथ हैं। आपका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। आप कौन सा इंटरव्यू देने गई थीं? मेरे पापा एक उच्च पदाधिकारी हैं। उनकी सिफारिश से आप अपना काम हासिल कर सकेंगी। आप ट्रेन से उतरने के बाद हमारे साथ आइए। स्टेशन के निकट ही हमारा एक होटल है। मैं वहाँ फोन से अपने पापा से आपके इंटरव्यू के बारे में बता दूँगा, आप हमारे साथ चलेंगी न?''

लड़के के अजब सुझाव पर लड़की कोई जवाब न देकर चुप रही। मान-न-मान मैं तेरा मेहमान तरकीब से लड़की के साथ दोस्ताना बढ़ाने पर लड़कों की सभी कुटिल चेष्टाओं के प्रयोग होते देख मामा-भानजे मन-ही-मन बेचैन तो हो रहे थे, लेकिन कुछ कर नहीं पा रहे थे।

लड़के के इस अप्रासंगिक प्रस्ताव से लड़की क्रोधित हो उठी। इन लड़कों के साथ उसका क्या लेना-देना? इन्हें तो वह पहचानती तक नहीं। फिर भी इनका जोर-जबरदस्ती ऐसे सुझाव देने का सबब क्या है? लड़की ने अपने मनोबल को दृढ करते हुए लड़कों से कहा, ''थैंक्स फॉर योर प्रपोजल! मैं ट्रेन से उतरकर सीधा सुनावेड़ा जाऊँगी। वहाँ मेरे माँ-पापा बेचैनी से मेरे लौटने का इंतजार कर रहे होंगे।''

बंटी ने लड़की को दिलासा देते हुए समझाने की कोशिश की, ''आप एक आधुनिक और आजाद किस्म की लड़की हैं। हरेक बात माँ-बाप को बताकर उन्हें परेशान करना जरूरी तो नहीं।''

लड़की इस बार उनकी बातों पर गौर न करते हुए, अनसुनी-सी होकर खिड़की से बाहर की ओर देखती रही।

लड़की की उनके प्रति लापरवाही देखकर मिंटू ने कहा, ''इधर देखिए मैडम! उस अँधेरे पहाड़-पर्वत से आपको क्या मिलेगा? आप हमारे साथ होटल जरूर जाएँगी।'' अन्य दो लड़के मिंटू के साथ हाँ-में-हाँ मिलाते हुए ''मैडम हमारे साथ जरूर जएँगी न। नहीं जाने से हम थोड़े ही न छोड़ेंगे। जोर-जबरदस्ती ले जाएँगे। मैडम बाहर से ही मना कर रही हैं, लेकिन मन-ही-मन एकदम खुश हैं।''

लड़कों के अश्लील बरताव से लड़की भयभीत होकर मदद की उम्मीद में घबराती हुई मामा और वीरेंद्र की तरफ निहारने लगी। लड़की की बेचैनी देखकर मामा और भानजे लड़कों से कहने लगे, ''तुम सब सज्जन परिवार के बच्चे हो या नक्सल? यदि लड़की तुम्हारे साथ होटल जाना नहीं चाहती है तो उसके साथ इतनी जबरदस्ती क्यों?''

मामा और वीरेंद्र की ओर तीनों लड़कों ने लाल आँखें दिखाकर कहा, ''तुम क्यों कबाब में हड्डी बनते हो? यह हमारा आपस का मामला है। तुम कौन होते हो हमारे बीच सिर खपाने वाले। जान लो, नतीजा अच्छा नहीं होगा।''

ठीक इसी वक्त रेलवे पुलिस के दो जवान उसी बोगी से गुजर रहे थे। लड़की ने उन बदतमीज लड़कों के खिलाफ पुलिस को इत्तिला करने की सोची। लेकिन पुलिस को देखते ही बंटी ने मगन होकर कहा, ''अरे नागा मामा आप!''

लंबे और काले शरीरवाले पुलिसवाले ने कहा, ''बंटी बाबू, आप इस ट्रेन में। तुम्हारे साथ यह लड़की कौन है?''

दूसरे साथी पिंटू ने फटाफट कहा, ''हमारी गर्लफ्रेंड।''

जी.आर.पी. पुलिस नागा रेड्डी ने दूसरे साथी पुलिस को बताया, ''यह कॉलोनी के साधुबाबू के बेटे।''

दोनों पुलिसवाले बंटी के साथ हाथ मिलाकर बोगी की भीड़ के बीच आगे की ओर बढ़ गए। दोनों पुलिसवालों के ओझल होते ही

लड़कों की बदनिगाहें फिर लड़की पर केंद्रित हो गईं। लड़की के करीब बैठे बंटी ने लड़की के कंधे पर हाथ रखकर कहा, ''फ्रेंड, तुम ऐसे गुस्सा क्यों करती हो?''

बंटी की घिनौनी हरकत को देखकर लड़की गुस्से में आगबबूला हो उठी। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। आवेश में अपने को न सँभालती हुई लड़की ने शक्ति से बंटी के गाल पर एक थप्पड़ जड़ दिया।

बंटी तिलमिलाते हुए उसी पल अपनी जेब से एक चाकू निकालकर चिल्लाया, ''यह तूने क्या किया, हरामी छोकरी?''

धारदार चाकू देखकर पास बैठे मुसाफिर काँपने लगे। हर मुसाफिर पर निशाना साधते हुए बंटी जोर से चिल्लाया, ''सब यहाँ से कहीं और जाएँगे या नहीं! मैं कहता हूँ जाओगे या नहीं?'' कहते हुए उसने बगल में बैठे मामा एवं वीरेंद्र को भौंह से उस जगह छोड़ने का निर्देश दिया। बंटी की जबरदस्त धमकी से मामाजी की नेतागीरी एवं वीरेंद्र की बहादुरी पर पानी फिर गया। मामा और भानजे फटाफट अपनी जगह से उठकर दूसरी ओर चल पड़े। उनका पथ-अनुसरण करते हुए साथी यात्री एक-एक करके अपनी-अपनी सीट छोड़कर चले गए। सबके दूसरी ओर चले जाने के बाद तीनों ने लड़की पर जुल्म शुरू कर दिए। शहर के बिजली के खंभों की आलोकमालाओं से लड़की ने अंदाज लगाया कि ट्रेन किसी शहर में प्रवेश कर रही है। ट्रेन स्टेशन के नजदीक है, ऐसा सोचते हुए लड़की ने बड़ी होशियारी से चेन खींच दी। स्टेशन से सामान्य दूरी पर ट्रेन के अटक जाने पर लड़की ने जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। घटना के बारे में जानने के लिए दूसरी बोगी के यात्री उतरकर उस बोगी के आस-पास जमा हो गए। घटना की जाँच-पड़ताल करने के लिए जी.आर.पी. (रेलवे) पुलिस दल-बल के साथ दौड़ी आई। तीनों आरोपी के साथ पुलिस लड़की को भी ले गई थी। दूसरी जगह बैठे मामा और वीरेंद्र खिड़की की ओर से घटना का जायया ले रहे थे। लड़के के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज होने के बाद पुलिस ने लड़के को लॉक-अप में डालते हुए लड़की को छोड़ दिया। लड़की इस बार इंजन के पीछे साधारण बोगी में चढ़ी। मामा और वीरेंद्र ने लड़की को दोबारा ट्रेन पर लौटते देखा नहीं था। उन्होंने सोचा कि तीनों लड़कों के साथ लड़की को भी पुलिस ने सलाखों के पीछे डाल दिया।

आधे घंटा ठहरने के बाद ट्रेन ने फिर अपने निर्धारित रास्ते पर दौड़ना शुरू किया। मामा और वीरेंद्र ठीक दोपहर तक कोरापुट स्टेशन से उतरकर सीधा मध्यस्थ बांक बाबू के घर पहुँचे थे। दिन के तीसरे पहर में बांक बाबू के साथ लड़की देखने के लिए सीमीलीगुड़ा लड़की के घर चल पड़े।

'बिटिया नुमाइशी' के कुछ पल पहले चाय-नाश्ते का मजा लेते हुए ट्रेन सफर के तजुरबे को बयाँ कर मामा और भानजे खिल-खिलाकर हँस उठे। अंत में उन्होंने कहा, ''बहरहाल, हम न होते तो उस लड़की का न जाने क्या होता?''

पापा उसके साथ जाने की जिद कर रहे थे, यह सोचकर लड़की ने उस समय ट्रेन में घटी घटना के बारे में कुछ नहीं बताया।

चाय-नाश्ते के बाद पिता ने अंदर आकर कहा, ''बेटी, तू अभी तक तैयार नहीं हुई, वे लोग तुझे देखने आए हैं।''

बेटी बोली, ''बापू! मैं ट्रेन सफर से हारी-थकी लौटी हूँ और जो जनाब मुझे देखने आए हैं, मैं ट्रेन में उन्हीं के साथ आ रही हूँ। ट्रेन में हमारी अच्छी तरह जान-पहचान हो चुकी है। वे मुझे अब और कितना देखेंगे? मामाजी ओड़ीशा के एक प्रभावशाली नेता हैं और वीरेंद्रजी एक बाहादुर एवं हिम्मतवाले नौजवान। मेरा इंटरव्यू बेहतरीन हुआ है। मेरा विश्वास है कि मैं निश्चय ही सफल रहूँगी। जब तक मैं स्वावलंबी नहीं बनती, तब तक आप मेरे लिए विवाह-प्रस्ताव नहीं लाएँगे। मुझे जोर से नींद आ रही है। बापू डिस्टर्ब न कीजिए। मैं अभी आराम से सोना चाहती हूँ।''

बापू समझते थे, बिटिया के जिद्दीपन को। इसके अलावा उन्होंने सोचा, जब वे लोग ट्रेन में ही मेरी बिटिया के नाज-नखरे और गतिविधियों को अच्छी तरह से देखकर आए हैं, तो और देखने के लिए बाकी क्या रह गया?

लड़की के बापू मेहमानों से केवल इतना ही बोल पाए, ''हुजूर! मुझे यह मालूम नहीं था कि आप सब कल से मेरी ही बिटिया के साथ एक ही ट्रेन में, एक ही सीट पर भुवनेश्वर से अंतरंग वार्त्तालाप करते हुए आए हैं। मेरी बिटिया बोल रही थी कि मामाजी तो एक प्रभावशाली नेता हैं। उनका सभी कोतवाली में पर्याप्त प्रभाव है और भानजे वीरेंद्र बाबू भी नारी सशक्तीकरण के एक सशक्त प्रवक्ता हैं। उन्हें शायद इसी साल नारी-सशक्तीकरण कृतियों पर ईनाम मिलेगा। बिटिया बोल रही थी कि वीरेंद्रजी अपार साहसी और वीर पुरुष हैं। कितनी भी बड़ी समस्या का सामना क्यों न करना पड़े, फिर भी वे दूसरों के मददगार बन सकते हैं। दोनों का एक-दूसरे के बारे में सबकुछ जान लेने के बाद यह 'बिटिया नुमाइशी' की रस्म क्या जरूरी है?''

पत्नी के बुलाने की आवाज सुनकर वे अंदर की तरफ चल पड़े। मामा और भानजे (वीरेंद्र) अपनी जगह से उठते हुए एक पल के लिए हक्का-बक्का रह गए। दोनों एक-दूसरे को टुकुर-टुकुर देखते रह गए। दोनों की जुबान से समवेत स्वर अपने आप गूँज उठा—'क्या वही लड़की!'

अध्यापक, हिंदी विभाग
आसिका विज्ञान महाविद्यालय
जिला—गंजाम-७६१११११
(ओड़िशा)
दूरभाष : ०९७७८६११०६९

अंबर के आँगन में

● श्रीप्रकाश सिंह

गंगा की लहरें

गंगा की लहरें रो-रोकर पुकारें
तेरे लिए बहती हूँ, सदियों से प्यारे
पाप धोते सूख गई
मेरी आँसुओं की धारें।
गंगा की लहरें रो-रोकर पुकारें।

मैंने तुम्हें पाक किया,
तूने पंक मुझमें डाले,
कैसा मेरा हाल किया,
बना दिया पनाले
अब तो मेरे लाल, कर कुछ विचार रे
गंगा की लहरें रो-रोकर पुकारें।

हाथ जोड़ कहती हूँ, सुनो रे दुलारे
बूढ़ी होकर सूख रही, अब तो बचा रे
जीऊँ तो जीऊँ कैसे, किसके सहारे
गंगा की लहरें रो-रोकर पुकारें।

कई टुकड़े कर दिए, तूने मेरे शरीर के
कैसा तू लाल मेरा, न समझे मेरे पीर को
कूड़ा-कचरा, मैला, अब मत बहा रे
गंगा की लहरें रो-रोकर पुकारें।

मैं परी बदली हूँ

मैं परी बदली हूँ
उड़ने गगन चली हूँ,
किरणों के रंग में रँगकर
पवनों के संग मचली हूँ,
मैं परी बदली हूँ।

आसमाँ को छू लूँ मैं
तारों को चूम लूँ मैं,
ओढ़ दुपहरी धूप को
छाया देने निकली हूँ,
मैं परी बदली हूँ।

कभी श्याम, कभी उजली हूँ।
मैं स्वर्णाभ कमली हूँ,
अंबर के आँगन में
मैं खिली-खिली कली हूँ,
मैं परी बदली हूँ।

कौन कहता मैं अबली हूँ
मत छेड़ो, मैं बिजली हूँ,
पर्वत से लड़कर मैं
पर्वत के पार निकली हूँ,
मैं परी बदली हूँ।

नदी

सुबह सुनहली, शाम रुपहली
ऋतु मधुर मतवाली है,
पनघट पर पायल छनकाती
बलखाती कौन मस्तानी है?

मंद-मंद चली पुरवाई
केसर-गंध उड़ाती है,
क्षितिज पार नीलगगन संग
कौन गोरी हुई दिवानी है?

लहरदार, रंगीन चुनरिया
चोली बूटेदार सजी,
प्रणय-प्रकीर्तन, प्रीति मद में
कौन खिल रही सयानी है?

अंबर के संग अंग लगने को
उफन रही है कौन कुमारी
लोक-लाज का मान नहीं,
यह कैसी उसकी मनमानी है?

व्याकुल व्योम का चुंबन लेकर
सरिता शांत अब क्षितिज प्रशांत में,
सविता अस्ताचल में डूब गया
वह शरम से पानी-पानी है।

मर्यादा भान विहगों की टोली
छोड़ चली उसे एकांत,

सुपरिचित रचनाकार। मंगलसूत्र (उपन्यास), मेरी प्रेयसी (काव्य) तथा साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का नियमित प्रकाशन। 'युगपुरुष स्वामी विवेकानंद पत्रकार रत्न सारस्वत सम्मान' सहित अन्य कई साहित्यिक संस्थानों द्वारा सम्मानित।

श्याम-रंग अपनी चुनरी से
उसे ढक रही संध्यारानी है।

जिसके पास जमीर नहीं है

जिसके पास जमीर नहीं है,
सचमुच वह अमीर नहीं है।

राजा नहीं, वह रंक है भाई,
मन से जो फकीर नहीं है।

माँ से बढ़कर दुनिया में
दूजी कोई जागीर नहीं है।

हाथ की रेखाएँ क्या देखूँ,
लकीर में तकदीर नहीं है।

चित्र तो चित्त में होता है,
दर्पण में तसवीर नहीं है।

आँखों के आँसू-सा पावन,
जग में कोई नीर नहीं है।

उस दरवाजे की क्या हस्ती है,
जिसमें कोई जंजीर नहीं है।

वो ऊँचाइयाँ कितनी बौनी हैं,
जो ओछी हैं, गंभीर नहीं हैं।

स्नातकोत्तर अध्ययन महाविद्यालय
केंद्रीय कृषि महाविद्यालय
उमियाम-७९३१०३, शिलाँग (मेघालय)
दूरभाष : ०९४३६१९३४५८

विकास में महिलाओं की भागीदारी

● दीपक शर्मा

भारतीय समाज विभिन्न जटिलताओं एवं विषमताओं से परिपूर्ण समाज है, जिनके मध्य ही विभिन्न जटिलताओं, वाद-विवादों एवं विचारों का उद्‌गम सदैव ही होता रहा है। यह भी एक बहुत बड़ा सच है कि शुरू से ही लगभग सभी देशों में स्त्री-पुरुष संबंधों की बहुत महिमा रही है। इन दोनों ही पक्षों को सभी ने अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है। भारतीय संदर्भ में चर्चा करें तो पुरुष को जहाँ 'शक्ति' का प्रतीक माना जाता रहा है, वहीं पृथ्वी, धरा और वसुधा के गुणों से स्त्री की तुलना की जाती रही है। पुरुष का कार्य घर के बाहर और स्त्री की जिम्मेदारियाँ घर के भीतर तक ही सीमित मानी गई हैं। यद्यपि आज समय बदला है और स्त्री की जिम्मेदारियाँ भी विस्तृत हुई हैं। वह आज पुरुष की सहचरी बनी है, लेकिन यहाँ इतना अवश्य कहना होगा कि जिस गति से सभ्यता और संस्कृति ने विकास किया है, उस गति से स्त्री के व्यक्तित्व और अस्तित्व का विकास नहीं हुआ है। संस्कृत भाषा की एक सूक्ति है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' अर्थात् जिस देश, समाज और परिवार में स्त्री की पूजा होती है, स्त्री को सम्मान मिलता है, उस स्थान पर देवता निवास करते हैं। हमारी भारतीय मानसिकता ने इस सूक्ति के केवल शाब्दिक अर्थ को ही ग्रहण करते हुए स्त्री को काली, दुर्गा, सरस्वती, वैष्णो इत्यादि दैवीय रूपों में पूजना तो आरंभ कर दिया, लेकिन सूक्ति के वास्तविक मर्म से अपरिचित ही रहे। भारत में आज भी स्त्री के विभिन्न दैवीय रूपों की पूजा की जाती है, लेकिन हमारे पास एक भी वास्तविक स्त्री-शक्ति स्वरूप प्रतीक नहीं है। इस दृष्टि से हम बहुत विपन्न प्रतीत होते हैं। जिस देश की धरती को भारत माँ कहकर संबोधित किया जाता है, उसी भारत माँ की बेटियों की स्थिति आज बहुत दयनीय और उलझी हुई है।

उल्लेखनीय है कि आज के दौर में जगह-जगह स्त्री-सशक्तीकरण के ढोल पीटे जाते हैं। महिला दिवस पर हर साल बड़ी-बड़ी और विशाल संगोष्ठियों, सम्मेलनों और चर्चाओं का आयोजन किया जाता है, जिनमें स्त्री-सबलीकरण की बहुत सुंदर और आकर्षक छवियाँ प्रस्तुत की जाती हैं, लेकिन इसके वास्तविक धरातल पर कोई बात नहीं करना चाहता। स्त्रियों के साथ बढ़ते अत्याचार, बलात्कार की बढ़ती घटनाएँ इन विमर्शों की पोल खोलने का कार्य करती हैं। हमारे भारतीय समाज की मानसिकता ने भी स्त्रियों को उनके मूल अधिकारों से वंचित करने का कार्य किया है। आज भी हमारा समाज स्त्री को पराया धन और परिवार पर बोझ के रूप में स्वीकार करने पर जोर देता है। यही कारण है कि भारत में कन्या-भ्रूण हत्या की दर दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यहाँ तक कि लड़कियों को किसी चल संपत्ति के रूप में मानते हुए यह माना जाता है कि उनका असली जीवन तो ससुराल में ही है। दरअसल यह लिंग-भेद हमारे समाज की जड़ों में गहरे से घर कर चुका है। यही कारण है कि महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक हर स्तर पर शोषण झेलना पड़ता है। अभी हाल ही में पेप्सिको की प्रमुख इंदिरा नुई, जिसे स्त्री के सशक्त प्रतीक के रूप में विश्व भर में जाना जाता है, और जो न जाने कितनी युवतियों की आदर्श भी बन चुकी हैं, ने एक साक्षात्कार में कहा कि इस मुकाम पर पहुँचकर भी उन्हें अपने पारिवारिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति नहीं मिली है। हर स्त्री की तरह उनपर भी जिम्मेदारियों का दोहरा भार है, और स्त्रियों के लिए नए मुकाम अनेक मुश्किलों को लेकर आते हैं। उनके द्वारा कहा गया यह कथन व्यावसायिक जगत् में महिलाओं की तरक्की और रुतबे के अलावा उनकी जमीनी वास्तविकताओं को भी सम्मुख रखता है।

नवोदित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। जूनियर रिसर्च फैलोशिप (यू.जी.सी.)। 'ऐंबेस्डर ऑफ पीस' पुरस्कार से सम्मानित। संप्रति स्वतंत्र-लेखन एवं अतिथि प्राध्यापक, दिल्ली विश्वविद्यालय।

मीडिया की बात करें तो उसने स्त्री को आज केवल एक सेक्स-ऑब्जेक्ट के रूप में सबके सम्मुख परोसा है। बहुत कम ऐसी फिल्में होंगी जो स्त्रियों को उनकी सच्चाइयों के साथ अभिव्यक्त करती होंगी। उनकी कोई सशक्त और स्थायी छवि मीडिया ने यदा-कदा ही दी है। अगर आजकल के संगीत एवं फिल्मी गानों की ही चर्चा की जाए तो उनमें भी स्त्रियों के प्रति एक वस्तुवादी दृष्टिकोण ही अधिक रहता है। इसका ज्वलंत उदाहरण यो-यो हनी सिंह के गाने हैं, जिनमें जिस बुफे सिस्टम का प्रयोग अभी तक खाने-पीने के संदर्भ में होता था। भारत के संदर्भ में चर्चा की जाए तो पंजाब के युवाओं को पथभ्रष्ट करने में नशे का बहुत बड़ा हाथ है, जहाँ से खुद गायक हनी सिंह भी संबंधित हैं। दूसरा, लड़कियों के प्रति एक उत्तेजक, कामुक और वस्तुवादी दृष्टिकोण, जिसमें लड़कियों के प्रति विशिष्ट प्रकार का मानसिक और शारीरिक हिंसात्मक रवैया अनिवार्य रूप से उपस्थित रहता है, जिसे आज की युवा पीढ़ी

सर्वाधिक पसंद करती है। जिन गालियों को अभी तक हम अभद्र कहकर निंदा किया करते थे, आज उनका हम गानों के साथ बहुत आनंदपूर्वक उपभोग (संदर्भ : पार्टी ऑल नाइट) करते हैं। यह सब कहीं न कहीं स्त्रियों के प्रति एक नकारात्मक रवैये को दरशाता है।

स्त्री-सशक्तीकरण के नाम पर आज हर दूसरा व्यक्ति तुरंत इंदिरा गांधी, सरोजिनी नायडू, मीरा कुमार, मायावती, सुषमा स्वराज, इंदिरा नुई, सानिया मिर्जा इत्यादि का नाम लेता है, लेकिन हम इस बात से भी नहीं मुकर सकते कि पूरे विश्व में गरीबी में जीवन बसर करनेवाली जनसंख्या का एक बड़ा भाग स्त्रियों का है। मतलब यह है कि इस धरती पर रहनेवाली गरीब जनसंख्या में सर्वाधिक हिस्सेदारी इन महिलाओं की है। 'केयर' नामक संस्था ने विश्वभर में इससे संबंधित कुछ आँकड़े एकत्र किए थे, जिसके अनुसार संपूर्ण विश्व में कुल १.३ करोड़ लोग ऐसे हैं, जो पूर्णत: अपना जीवन गरीबी और बदहाली में व्यतीत कर रहे हैं। लेकिन आश्चर्य वाली बात यह कि इस कुल संख्या का ७० प्रतिशत हिस्सा महिलाओं का है। ये आँकड़े इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए नाकाफी नहीं हैं, जो स्त्री-सशक्तीकरण के मायाजाल की वास्तविकता को सबके सम्मुख रखते हैं। उल्लेखनीय है कि जो पश्चिमी मॉडल स्त्री-सशक्तीकरण के लिए भारत में अपनाया जा रहा है, उससे हमारी भारतीय महिलाओं की स्थिति में कोई खास फर्क नहीं पड़नेवाला है। इसका कारण भी स्पष्ट है, क्योंकि जो जरूरतें भारतीय महिलाओं की हैं, वे पश्चिमी मॉडल की महिलाओं से बिल्कुल अलग हैं। जिसमें आज भी महिलाएँ सामाजिक समानता और मूलभूत अधिकारों के लिए लड़ रही हैं, वहाँ आर्थिक-निर्भरता और यौनिकता की मुक्ति की बात तो बहुत दूर की कौड़ी लगती है। परिवार में कौन किस प्रकार से रहेगा और एक स्त्री को कितने बच्चों को जन्म देना है, इसका अधिकार भी केवल पुरुषों को है। स्त्री के पास उसकी देह तो अवश्य है, लेकिन उस पर अधिकार पूर्णत: पुरुषों का है। स्त्री देह पुरुषाधीन है। यह भी सच है कि यौनिकता से पुरुषों के नियंत्रण को समाप्त किए बिना स्त्रियों को उनकी शक्ति नहीं दी जा सकती।

इस संदर्भ में यह भी कहना होगा कि हमारे भारत में स्त्रियों की स्थिति दलित समुदायों के समकक्ष ही मानी जाती है। जिन-जिन यातनाओं को एक दलित वर्ग झेलता है, स्त्रियों का एक बहुत बड़ा वर्ग उसी पीड़ा को दिन-रात झेलता है। लेकिन दलित वर्ग में स्त्री तो एक पायदान और नीचे चली जाती है अर्थात् स्त्रियाँ दलितों में दलित मानी जाती हैं। उन्हें दोहरे शोषण की मार झेलने के लिए मजबूर होना पड़ता है। यही स्थिति कमोबेश मुसलिम महिलाओं की भी रहती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार साक्षरता दर में मुसलिम महिलाओं की स्थिति बहुत ही शोचनीय है। जबकि शिक्षा ही एकमात्र ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा स्त्रियों को सशक्त किया जा सकता है। गौर करने की बात यह भी है कि भारतीय परिवेश में स्त्रियों को घर और समाज की प्रतिष्ठा के रूप में स्वीकारा जाता है। यदि किसी लड़की या स्त्री के साथ कोई बुरी घटना घटित होती है तो उसे घर और समाज पर कलंक माना जाता है, फिर भले ही उसमें सारा दोष दूसरे पक्ष का हो, लेकिन दोषी स्त्री ही कहलाई जाती है। बलात्कार होता है स्त्री का और वही कुलटा भी कहलाती है। इस संदर्भ में आज सर्वाधिक ज्वलंत समस्या 'ऑनर किलिंग' अर्थात् सम्मान के लिए किसी की हत्या कर देना है, जिसने सबसे ज्यादा चोट स्त्रियों के सम्मान और उनके मूलभूत अधिकारों को पहुँचाई है। जिस समाज में स्त्रियों की हत्या केवल इस कारण से कर दी जाती है कि उसने अपनी इच्छा से अपना जीवनसाथी चुन लिया है तो फिर ऐसे समाज में स्त्री-सशक्तीकरण केवल बातों तक ही सीमित रह जाता है। वास्तविक धरातल पर इसे उतारना नामुमकिन सा प्रतीत होता है। यहाँ कहना होगा कि ऑनर किलिंग इस मानसिकता को भी आज के समय में नंगा करती है, जिसके अनुसार पुरुष स्त्री को अपनी निजी संपत्ति और उस पर अपना मालिकाना हक समझता है। जो पुरुषों को स्त्री को जब चाहे तब किसी भी तरह इस्तेमाल करने की आजादी देता है। समाज में जब तक स्त्री अपने जीवनसाथी का चयन अपनी इच्छा से नहीं कर सकती और जब तक इस प्रकार की मानसिकता समाज में विद्यमान रहेगी, तब तक स्त्री सशक्तीकरण ख्वाब ही बनकर रह रहेगा।

जिस समाज में स्त्रियों की हत्या केवल इस कारण से कर दी जाती है कि उसने अपनी इच्छा से अपना जीवनसाथी चुन लिया है तो फिर ऐसे समाज में स्त्री-सशक्तीकरण केवल बातों तक ही सीमित रह जाता है। वास्तविक धरातल पर इसे उतारना नामुमकिन सा प्रतीत होता है। यहाँ कहना होगा कि ऑनर किलिंग इस मानसिकता को भी आज के समय में नंगा करती है, जिसके अनुसार पुरुष स्त्री को अपनी निजी संपत्ति और उस पर अपना मालिकाना हक समझता है।

भारत सरकार ने भी महिलाओं को सशक्त करने के लिए समय-समय पर अनेक प्रकार के प्रयास किए हैं। वर्ष २००१ को भारत सरकार ने महिला-सशक्तीकरण वर्ष के रूप घोषित किया। साथ ही 'नेशनल मिशन फॉर दी एंपावरमेंट ऑफ वुमेन' भी भारत सरकार की तरफ से एक अच्छी पहल मानी जाती है। इस प्रयास के द्वारा सबको ऐसे अनेक सकारात्मक एवं सशक्त आँकड़े प्राप्त हुए, जिसने स्त्री की सशक्त होती इमेज से संबंधित परिवर्तनों से सबको परिचित करवाया। NMEW ने बताया कि आज न केवल लड़कियों की जन्म दर ९३० से बढ़कर ९४० हो गई है बल्कि स्त्री शिक्षा दर भी १८.३ प्रतिशत (१९६१) से ७४ प्रतिशत (२०११) तक बढ़ चुकी है। स्त्री-पुरुष के बीच साक्षरता दर की बढ़ती खाई २६.६ प्रतिशत (१९८१) १६ प्रतिशत कम हुई है। भले ही इन आँकड़ों को देखकर ज्यादा खुशी नहीं होती, लेकिन यह थोड़ा सुकून अवश्य देते हैं। कारण, इस स्थिति को पाने में ही जब स्त्रियों को इतना समय लग गया है तो एक आदर्श और सशक्त धरातल पर पहुँचने में तो न जाने कितना समय और लगनेवाला है।

गौरतलब है कि किसी भी राष्ट्र की महिलाओं को सशक्त करने के

लिए तीन चीजों की सर्वाधिक जरूरत रहती है। सबसे पहले तो महिलाओं के लिए उनका स्वास्थ्य और पोषण आता है। विभिन्न रिपोर्ट्स और सर्वे यह बताते हैं कि एशियाई मुल्कों में महिलाएँ सर्वाधिक कुपोषित होती हैं। औसतन भारत में हर तीसरी महिला कुपोषित है, जिनको पोषित भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता है। इसके चलते इन्हें अनेक प्रकार के शारीरिक कष्टों को झेलना पड़ता है। दूसरी चीज है—शिक्षा, जिसके माध्यम से स्त्रियाँ न केवल अपने अधिकारों से परिचित होंगी, बल्कि जीवन के असली मायनों से उनका साक्षात्कार होगा। आज हम देख सकते हैं कि शिक्षित महिलाएँ ही अपने एवं अन्य स्त्रियों के अधिकारों की लड़ाई लड़ रही हैं। शिक्षा ने ही स्त्रियों को उनके 'स्व' से मिलाया है। उनकी आंतरिक चेतना को जाग्रत् किया है। फिर वह तसलीमा नसरीन हो या फिर किरण बेदी। तीसरी जो सबसे बड़ी चीज है, वह है—परिवेश। सुनने में तो बहुत अजीब सा लगता है कि परिवेश कैसे स्त्रियों को सशक्त करने में सहायक हो सकता है, लेकिन सच तो यह है कि परिवेश के भीतर पहले और दूसरे बिंदु भी समाहित हो जाते हैं। परिवेश से तात्पर्य है—स्त्रियों के लिए सकारात्मक और स्वस्थ वातावरण, जिसमें रहकर वे स्वयं से बातें करें तथा जीवन की सच्चाइयों से रू-ब-रू होकर अपना भविष्य चुनें। यह परिवेश ही है, जो किसी को तसलीमा नसरीन बनाता है तो किसी को किरण बेदी। लेकिन हमारे समाज की समस्या यह है कि हम अभी तक अधिकतर स्त्रियों को इस तरह का स्वस्थ परिवेश देने में असमर्थ हैं।

कहा जा सकता है कि स्त्रियों की सार्थक भागीदारी ही स्त्री को सशक्त बना सकती है। दूसरों का मुँह ताकते हुए कई सदियाँ बीत चुकी हैं, लेकिन अब इस सशक्तीकरण का बीड़ा स्त्रियों को स्वयं ही उठाना होगा। आज हर स्त्री के लिए अपने 'स्व' को पहचानकर आगे बढ़ने का समय है।

कहा जा सकता है कि स्त्रियों की सार्थक भागीदारी ही स्त्री को सशक्त बना सकती है। दूसरों का मुँह ताकते हुए कई सदियाँ बीत चुकी हैं, लेकिन अब इस सशक्तीकरण का बीड़ा स्त्रियों को स्वयं ही उठाना होगा। आज हर स्त्री के लिए अपने 'स्व' को पहचानकर आगे बढ़ने का समय है। स्त्रियों को स्वयं अपनी आवाज को बुलंद करना होगा और अपनी दासता को इतिहास के पन्नों में दफन करने के लिए एकजुट होना होगा। अबला को अब सबला बन देश के विकास में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी।

ई-१/३२३, शिवराम पार्क
नांगलोई, दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ०९८११४२४२००

कविता

पानी से प्यार करो

● जे.एस. चावला

पानी की शक्ति को नहीं जानते?
जब यह नहीं होता, हवा भरी होती है
खाली बोतल तक नहीं दबती!
आदमी चुल्लू भर पानी फेंटता है हवा-संग
और एक मुष्टि-प्रहार से ही
खड़ी बोतल प्लास्टिक की हो जाती ढेर-चपटी!

झूठ नहीं कह रहा
हावड़ा स्टेशन पर चल देख लो।
जब राजधानी पहुँचती या वैसी और गाड़ियाँ
हजारों बोतलें लातीं ढो
कितना दमकता है ठोंकनेवाला चेहरा पानी के दम पर।
उजला है पानी का चेहरा
पानी से प्यार करो।

चीनी के दानों से
दानो! घुल लो, भर दो मिठास
क्या हुआ जो बाद में डली
चायपत्ती-सी पानी सड़ा, नहीं उबली
दूध के बाद ही सही चीनी तो डली।

दानो! अभी गरम है घोल
आग से दूर भी
पत्ती छनने से पहले वही ऊर्जा मिलेगी
साथियों की दूर हो जाएगी उदासी
तुम्हारे बिना जो थी।
दानो! खिन्न विरही हथेलियों की भूल का
बुरा न मानना
कहाँ से रहेंगी मीठी उँगलियाँ
लबों की मिठास बटोर लेतीं फिरकर,
दो बोल मिश्री के सुन भरमाया था प्यार
सुधि न रही चीनी की।
दोनो! कसम तुम्हें मिठास की, घुल लो
भर दो मीठी यादों से चाय की
कभी जो एक साथ पी।

१२३/१ सेक्टर-५५
चंडीगढ़-१६००५५
दूरभाष : ०९४१७२३७५९३

विस्मयकारी विश्वास

● मेघा दुग्गल मेहरा

बिस्तर पर वह एकदम गहरी नींद में पड़ी थी। आस-पास की दुनिया से बेखबर वह सपनों की दुनिया की सैर कर रही थी। पहले उसे बहुत मीठे खुशबूदार सपने आते थे। लेकिन अब अकसर उसे डरावने सपने आने लगे। रात भर सपनों की यह सैर उसके लिए किसी जानलेवा गुफा में से बचकर निकलने की जंग थी। जैसे मकड़ियों के जाल से पटे किसी गहरे कुएँ के अंदर उसे जंगली छिपकलियों, साँपों और न जाने कितने ही रेंगनेवाले जानवरों के बीच छोड़ दिया गया हो। इसीलिए अकसर वह सोने से कतराने लगी। यों बिस्तर पर अकेले पड़े रहने में भी कोई सुख नहीं है। खासकर उस व्यक्ति के लिए, जिसे किसी के साथ लिपटकर सोने की आदत पड़ गई हो। वह देर तक करवटें बदलती रहती। कभी उठकर कुछ पढ़ने की चेष्टा करती तो कभी टी.वी. के सामने उल्लू की तरह आँखें फाड़कर बैठ जाती। कभी अपने फोन को बार-बार चैक करती कि कहीं कोई कॉल या मैसेज तो नहीं है। फोन खाली देखकर उसके दिल में निराशा के साथ गहरा अंधकार भर जाता। वह कुछ भी करती, पर उसके दिमाग में केवल एकलव्य ही छाया रहता। उसे लगता, जैसे उसके साथ धोखा हुआ है। किसी बँधुआ मजदूर की तरह उसे उसके हँसते-खेलते, भरे पूरे परिवार से अलग कर यहाँ केवल काम करने के लिए ला छोड़ा गया है। यहाँ न उसका कोई सम्मान है, न ही उसकी इच्छाओं की किसी को कद्र। यहाँ तक कि उसका आत्मसम्मान भी न जाने कहाँ गुम हो गया है।

कुछ दिनों से उसने स्वयं को बहलाने की एक नई तरकीब निकाली है। वह अपने फोन में इंटरनेट पर देर रात तक सर्चिंग करती रहती है। कभी खुश रहने के उपाय, कभी बाल काले करने के घरेलू नुस्खे तो कभी कोई नई जल्दी बननेवाली हेल्दी रेसिपी। कभी-कभी उसका दिमाग सेक्स स्टोरीज की तरफ घूम जाता तो वह एकदम ठिठक सी जाती है। फिर देर तक वह स्वयं की नैतिकता और चरित्र के बारे में सोचती। मानो सोचने भर से वह किसी के साथ हमबिस्तर हो गई हो। इसी तरह उसकी रातें बीता करतीं।

जुलाई की गरमियों की चिपचिपी रातों को काटना यों भी मुश्किल था। उस पर यह अकेलापन उसे और कचोट डालता। आज रात भी वह देर तक जागती रही। कुरसी पर बैठ नोटबुक पर न जाने क्या लिखने में व्यस्त थी। गरम मीठे दूध की छोटी-छोटी करारी चुस्कियों में डूब-डूबकर वह पन्नों पर न जाने किन शब्दों को उकेरती चली जा रही थी। शायद कोई पत्र लिख रही है अपने पति के नाम, जो कि अपनी नौकरी के लिए उसे यहाँ छोड़ बहुत दूर जा बैठा है या शायद उसे कोई कहानी सूझ गई है?...नहीं तो कहीं ऐसा तो नहीं कि यों अकेली, जिंदगी जीते-जीते

नवोदित कहानीकार। एम.ए., बी.एड., एम.एड., एम.फिल. (शिक्षाशास्त्र)। 'प्रतिबिंब', 'अपराजिता', 'जीवंत तरलता' (कविताएँ); 'रफ्तार' (लघुकथा) प्रकाशित। 'साहित्य अमृत' द्वारा युवा कहानी प्रतियोगिता में प्रोत्साहन पुरस्कार से सम्मानित।

वह थक चुकी हो और अब अपनी जीवन-लीला समाप्ति की घोषणा करता कोई आत्महत्या का नोट लिख रही हो? न जाने क्यों आज वह वर्षों से सहती आई इस पीड़ा से इतनी व्याकुल हो उठी थी। उसे लगा, जैसे उसके शरीर में ज्वार उठ रहा है। अपने कॉलेज के दिनों में जनरल नॉलेज की पुस्तक में उसने पढ़ा था कि मनुष्य का खून दिनभर में शरीर के एक हजार चक्कर काटता है। यह भी कि दिल तीस फीट की ऊँचाई तक रक्त को फेंक सकता है। लेकिन उसे तो लग रहा था, जैसे उसका रक्त हर मिनट हजार चक्कर लगा रहा हो और अगर दिल में से खून को उछाला जाए तो सौ फीट तक खून का फव्वारा किसी इंद्रधनुष की तरह हवा में लहरा जाएगा। सोच में कहीं दूर स्थित होकर उसने अपनी नजरों को छत पर गड़ा दिया। लंबे समय तक जाने वक्त की किन पटरियों पर उसका दिमाग दौड़ता रहा। प्रकृतिस्थ होकर उसने देखा तो छत पर झूलता पंखा दिखाई दिया। गरमी से बेहाल वह उठ खड़ी हुई। बाथरूम में जाकर अपना चेहरा धोया और वापस आकर बिस्तर पर पड़ गई। घड़ी तीन बजा रही थी।

रात भर जागने पर सुबह जो गहरी नींद आती है, वह उसी में डूब रही थी। घड़ी का अलार्म जोर-जोर से बज रहा था। अचानक नींद के गलियारों को छोड़ यथार्थ की जमीन पर आकर उसने जल्दी से अलार्म बंद किया। समय देखा तो सुबह के साढ़े छह बज रहे थे। वह निश्चिंत हो गई। घड़ी के साथ टेबल पर उसकी नोटबुक पड़ी थी। उसे देखते ही चेहरा दृढ विश्वास से भर गया। कल रात लिखे नोटबुक के पन्नों को पलटकर देखा। उन पर अजीब तरह का हिसाब लगाया गया है। अपने सुख-दुःख को उसने अलग-अलग कतारों में लिखा था। दुःखों की कतार लंबी खींची हुई थी और सुख केवल एक शब्द में ही सिमट गया था—एकलव्य। उसने हिसाब लगाया था कि एकलव्य से विवाह ही केवल एक ऐसी उपलब्धि है जो कि उसके सुखी होने का प्रतीक है।

फिर उसने आगे हिसाब लगाया कि उसके जीवन में दुःखों की जो यह लंबी कतार बन गई है, यह एकलव्य की ही देन है। विधाता ने उसे उसके मन की एक खुशी देकर उसके सारे सुख हर लिये हैं। जहाँ उसके

सभी दोस्तों के जीवन में विवाह सुख का द्वार बनकर आया, वहीं उसके जीवन में विवाह ने पूर्ण विराम लगा दिया। वह सारी संभावनाएँ समाप्त हो गईं, जो उसके जैसी होनहार लड़की को शीर्ष पर ले जा सकती थीं। उसने अपनी नोटबुक में उन सभी इच्छाओं को सूचीबद्ध कर रखा था, जो वह हमेशा से चाहती थी। अपनी भविष्य योजना बनाते हुए अगले दो वर्षों में वह क्या-क्या करनेवाली है, इस सबको बहुत ही खूबसूरती से उकेरा हुआ था। अपना भविष्य प्लान करना हमेशा से ही उसे बहुत पसंद था। उसने डायरी के पिछले पन्नों को पलटकर देखा तो पाया कि शादी से पहले के हर साल उसने अपने भविष्य की योजनाओं को बनाया हुआ था। जो उसने कागज पर लिखा था, उसे पूरा भी अवश्य किया था। शादी के बाद इन चार वर्षों में उसने एक भी बार भविष्य-योजना नहीं बनाई, बल्कि अपने बारे में सोचा तक नहीं। शादी के पहले, मतलब चार साल पहले की अपनी अब तक की अंतिम भविष्य-योजना पर जब उसने नजर दौड़ाई तो देखा कि वहाँ एकलव्य से शादी करना, जॉब करना, अपना पसंदीदा नॉवल पढ़ना और मध्य प्रदेश के खजुराहो मंदिरों को देखने जाने की योजना थी। हिसाब लगाया तो पाया कि केवल शादी ही कर पाई बाकी सारी चीजें ताक पर रखी हैं। उसने उस मैली-कुचैली धूल से सनी ताक पर नजर दौड़ाई। उसके सपने धूल की मोटी परत के नीचे पड़े जगमगा रहे थे। बीती रात उसने उन सब चीजों को ताक पर से उतार-उतारकर झाड़ा-पोंछा और अपनी डायरी के सुंदर चमकीले शेल्फ में अपने आनेवाले वर्ष की भविष्य योजना के रूप में स्थापित कर दिया।

आज वह पूरी दृढता से उठी है। उस खाली हो चुकी ताक में अपनी कमजोर भावनाएँ, झूठे आश्वासनों से भरा एकलव्य का प्यार, अपनी बेबस सी जिंदगी को रखकर एक ऐसे जीवन की शुरुआत करने को आतुर है, जिसकी वह हमेशा से योग्य अधिकारिणी रही है।

अपने जीवन की हर खुशी से समझौता करके उसने एकलव्य के साथ के लिए उसका हाथ थामा था। नौकरी मिलते ही उसे अपनी माँ की सेविका के रूप में छोड़कर उसका पति विदेश चला गया। शुरू-शुरू में फोन पर कुछ बातें करता, फिर धीरे-धीरे वह भी बंद। कभी-कभार कुछ औपचारिक बातें कर वह फोन काट देता। वह रोज उसके फोन का इंतजार कर निराश होकर सो जाती। सुबह उठकर सबसे पहले इस उम्मीद में फोन देखती कि कहीं उसके सो जाने के बाद एकलव्य ने फोन या मेसेज न किया हो, पर वहाँ कुछ न देखकर वह फिर बुझ जाती। आज भी उसने अपना फोन देखा, वहाँ न कोई कॉल थी न मेसेज। उसने एक लंबी साँस ली और अंदर-ही-अंदर बुदबुदाई, कल रात फिर एकलव्य ने कॉल नहीं किया। उसका दिमाग शादी से पहले के दिनों के मकड़जाल में जा अटका। सुबह जब वह उठते ही अपना फोन चैक करती थी तो कितनी-कितनी मिस्ड कॉल्स और मेसेजेस से उसका फोन भरा होता था। उनमें कुछ दोस्तों के और सबसे ज्यादा एकलव्य के होते थे। एकलव्य कहा करता था—'यार, तुमसे बात किए बिना न तो मेरा दिन शुरू होता है और न रात।'

आज वह स्वयं को एकदम अकेला पाती है। उसे स्वयं पर गुस्सा आता है। इस सबके लिए वह स्वयं को दोषी मानती है। आखिर क्यों वह शादी के बाद धीरे-धीरे दोस्तों से किनारा करती चली गई? वह अपने अकेलेपन की स्वयं दोषी है। उसने फोन में सभी दोस्तों के नंबर देखे। अब वह फिर अपनी पुरानी जिंदगी में लौटना चाहती है। जिसके लिए उसने सब छोड़ा, न तो वह उसके पास है और न ही उसे उसकी परवाह या कद्र ही है। उसे याद आया, एक बार भावुक होकर उसने एकलव्य से कहा था, 'मैंने तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व लुटा दिया।' तभी उसके कानों में एकलव्य के शब्द गूँज गए, 'क्यों लुटा दिया? मैंने तो तुमसे कभी कुछ नहीं माँगा था। तुम खुद कंगाल होना चाहती हो तो हो जाओ। मुझे दोष क्यों देती हो?' फिर अचानक उसे दो साल पहले की बातें याद हो आईं। एकलव्य कैसे खीझकर बोला था, 'अरे यार, मेरा दिमाग खराब मत करो। तुम्हें जो करना है, करो। बस मुझे जीने दो। और हाँ, मुझसे कोई उम्मीद मत रखना। बस मम्मी को खुश रखना।'

फिर तीन साल पहले का एकलव्य कड़वी गोलियाँ शहद में डुबो-डुबोकर खिलाने लगा, 'नैन्सी जॉब करके क्या करना है? घर में सबकुछ तो है। जॉब-वॉब में कुछ नहीं है। घर पर आराम करो। मम्मी की सेवा करो, घर के इतने काम हैं, वो देखो न। तुम होम मिनिस्टर की पोस्ट सँभालो, जान। मम्मी को एक ऐसी लड़की चाहिए, जो घर पर रहे, ताकि वे जब बुलाएँ आ सके।' फिर अचानक तीन साल पहले का वह रोता-छलकता खुशी का दिन याद हो आया, जब एकलव्य को इतनी बड़ी जॉब का ऑफर आया था। मैं कितनी खुश थी कि अब एकलव्य के साथ एक नई जिंदगी की शुरुआत होगी। हनीमून पर नहीं गए तो क्या, अब तो मलेशिया में ही रहना होगा। एकलव्य तो जैसे खुशी सँभाल ही नहीं पा रहे थे, मुझे बाँहों में भरकर कैसे खुशी से बोल रहे थे, 'नैन्सी, बहुत बड़ी कंपनी से ऑफर आया है। मैं बहुत खुश हूँ। मुझे मलेशिया जाना होगा···तुम?···नहीं यार, तुम नहीं···बस मैं ही जाऊँगा···यहाँ घर पर भी तो कोई चाहिए मम्मी के पास। मम्मी को कौन सँभालेगा। मतलब घर के काम···उनकी देखभाल···नहीं यार, मम्मी वहाँ के कल्चर में एडजेस्ट नहीं हो पाएँगी। बस यार, थोड़ा कॉआपरेट करो···अच्छा बाबा, ठीक है। पहले मुझे तो जाने दो। मैं वहाँ रहने-खाने का इंतजाम करके तुम्हें बुलवा लूँगा अब खुश?' आज तीन साल बाद तक भी एकलव्य ने उसे अपने पास बुलाने के बारे में कुछ सोचा तक नहीं। चार साल पहले एकलव्य ने कितने प्यार से मुझे सीने से लगाकर कहा था, 'नैन्सी, मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं जी सकता। तुमने मुझसे शादी के लिए हाँ कहकर मेरा जीवन बचा लिया, नहीं तो सच मैं आत्महत्या तक कर लेता। आई लव यू सो मच नैन्सी।'

नैन्सी जैसे नींद से झटके से जाग गई। उसे खुद से घृणा सी होने लगी। वह सोचने लगी कि क्या वह इतनी मूर्ख थी कि उसे उसके साथ

क्या हो रहा है, यह तक समझ नहीं आया। वह कैसी थी और आज वह क्या बनकर रह गई है। उसे एहसास हुआ, जैसे किसी मीठी छुरी से धीरे-धीरे एकलव्य ने उसे हलाल किया है। उसने अपना चेहरा आईने में देखा। वह अभी भी उतना ही जहीन, मासूम और सुंदर था, जितना चार साल पहले हुआ करता था। उसके गले में मंगलसूत्र लटक रहा था। इस बीच उसकी सास दूसरी बार दरवाजे पर दस्तक देकर बड़बड़ाती हुई जा चुकी थी। नैन्सी ने इस बार भी दरवाजा नहीं खोला। वह सीधे बाथरूम में धुस गई। तैयार होकर निकली। फोन देखा, वहाँ एकलव्य की चार मिस्ड कॉल्स थीं। उसने कॉल बैक किया। एकलव्य दूसरी तरफ झल्ला रहा था। फोन उठाते ही गुस्से में बोला, 'मम्मी कितनी बार दरवाजा खटखटा गईं तुम्हारा? महारानी की नींद टूट गई हो तो मम्मी को चाय-नाश्ता बनाकर दे दो।' वह कुछ भी नहीं बोली। फोन कट गया। उसने अपनी बेस्ट फ्रेंड को कॉल लगाया, 'निशा, मुझे सिटी मॉल में मिल। सिविल कोर्ट जाना है, तलाक के पेपर्स बनवाने के लिए।' उसने अपना चेहरा फिर आईने में देखा, वह हैरान हो गई। वहाँ एक तेज रोशनी चमक रही थी। एक उज्ज्वल भविष्य की किरणें उसके चेहरे से फूट-फूटकर निकल रही थीं। वहाँ स्वयं पर एक अविस्मरणीय विश्वास था। वह तेजी से कदम बढ़ाते हुए दरवाजा खोलकर बाहर निकल गई। चूड़ियों के स्टैंड पर मंगलसूत्र देर तक झूलता रहा।

५९४/३, नजदीक बस अड्डा
अंबाला रोड, सोनीपत-१३१००१
(हरियाणा)

अनोखी माँग

लघुकथा

● पंकज शर्मा

''बाबूजी, आपने मेरा काम करवाया है, कोई सेवा बताएँ?'' वह हाथ जोड़कर, नम्रता से राजेंद्र बाबू के पास खड़ा हो गया।

''अरे, नहीं-नहीं, यह तो मैंने अपना फर्ज समझकर ही किया है। जो तुम्हें मिलना चाहिए था या जो मिल सकता था, मैंने वही तो दिलवाया है, इसमें कौन सी बड़ी बात है?'' राजेंद्र बाबू बोले।

''नहीं बाबूजी, अगर कोई दूसरा बाबू होता तो इसके बदले में मुझसे पहले ही कुछ-न-कुछ जरूर माँगता, पर आपने तो बिना कुछ लिये-दिए ही मेरा अटका हुआ काम करवा दिया, आपको कुछ तो लेना ही पड़ेगा।'' उसने फिर दोहराया।

राजेंद्र बाबू हँस दिए, ''अरे भई, अगर लेना ही होता तो मैं भी पहले ही न ले लेता, बाद में क्यों लेता?''

मगर उसने फिर जोर दिया, ''नहीं बाबूजी, कुछ तो···मैं अपनी खुशी से दे रहा हूँ।''

''अच्छा···'' राजेंद्र बाबू ने कुछ सोचते हुए प्रश्न किया, ''यह बता, तेरी घरवाली है?''

''हाँ, है।'' सुनकर वह अचकचा सा गया।

राजेंद्र बाबू ने फिर पूछा, ''कुछ बनाना-खिलाना भी जानती है?''

''हाँ बाबूजी, खाना-वाना सबकुछ अच्छा बना लेती है।'' वह सोच रहा था, यह बाबूजी क्या ऊटपटाँग सा प्रश्न पूछ रहे हैं?

''तो एक काम करना, उसके हाथ की बनी हुई कोई भी चीज या पकवान, जो भी वह बढ़िया बनाती हो, लाकर मुझे खिला देना। समझो तुम्हारा फर्ज और कर्ज दोनों पूरे हो गए। मुझे घर की बनी हुई चीजें बहुत पसंद हैं।''

''ठीक है, बाबूजी।'' कहकर वह इस अनोखी माँग के बारे में सोचता हुआ वहाँ से चला गया।

समझदारी

''यार, तुम्हारे पड़ोसी से न तो तुम्हारा धर्म मिलता है, न जात-पाँत, न रहन-सहन, न विचार या स्वभाव तथा न ही कोई और खास बात, कुछ भी तो नहीं है, जो तुम्हारा एवं उसका मेल हो? फिर भी समझ नहीं आता कि तुम्हारे दोनों परिवारों में परस्पर इतना मेलजोल और भाईचारा कैसे है?'' दोस्त ने हैरानी प्रकट करते हुए उससे पूछा।

''एक चीज है, जो हम दोनों में बिल्कुल एक जैसी है और वह है हमारी समझदारी।'' उसने उत्तर दिया।

''कैसी समझदारी?'' दोस्त और उलझ गया।

''पड़ोसी धर्म निभाने की समझदारी! तुम तो जानते ही हो कि आजकल सभी जगह एकल परिवारों का प्रचलन बढ़ गया है, कुछ जानकर और कुछ मजबूरीवश। मैं भी मजबूरी में यहाँ अपने परिवार से दूर रह रहा हूँ तथा यही बात मेरे पड़ोसी पर भी लागू होती है। यदि आज किसी भी परिवार पर किसी भी प्रकार का कोई संकट आता है तो सबसे पहले कौन काम आता है?'' वह पूछ रहा था।

''पड़ोसी···'' दोस्त ने हामी भरी।

वह मुसकराया, ''तो यह बात वह भी समझता है और मैं भी। इसलिए हम दोनों परिवार इतने विरोधाभासों के बावजूद एक-दूसरे के साथ मिल-जुलकर और भाईचारे से रहते हैं, ताकि जिंदगी में कभी कोई परेशानी न आए। वैसे रोजमर्रा के छोटे-मोटे कामों में भी हम एक-दूसरे की सुविधा का खयाल रखते हैं। वे हमारे काम आते हैं और हम उनके।''

प्लॉट नं. १९, सैनिक विहार
सामने विकास पब्लिक स्कूल
जंडली, अंबाला-१३४००५ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९४१६८६०४४५

व्यंग्य

छुँयाल

● राजेश्वर उनियाल

यदि ब्रह्मापुत्र नारदजी नर न होकर नारी होते तो निश्चित रूप से वे हमारे पहाड़ के किसी गाँव की छुँयाल ही होते। हालाँकि छुँयाल का शाब्दिक अर्थ होता है 'बातूनी', अर्थात् खूब बात करनेवाली महिला। परंतु उत्तराखंड में सामान्यत: छुँयाल उस महिला के लिए संबोधित किया जाता है, जो कि इधर की उधर और उधर की इधर करने में माहिर हो।

छुँयाल शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई, यह शोध का विषय हो सकता है। परंतु छुँयाल शब्द छुँ धातु में याल प्रत्यय लगाने से बना है। छुँ का अर्थ है—होना अर्थात् उपस्थिति। जैसे—कु छ, जी मैं छुँ (कौन है, जी मैं हूँ)। शायद छुँयाल को छुँयाल कहते भी इसीलिए हैं कि वह जहाँ भी मौजूद हो, अपनी उपस्थिति का आभास करा ही देती है, अर्थात् वह चुप तो नहीं बैठेगी, कुछ-न-कुछ बोलेगी जरूर।

छुँ के साथ याल प्रत्यय भी शायद सोच-समझकर लगाया गया है। उत्तराखंड में याल, जाति या समाजबोधक भी होता है। जैसे उणि गाँव के रहनेवाले उनियाल, नौटि गाँव के नौटियाल, थापलि के थपलियाल वगैरह। इसी प्रकार हो सकता है कि चार-छह शताब्दी पहले उत्तराखड में छुँ नामक कोई गाँव रहा हो, जिस गाँव की नारियों को नौटियाल, थपलियाल, उनियाल की तरह छुँयाल कहा जाता रहा हो, जैसे—श्रीमती गरिमा देवी छुँयाल।

अब कल्पना करें कि अगर किसी एक गाँव की सारी महिलाएँ छुँयाल ही हों तो उस गाँव की हालत क्या होगी? अब जब सारी महिलाएँ छुँयाल हैं तो सुनेगा कौन? सारी महिलाएँ बड़बड़ करने में लगी रहेंगी तो कौए अपनी पाठशालाओं में नन्हे कौओं को शांत कराते हुए कहेंगे कि 'क्या छुँयालों की तरह चपड़-चपड़ लगा रखी है। कौए हो तो कौओं की तरह रहो।'

शायद इसीलिए विधाता ने सभी छुँयालों को अलग-अलग कर एक-एक गाँव में बसा दिया, अर्थात् हर गाँव में एक छुँयाल। हर गाँव में कम-से-कम एक छुँयाल तो अवश्य मिल जाएगी। अब अगर गाँव थोड़ा बड़ा हो तो वहाँ दो या तीन छुँयालें भी हो सकती हैं। बस इससे ज्यादा नहीं। इससे ज्यादा छुँयाल हो गईं तो वे करेंगी क्या?

अब अगर एक ही छुँयाल है तो वह रामी की बात गार्गी को व गार्गी की बात जयंती को तथा जयंती की बात रामी को अपने अंदाज में व मौके की नजाकत देखकर ही सुनाएगी। अब कल्पना कीजिए कि अगर उस गाँव में दो या तीन छुँयालें हो गईं तो क्या होगा। इससे पहले कि पहली छुँयाल रामी की बात गार्गी को बताए, दूसरी छुँयाल गार्गी की बात जयंती को बता देगी और फिर जयंती व रामी मिलकर गार्गी के यहाँ गुस्से में पहुँचेंगी, जहाँ कि पहलीवाली छुँयाल पहले से ही मौजूद है।

जाने-माने साहित्यकार। 'शैल सागर' *(काव्य कृति)*; 'पंदेरा व भाड़े का रिक्शा' *(उपन्यास)*; 'डरना नहीं पर···' *(कहानी-संग्रह)*; 'तीलू रौतेली' *(नाटक)* चर्चित। 'उत्तरांचली लोक-साहित्य' व 'हिंदी लोक साहित्य' का प्रबंधन तथा संपादन सहित १२०० से अधिक वैज्ञानिक/राजभाषा/साहित्यिक व लोकप्रिय रचनाएँ प्रकाशित। छोटे-बड़े ३२ पुरस्कार प्राप्त।

अब लड़ाई-झगड़ा व गाली-गलौच के दौर से जो नुकसान होगा, वह तो अलग बात है, पर पहली वाली छुँयाल का नेटवर्क अब गार्गी से आगे नहीं बढ़ सकता है। अर्थात् मार्केट बंद। फिर क्या फायदा हुआ छुँयाल होने का? अब आप ही बताएँ कि अगर स्वर्गलोक में दो नारद होते, तो क्या इतने पुराणों की रचना व देव-लीलाएँ हो पातीं?

इसी तरह छुँयाल को तुर्की में 'गरदन' कहते हैं। हो सकता है कि छुँयाल शब्द की उत्पत्ति उतराखंड के छुँ एवं तुर्की के याल से हुई हो। अर्थात् छुँयाल उत्तराखंडी व तुर्की का संकर शब्द भी हो सकता है। मानव विज्ञान के अनुसार भी छुँई बात लगाने, जानने व सुनने के लिए कान ही नहीं, बल्कि ऊँची गरदन की भी आवश्यकता होती है। अर्थात् आप बैठे-बैठे गरदन ऊँची कर चुपके-चुपके दूसरों की बात जिस आसानी के साथ सुन सकें, ठीक उसी तरह गरदन ऊँची कर अपनी बात दूसरों के कान में आसानी के साथ चुपके से पहुँचा भी सकती हैं। अर्थात् जिसकी जितनी ऊँची गरदन, वह उतनी बड़ी छुँयाल।

जिस प्रकार से याल को तुर्की में गरदन कहते हैं, उसी प्रकार से नारद के नार शब्द का अर्थ भी छुँयाल के याल की तरह गरदन ही होता है। वैसे नारद का संधि विच्छेद ना एवं रद से किया जा सकता है। ना का अर्थ होता है ना, यानी नकारना। परंतु उत्तराखंड में ना शब्द किसी का ध्यान आकर्षित करने के लिए भी किया जाता है। ना, वेन बोलि कि ना···। इसी प्रकार रद का अर्थ उल्टी से भी होता है, अर्थात् सबकुछ उगल देना। संभवत: इसीलिए नारदजी के पेट में कुछ भी बात नहीं पचती है, ठीक छुँयाल की तरह।

वैसे तुर्की के घोड़े भी बहुत प्रसिद्ध होते हैं। अब घोड़ों की एक विशेषता यह भी होती है कि वे बिना दाएँ-बाएँ देखे सीधे आगे बढ़ते रहते हैं, ठीक छुँयाल की तरह। वह भी बिना दाएँ-बाएँ देखे ठीक उसी भद्र महिला के पास पहुँचती है, जिसे कि उसे अपनी बात सुनानी होती है।

छुँयालों का वर्णन आधुनिक गीत-कविताओं में भी भरपूर उपलब्ध है। उत्तराखंड के लोकगायक श्री नरेंद्र सिंह नेगीजी का वह गीत तो सभी को पता होगा—

'दूर चलिगै, माना अब तु, आसमान हवे गई·· यख छुयॉलोन छुईं लगेन।'

राजेश्वर उनियाल की 'शैलसागर' काव्यकृति में भी पहाड़न को संबोधित कर लिखा है—

'बहती नहीं हवा इतनी, फैलती उनकी बातें जितनी,

कानों ही कानों में कहती, पर छुँयाल की पदवी पाती।'

हिंदी के साहित्यकारों ने नौ रस का वर्णन किया है। दसवें रस का उन्हें बोध ही नहीं हुआ। यदि वे विद्वत्जन अपने अध्ययन का कुछ काल उत्तराखंड के किसी गाँव में बिताकर किसी छुँयाल के संपर्क में आते तो उन्हें ज्ञात होता कि परनिंदा भी एक महत्त्वपूर्ण रस है। यह साहित्य का दसवाँ रस बन जाता।

पर ऐसा ही नहीं है कि छुँयाल इधर की उधर ही करती हों। छुँयाल लोग कई बार बिगड़ती बात को बनाने, अर्थात् सुधारने में भी माहिर होती हैं। अब होता यह है कि छुँयाल गाँव की लगभग सभी महिलाओं की अंतरंग सखी भी होती हैं। इसलिए वह हर घर की कहानी भी जानती है। वह अकसर लोगों का मनमुटाव दूर करने व आपसी संबंध बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

इसी के साथ ग्रामीण समाज में छुँयाल लोगों का संप्रेषण में भी बहुत महत्त्व होता है। कभी किसी को अपनी बात किसी और तक पहुँचानी हो और वह पहुँचा नहीं पा रही हो तो वह बस मौका देखकर अपनी बात छुँयाल के कानों तक पहुँचा देती है। बस अब आगे का नेटवर्क अपने आप काम करेगा। हाँ, यह ध्यान जरूर रखना पड़ता है कि आपको अपनी बात जिस महिला तक पहुँचानी हो, आपको छुँयाल से बात करते समय इन शब्दों का प्रयोग बार-बार अवश्य करना पड़ता है कि फलणि माँ नि बोली हाँ (उससे मत कहना, हाँ)। अब आप निश्चित हो जाएँ। अब यह बात किसी और तक चाहे पहुँचे या न पहुँचे, पर उस महिला तक तो अवश्य ही पहुँच जाएगी, जिसको आप पहुँचाना चाहते थे।

छुँयाल समुदाय की एक और विशेषता होती है कि ये लोग अकसर दूसरी महिला से तीसरी की ही बात करती हैं। ये अपने विषय में, अपने जीवन के विषय में कभी भी कुछ नहीं कहती हैं। शायद कह भी नहीं पाती हैं। अब इनके हार्डडिस्क की मेमोरी में बाकी लोगों की इतनी जानकारियाँ भरी होती हैं कि इसमें निजी जीवन की बातों के लिए जगह ही नहीं बचती है। हाँ, दिल में जगह के साथ ही इनके पास समय भी कम रहता है। अब किसी की बात करनी हो तो उसके लिए पहले तो लंबी भूमिका बनानी पड़ती है। फिर विश्वास जीतना होता है, फिर धीरे-धीरे कसम देते हुए बात आगे बढ़ाना। फिर समय ही कहाँ बचता है कि कुछ अपनी बात भी कह सकें।

वैसे छुँ शब्द से छुँई व छुँईबात भी परिभाषित की जा सकती है। छुँयाल बात करते-करते कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाती है कि पता ही नहीं चलता। अगर धारावाहिक निर्माता एकता कपूर का कभी किसी छुँयाल से परिचय हो जाए तो बस दूरदर्शन के किसी चैनल पर अनंत काल के लिए पारिवारिक धारावाहिक शुरू हो जाएगा। पर क्या करें, पहाड़ों की बातें पहाड़ों में ही रह जाती हैं। पलायन तो उनका होता है, जिन्होंने किताबी शिक्षा ली हो। अब किताबें तो दिल्ली व मुंबई में भी मिल जाती हैं। इसलिए उनका उतना महत्त्व नहीं होता है। हाँ, आप किसी छुँयाल के साथ कुछ दिन बिताकर युगों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, पर लोकज्ञान से संपन्न होते हुए भी वह किताबी ज्ञान से दूर होती हैं। इसलिए बेचारी आधुनिक विज्ञान के युग में भी ग्रामीण इ-मेल व चैटिंग की पारंपरिक परंपरा को ही निभा रही हैं।

'छुँयाल' स्त्रीवाचक शब्द ही नहीं है, बल्कि यह शब्द बना ही स्त्रियों के लिए है। इसमें स्त्रियों का एकाधिकार है। छुँयाल स्त्री ही हो सकती है, पुरुष नहीं। पुरुष को आप ज्यादा-से-ज्यादा बातूनी या गपोड़ कह सकते हैं, पर छुँयाल नहीं। छुँयाल स्त्री का गहना है, जो स्त्रियों के कंठ पर ही सुहाता है। छुँयालों की एक और विशेषता यह भी होती है कि इन्हें भले ही सर्दी हो, गरमी हो या बुखार आए, पर इन्हें गैस की बीमारी कभी नहीं होती है। आखिर होगी भी कैसे? जब पेट में कुछ बचेगा ही नहीं तो कैसे होगी। हाँ, यह बात अलग है कि वह जिससे अपनी बात कर रही हो, भले ही उसे गैस हो जाए, पर छुँयाल को गैस की बीमारी कभी नहीं हो सकती। अब जब गैस ही नहीं है तो पेट दर्द या सिर दर्द का भी सवाल ही नहीं उठता। शायद इसीलिए छुँयाल हमेशा तरोताजा रहती है।

हिंदी के साहित्यकारों ने नौ रस का वर्णन किया है। दसवें रस का उन्हें बोध ही नहीं हुआ। यदि वे विद्वत्जन अपने अध्ययन का कुछ काल उत्तराखंड के किसी गाँव में बिताकर किसी छुँयाल के संपर्क में आते तो उन्हें ज्ञात होता कि परनिंदा भी एक महत्त्वपूर्ण रस है। यह साहित्य का दसवाँ रस बन जाता। शायद अब तक उत्तराखंड की सरकार इस दसवें रस का पेटेंट करा चुकी होती।

छुँयालों की एक और विशेषता यह भी होती है कि इनकी स्मरण-शक्ति व बोलने की गति दोनों कभी कम नहीं होतीं। यह कोई रेडियो की बैटरी या टी.वी. के पावर से नहीं चलतीं, जो कि खत्म हो जाए। इसी के साथ इन्हें रेडियो व टी.वी. की तरह बंद भी नहीं किया जा सकता है। पहाड़ों की लंबी रातें, पंदेरे का ठंडा वातावरण एवं लकड़ी व घास आदि काटते वक्त इनके अंदर छुँयाल रूपी ऊर्जा उत्पन्न होती है। ये अकसर तभी चुप होती हैं, जब छुँयाल की वार्त्ता के मध्य घर का छोटा बच्चा रोने लगे या फिर सास खाँसकर अपनी नाराजगी जताए। नहीं तो यह गंगा-जमुना की तरह अनवरत बहती रहती हैं और सदा बहती रहेंगी।

पंच मार्ग, यारी रोड, वरसोवा
केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई-४०००६१
दूरभाष : ०९८६९११६७८४

बूढ़ा बावरची

रूसी कहानी

मूल : **कोन्सवंतीन पाउस्तोव्स्वी**

अनुवाद : **सुशीला गुप्ता**

सन् १७८६ की जाड़े की शाम थी। काउंटेस तून का भूतपूर्व अंधा बावरची वियना की सीमा पर एक छोटे से लकड़ी के घर में जिंदगी की अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था। वस्तुत: जहाँ वह रहता था, वह कहने लायक भी घर नहीं था, वरन् बगीचे के निचले हिस्से में स्थित नौकरों के रहने का एक पुराना सा लॉज था। बगीचा सड़ी हुई डालियों से भरा पड़ा था, जिन्हें हवा के झोंकों ने चारों ओर बिखेर दिया था। चलते समय कदम-कदम पर डालियाँ चरमरा उठती थीं और तब बूढ़ा कुत्ता अपने स्थान से ही धीरे से गुर्रा उठता था। कुत्ता भी अपने मालिक की तरह अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था और अब भौंक भी नहीं सकता था।

कुछ वर्षों पूर्व तंदूर के ताप के कारण बावरची अंधा हो गया था। असमर्थ बूढ़े को काउंटेस के कारिंदे ने लॉज में भेज दिया था और ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि समय-समय पर पेट भरने लायक उसे कुछ पैसे मिल जाया करें।

बावरची के साथ उसकी अठारह वर्षीय लड़की मारिया रहती थी। फर्नीचर के नाम पर लॉज में एक खाट, कुछ पुराने बेंच, एक खुरदुरी मेज, कुछ टूटे-फूटे मिट्टी के बरतन थे और था एक हार्प्सीकॉर्ड, मारिया की एकमात्र संपत्ति।

हार्प्सीकॉर्ड इतना पुराना था कि उसके तार जरा-सा भी झनझना उठते तो उसकी प्रतिध्वनि देर तक गूँजती रहती। बावरची मजाक में उस हार्प को घर का रखवाला कहा करता। जैसे ही घर के अंदर कोई घुसता, हार्प की काँपती हुई ध्वनि से उसका स्वागत होता।

मारिया ने जब बूढ़े के हाथ-पैर धुलवा दिए और साफ-सुथरी कमीज पहना दी तो उसने कहा, ''मैंने सदैव पुरोहितों और संन्यासियों को नापसंद किया है। मैं किसी पादरी को बुला नहीं सकता, परंतु मृत्यु से पूर्व अपनी अंतरात्मा के पाप को धोना चाहता हूँ।''

''मुझे क्या करना होगा?'' भयाकुल सी आवाज में मारिया ने पूछा।

बूढ़े ने कहा, ''बाहर जाओ और जैसे ही किसी व्यक्ति पर तुम्हारी दृष्टि पड़े, उससे कहना कि मेरे घर चलिए और दम तोड़ते हुए एक इनसान की स्वीकारोक्ति सुन लीजिए। इससे कोई भी इनकार नहीं करेगा।''

''इस सड़क पर आते ही कितने लोग हैं।'' मारिया फुसफुसाई। उसने अपना शॉल उठाया और बाहर निकल गई।

उसने बगीचे को पार किया, बड़ी कठिनाई से जंग लगे फाटक को खोला और बाहर आ गई। सड़क सुनसान थी। हवा के झोंकों से पत्तियाँ उड़ रही थीं और सुरमई आकाश से बारिश की शीतल बूँदें झर रही थीं।

बड़ी देर तक मारिया सड़क पर इंतजार करती रही। सहसा उसे लगा कि चहारदीवारी से होकर कोई मनुष्य गुनगुनाता हुआ उसकी तरफ आ रहा है। वह तेजी से भागी और उसे झकझोरते हुए चिल्ला उठी।

अजनबी ठहर गया और बोला, ''कौन है?''

मारिया ने उसकी बाँहें पकड़ लीं और काँपती हुई आवाज में अपने पिता की प्रार्थना कह सुनाई।

अजनबी बोला, ''बहुत अच्छा! मैं पादरी तो नहीं हूँ, लेकिन कोई बात नहीं। आओ, चलें।''

दोनों ने घर में प्रवेश किया। मोमबत्ती के प्रकाश में मारिया ने देखा, अजनबी एक छोटा सा दुबला-पतला मनुष्य है। उसने अपने गीले लबादे को बेंच पर रख दिया। उसकी वेशभूषा सादगीपूर्ण और सुरुचिपूर्ण थी। मोमबत्ती की रोशनी में उसकी पोशाक मारिया को बड़ी अच्छी लगी।

अजनबी की उम्र अधिक नहीं थी। उसने झटके से सिर हिलाया, हैट को ठीक किया और स्टूल खींचकर खाट के पास बैठ गया। फिर कुछ क्षण तक बूढ़े के चेहरे की ओर एकटक गौर से देखता हुआ बोला, ''शुरू करो। शायद ईश्वरप्रदत्त शक्ति के द्वारा तो नहीं, पर जिस कला की मैं उपासना करता हूँ, उसकी शक्ति से मैं तुम्हारे मन को शांति पहुँचाऊँगा और तुम्हारी आत्मा का बोझ हल्का कर सकूँगा।''

बूढ़े ने अजनबी को अपने नजदीक खींचते हुए क्षीण आवाज में कहा, ''जब तक मेरी आँखें सही-सलामत थीं, मैंने निरंतर काम किया और जो इनसान काम करता है, उसके पास पाप करने के लिए अवकाश नहीं होता। जब मेरी पत्नी मार्था गर्भवती हुई तो डॉक्टर ने उसे बड़ी महँगी दवाइयाँ देने के लिए कहा और बताया कि उसे अंजीर के साथ क्रीम खिलाओ और लाल गरम शराब पिलाओ। मैंने काउंटेस तून के डिनर सेट से एक सोने की तश्तरी चुरा ली और उसके छोटे-छोटे टुकड़े करके बाजार में बेच दिया। इस समय उस बात के स्मरण मात्र से मुझे पीड़ा हो रही है। अपनी ही संतान से उस बात को छिपाकर मैं घुटन सी महसूस कर रहा हूँ। मैंने उसे हमेशा यही सिखाया है कि बेटा, दूसरे की मेज से धूल के एक कण को भी हाथ नहीं लगाना।''

''क्या काउंटेस के नौकरों में से किसी को इसके लिए सजा भुगतनी पड़ी?'' अजनबी ने पूछा।

''मैं कसम खाता हूँ सर, किसी को भी नहीं।'' बूढ़े ने उत्तर दिया और वह फूट-फूटकर रो पड़ा, यदि मुझे स्वप्न में भी इसका खयाल होता कि उस सोने के टुकड़े से मार्था का भला नहीं होगा तो क्या मैंने चोरी की होती?''

''तुम्हारा नाम क्या है?''

''जोहान मेयर, सर।''

''अच्छा, जोहान मेयर।'' अपनी हथेली को बूढ़े की अंधी आँखों पर रखते हुए अजनबी ने कहा, ''तुम निर्दोष हो। जो कुछ तुमने किया, वह न तो पाप है और न चोरी, बल्कि इसको तो दया का कार्य कहा जा सकता है।''

''आमीन!'' बूढ़ा फुसफुसाया।

''आमीन!'' अजनबी ने दुहराया, ''अब बोलो, तुम्हारी आखिरी ख्वाहिश क्या है?''

''मैं चाहता हूँ कि कोई मारिया का भार अपने ऊपर ले ले।''

''मैं ले लूँगा। तुम्हारी और क्या ख्वाहिश है?''

सहसा बूढ़े के मुख पर अप्रत्याशित मुसकान खिल गई। वह ऊँचे स्वर में बोला, ''एक बार फिर मैं मार्था को उसी रूप में देखना चाहता हूँ और इस पुराने बगीचे में वसंत की बहार देखना चाहता हूँ, लेकिन यह नामुमकिन है। सर, मेरी ऊटपटाँग बातों से नाराज मत होना। बीमारी के कारण मेरा चित्त अस्थिर हो गया है।''

''ठीक है, ठीक है,'' कहते हुए अजनबी उठा और हार्प्सीकॉर्ड के पास जाकर स्टूल पर बैठ गया। ऊँचे स्वर में उसने तीसरी बार कहा, ''ठीक है।'' और अचानक हार्प्सीकॉर्ड के तार झनझना उठे, मानो फर्श पर सैकड़ों क्रिस्टल बॉल गिर पड़े हों।

''गौर से सुनो।'' अजनबी ने कहा, ''गौर से सुनो और देखो।''

''अजनबी ने तारों को छेड़ा। उनमें कंपन उत्पन्न हुआ, तो मारिया ने पहचान लिया कि वह कौन है, जिसकी भौंहों में असाधारण सी उदासी घिर आई थी और जिसकी काली आँखों में मोमबत्ती की लौ काँप-काँप उठती थी। वर्षों बाद हार्प्सीकॉर्ड से पहली बार ऐसा श्रेष्ठ संगीत उत्पन्न हो रहा था, जिसकी ध्वनि से लॉज ही नहीं, वरन् पूरा बगीचा गूँज उठा। बूढ़ा कुत्ता अपनी जगह से बाहर निकला और चुपचाप बैठ गया। उसकी गरदन एक ओर झुकी हुई थी, कान खड़े थे और पूँछ धीरे-धीरे हिल रही थी। बर्फ गिरने लगी थी, लेकिन कुत्ता अपनी जगह से नहीं हिला, केवल कानों को झटक देता था।

बिस्तर से सिर उठाते ही बूढ़े ने कहा, ''सर, वह दिन मेरी आँखों के सामने है, जब मैं मार्था से मिला था और घबराहट में उसके हाथ से दूध भरा जग छूट गया था। जाड़ों के दिन थे, हम पहाड़ों पर रहते थे। नीले काँच की तरह आकाश स्वच्छ था और मार्था हँस रही थी।'' वाद्य-यंत्र की स्वर-लहरी में डूबते हुए बूढ़े ने दुहराया, ''वह हँस रही थी।''

अँधेरे में खिड़की के बाहर देखता हुआ अजनबी लगातार हार्प्सीकॉर्ड बजाए जा रहा था। उसने पूछा, ''और अब तुम्हें कुछ दिखाई दे रहा है?''

बूढ़े ने अजनबी की बातों को गौर से सुना, पर कुछ नहीं बोला।

''क्या सचमुच तुम कुछ नहीं देख रहे हो?'' हार्प्सीकॉर्ड बजाते हुए अजनबी ने शीघ्रतापूर्वक कहा, ''क्या तुम नहीं देख रहे हो कि काली अँधेरी रात गहरे नीले रंग में और फिर हलके नीले रंग में बदल गई है तथा ऊपर से रोशनी छन-छनकर आ रही है। तुम्हारे वृक्षों की पुरानी डालियों पर सफेद मंजरियाँ प्रस्फुटित हो रही हैं। मुझे तो लगता है, सेब के फूल खिल रहे हैं; यद्यपि यहाँ कमरे से वे बड़े-बड़े ट्यूलिप से प्रतीत हो रहे हैं। देखो तो सही, सूरज की पहली किरण पत्थर की चहारदीवारी पर गिरी है और उसकी गरमी से भाप उड़ रही है। और देखो, वह काई पिघलती हुई बर्फ से भरी हुई, जो अब सूख रही है। आकाश कितना ऊँचा दिखाई दे रहा है, नीला-पीला सा और कितना भव्य! चिड़ियों के झुंड-के-झुंड हमारी वियना के ऊपर उत्तर दिशा की ओर उड़े जा रहे हैं।''

''मुझे वह सब दिखाई दे रहा है।'' बूढ़ा चिल्ला उठा। हार्प्सीकॉर्ड से आनंदमय ध्वनि उत्पन्न हो रही थी, मानो वह ध्वनि तारों में से न उत्पन्न होकर कई मुखों से एक साथ मुखरित हुई हो।

''नहीं सर,'' मारिया ने अजनबी से कहा, ''वे फूल ट्यूलिप की तरह बिल्कुल नहीं हैं। वे सब सेब के वृक्ष हैं, जो रातोरात फूलों से लद गए हैं।''

''हाँ,'' अजनबी ने उत्तर दिया ''ये सब सेब के वृक्ष हैं, लेकिन उनकी पँखुड़ियाँ कितनी बड़ी-बड़ी हैं।''

''मारिया! बेटा जरा खिड़की तो खोलना!'' बूढ़े ने गद्‌गद स्वर में कहा।

मारिया ने खिड़की खोल दी। कमरे में हवा का तेज झोंका आया। अजनबी धीरे-धीरे हार्प्सीकॉर्ड बजाता रहा।

बूढ़ा तकिए पर लुढ़क गया। उसकी साँस फूलने लगी और उसके हाथ कंबल पर कुछ टटोलने लगे। मारिया उसकी ओर तेजी से दौड़ी। अजनबी ने हार्प्सीकॉर्ड बजाना बंद कर दिया। अपनी ही संगीत-लहरी से स्तब्ध वह हार्प्सीकॉर्ड के पास चुपचाप बैठा रहा।

मारिया चीख पड़ी। अजनबी उठा और खाट की ओर बढ़ा। बूढ़े ने बड़ी कठिनाई से साँस लेते हुए कहा, ''मैंने सबकुछ बहुत साफ-साफ देखा, लेकिन मेरे प्राण तब तक नहीं निकलेंगे, जब तक मुझे यह न मालूम हो जाए कि तुम्हारा नाम क्या है।''

''मेरा नाम वोल्फगांग आमडेयुस मोजार्ट है।'' अजनबी ने उत्तर दिया।

मारिया खाट के पास से उठकर महान् संगीतज्ञ के पास आई और घुटने के बल बैठ कुछ क्षण सिर झुकाए रही।

गरदन उठाते ही उसने देखा, उसका पिता अब इस दुनिया में नहीं है। खिड़कियों के बाहर उषा का आगमन हो रहा था और उसका प्रकाश हिम-पुष्पों से लदे हुए बगीचे में धीरे-धीरे फैल रहा था।

साअ

विशेष कार्य अधिकारी
हिंदुस्तानी प्रचार सभा
महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग
७ नेताजी सुभाष रोड
मुंबई-४००००२

मेरी कच्छ यात्रा

● ऋषि राज

जब भी कभी टी.वी. पर अमिताभ बच्चन को गुजरात टूरिज्म की ओर से बोलते देखता 'कच्छ नहीं देखा तो कुछ नहीं देखा', तो मेरे दिल में एक अजीब सी टीस या कह सकते हैं कि पीड़ा सी उठ जाती थी, क्योंकि फरवरी २०१६ से पहले तक मैं कच्छ-दर्शन नहीं कर पाया था, और ऐसा नहीं है कि मैंने कभी प्रयास नहीं किया था। प्रयास तो वर्ष २०१० से जारी थे, पर हर बार कुछ-न-कुछ ऐसा हो जाता था कि मुझे कार्यक्रम निरस्त करना ही पड़ता था। यकीन मानिए, ऐसा मेरे साथ कभी किसी अन्य स्थान पर जाने के लिए नहीं हुआ, पर न जाने क्यों, कच्छ और मेरी राशि मिल ही नहीं पा रही थी।

गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में फैला 'कच्छ का रण' भारत का एक अत्यंत दुर्लभ भू-भाग है, जो वर्ष के चंद महीने ही दीदार के लिए उपलब्ध हो पाता है। समुद्र का पानी धरती से कई मील पीछे खिसक जाता है और अपने पीछे छोड़ जाता है, एक सफेद नमक की चादर। दूर-दूर तक जहाँ नजर दौड़ाओ—बस सफेद नमक की चादर ही दिखाई पड़ती है। यकीन मानिए, यह नजारा भारत में और कहीं देखने को नहीं मिलता है। इन्हीं जगहों को देखने की उत्सुकता मुझे कच्छ की ओर ले चली।

अपने चार अन्य साथियों राजेश डागर, गजराज सिंह, मल्होत्राजी और परमजीत के साथ दिल्ली कैंट से अहमदाबाद राजधानी पकड़ अगली सुबह सात बजे पालनपुर पहुँच गया। वहाँ रेलवे के विश्राम गृह में नहा-धोकर पहले दिन की यात्रा का आगाज किया। शाम तक हमें समुद्र तट पर बसे 'मांडवी' पहुँचना था। कुल मिलाकर ४०२ कि.मी. का फासला तय करना था। कोई अन्य राज्य होता तो यह काम काफी कठिन होता, पर गुजरात होने के कारण मुझे उम्मीद थी कि हम यह दूरी ७-८ घंटों में पूरी कर लेंगे, क्योंकि गुजरात की सड़कें बहुत बढ़िया हैं, और हुआ भी ऐसा ही। पाटन, भचाचू, गांधीधाम और मुंद्रा होते हुए हम आराम से मांडवी पहुँच गए।

दोपहर को गांधीधाम पहुँचकर मेरी भेंट मेरे रेलवे के मित्र सुनील गुप्ता से हुई, जो कि पश्चिम रेलवे में हैं और अभी गांधीधाम में सहायक ट्रैफिक मैनेजर के पद पर नियुक्त हैं। सुनील भाई ने जिस प्यार से हमारा आतिथ्य किया, वह भुलाना नामुमकिन है, भोजन के पश्चात् हमने वहाँ से प्रस्थान किया और शाम चार बजे मांडवी पर दस्तक दी।

सबसे पहले हम स्वतंत्रता सेनानी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा के जन्मस्थान पर बने स्मारक को देखने गए और वहाँ उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित

जाने-माने लेखक एवं अधिकारी। भ्रमण के शौकीन। 'यात्रा पर कैलाशदर्शन : कुछ यादें, कुछ बातें' पुस्तक प्रकाशित। डॉक्यूमेंटरी फिल्मों का निर्माण। पर्यटन मंत्रालय का 'राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार'। संप्रति दिल्ली मेट्रो में डिप्टी जनरल मैनेजर/ऑपरेशंस।

की। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में 'इंडिया हाउस' की स्थापना की, जो इंग्लैंड जाकर पढ़नेवाले भारतीय छात्रों का मुख्य केंद्र था, और इसी स्थान पर सभी छात्र मिलकर विचार-विमर्श करते और भारत की आजादी पर परस्पर योजनाएँ बनाते रहते। इस तरह वर्माजी भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के लिए निरंतर कार्य करते रहे। वर्ष १९३० में जिनेवा में श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा का देहांत हुआ, पर उनकी अंतिम इच्छा थी कि उनकी अस्थियों को केवल आजाद भारत में ही ले जाया जाए। २२ अगस्त, २००३ में भारत की स्वतंत्रता के ५५ वर्ष बाद गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी श्यामजी कृष्ण वर्मा और उनकी पत्नी भानुमती की अस्थियों को लेकर मांडवी आए और उनकी अंतिम इच्छा को पूरा किया। लंदन में जिस इंडिया हाउस में वे रहा करते थे, उसकी हूबहू ईमारत का निर्माण यहाँ किया गया है। वर्मा दंपती की अस्थियाँ आज भी यहाँ रखी गई हैं। मांडवी बीच पर हमारा कमरा यहाँ के सर्किट हाउस में आरक्षित था। पहले तो सभी साथियों ने जी भरकर समुद्र में गोते मारे, मांडवी बीच पर सूर्यास्त का नजारा यादगार था। उसी दिन एशिया कप में भारत और पाकिस्तान का क्रिकेट मैच था, जिसका हम सबने भरपूर आनंद उठाया।

मौसम अत्यंत सुहावना था। समुद्र तट होने की वजह से हवा ठंडी चल रही थी और हमें थोड़ी सर्दी का भी एहसास हो रहा था। मैच खत्म होने के बाद हम भ्रमण के लिए निकले तो तारे ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे हाथ थोड़ा ऊपर कर उनको मुट्ठी में कैद कर लो। बिल्कुल अद्‌भुत, उनसे नजरें हटाना मुश्किल हो रहा था। सप्तर्षि तारामंडल पूर्णत: दिखाई दे रहा था। दिल्ली जैसे प्रदूषित शहर में रहने की वजह से साफ आसमान और तारे देखे अरसा हो गया था। सर्किट हाउस में कमरे का नाम नदियों के नाम पर रखा हुआ है। मेरे सुईट का नाम नर्मदा नदी के नाम पर था। देखकर अच्छा लगा।

सुबह तड़के ही नलिया होते हुए नारायण सरोवर की ओर चल पड़े, जो कि मांडवी से १४० कि.मी. दूर है। नारायण सरोवर कोटेश्वर महादेव

से मात्र २ किलोमीटर की दूरी पर है। नारायण सरोवर का अर्थ है, 'विष्णु का सरोवर'। यहाँ कभी सिंधु नदी का अरब सागर से संगम होता था। कहा जाता है, नारायण सरोवर का दर्जा मानसरोवर के बराबर है। यहाँ दर्शन करने के बाद हम २ कि.मी. दूर कोटेश्वर महादेव के दर्शनों को चल पड़े। कोटेश्वर गुजरात में भारत के सबसे पश्चिमी कोने पर स्थित है। कहा जाता है कि एक बार जब रावण शिव से प्राप्त शिवलिंग को लंका लेकर जा रहा था, ईश्वर को यह मंजूर नहीं था, तब उन्होंने लीला रची और रावण को शिवलिंग को नीचे रखने पर मजबूर कर दिया और शर्त अनुसार शिवलिंग यहीं स्थापित हो गया। रावण ने शिवलिंग को पूरी शक्ति से खींचा, पर शिवलिंग कहाँ उठनेवाला था, लेकिन शिवलिंग पर रावण की उँगलियों के निशान आ गए, जो आज भी देखे जा सकते हैं। कहा जाता है कि रावण ने तीन बार तपस्या कर शिव से शिवलिंग प्राप्त किया, पर हर बार किसी-न-किसी वजह से वह धरती पर ही स्थापित हो गया। कोटेश्वर के अलावा ऐसे दो शिव स्थल हैं—झारखंड में देवघर और कर्नाटक में मुरुदेश्वर।

कोटेश्वर में बी.एस.एफ. का जल दस्ता भी है। पाकिस्तान का कराची क्षेत्र यहाँ से काफी नजदीक पड़ता है। यहाँ पर लगातार पेट्रोलिंग होती रहती है। बी.एस.एफ. का आधिकारिक मेहमान होने की वजह से असिस्टेंट कमांडेंटजी ने हमें पूरे क्षेत्र के बारे में विस्तार से समझाया। इसके पश्चात् उन्होंने हमारे नाश्ते की व्यवस्था कर रखी थी। हम सभी ने आलू के परौंठे, चाय, दही का नाश्ता किया। बी.एस.एफ. की वजह से ही हम सभी को स्पीड बोट में अरब सागर का भ्रमण करने का मौका, जो कि अविस्मरणीय रहा।

यहाँ कुछ समय गुजारने के बाद हम ३६ कि.मी. दूर स्थित कोट लखपत आ गए। सर क्रीक के पास बने कोट लखपत में एक जमाने में बहुत बड़ा बंदरगाह था, जहाँ से कई देशों के लिए माल और जहाज जाते थे। १८१९ तक अरब सागर में मिलने से पहले सिंधु नदी इसी किले के मुहाने तक आती थी। १८१९ तक खुशहाल इस क्षेत्र को प्राकृतिक आपदा ने वीरान कर दिया और सिंधु नदी को भी चालीस मील दूर धकेल दिया। पाकिस्तानी क्षेत्र यहाँ से चंद किलोमीटर बाद ही शुरू हो जाता है। गुरु नानक देवजी मक्का जाते हुए चालीस दिनों तक इसी गुरुद्वारे में रुके थे। इसके बाद एक बार पुन: वे यहाँ पधारे थे। गुरुद्वारा नानक दरबार में आज भी गुरु नानकजी के खड़ाऊ, सोटा और झूला रखा हुआ है। मेरे सिख मित्रों को एक बार इस गुरुद्वारे में अवश्य जाना चाहिए। सिंधु नदी कैलाश मानसरोवर से निकलती है और कश्मीर के रास्ते पाकिस्तान में प्रवेश करती है। सिंधु पाकिस्तान की सबसे लंबी नदी है। कोट लखपत से हम अपने अंतिम गंतव्य 'धोरडू' के लिए निकल पड़े।

करीब ५ घंटे की यात्रा के बाद हम धोरडू पहुँच गए। रास्ते में एक छोटे ढाबे पर कठियावाड़ी खाने का स्वाद लिया, जो बढ़िया लगा। यहीं रास्ते में एक स्थान आया, जहाँ से ट्रोपिक ऑफ कैंसर, यानी कर्क रेखा गुजर रही है। भुज से ८० किलोमीटर दूर एक ग्रामीण क्षेत्र पड़ता है—'धोरडू', यहाँ एक पूरा शहर टैंटों के रूप में बसा दिया जाता है। टैंटों की कुल तीन श्रेणियाँ होती हैं। सबसे महँगा ए.सी. डीलक्स होता है, जिसमें अत्याधुनिक साज-सज्जा का सामान उपलब्ध होता है। अटैच टॉयलेट, बाथरूम और एक छोटी बैठक टैंट के रूप इसे और भी आकर्षक बना देते है। टैंट के अंदर ही इलेक्ट्रिक केतली उपलब्ध होती है, जहाँ यात्री चाय कॉफी स्वयं ही तैयार कर सकते हैं। धोरडू में टैंट सिटी देखकर हैरानी हुई कि कितने लाजवाब तरीके से गुजरात पर्यटन ने मेहमानों के लिए इंतजाम किए थे। टैंट सिटी के अंदर वाहन ले जाना मना था। हम अंदर बैटरी कार्ट में गए। गुजरात पर्यटन ने टैंट सिटी को प्रदूषण मुक्त बनाने के लिए टैंट सिटी के अंदर घूमने के लिए साइकिलों की व्यवस्था कर रखी है। अपना टैंट देखकर मन प्रफुल्लित हो गया। टैंट में रुकने की व्यवस्था हमारे लिए कलेक्टर भुज की ओर से करवाई गई थी।

शाम के ५ बज चुके थे। गुजरात पर्यटन के अधिकारियों ने हमें तुरंत ही रण में सूर्यास्त देखने के लिए प्रस्थान करने की सलाह दी। उन्हीं की वातानुकूलित बस में बैठकर हम वहाँ गए, जो कि टैंट क्षेत्र से चार कि.मी. दूर था। सफेद रण में सूर्यास्त देखना एक अविस्मरणीय पल था। और यही नजारा हर वर्ष सैकड़ों पर्यटकों को रण महोत्सव में खींचकर ले आता है। गुजरात का पर्यटन मंत्रालय हर वर्ष दिसंबर से फरवरी तक रण महोत्सव का आयोजन करता है। आमतौर पर देसी ही नहीं, विदेशी सैलानी भी यहाँ आकर प्रकृति की गोद में बैठकर जीवन का लुत्फ उठाते हैं। हमने भी यहाँ की सफेद धरती पर ऊँटों के साथ फोटो खिंचवाए।

रात्रि भोजन की व्यवस्था विशाल हॉल में बुफे के तौर पर की गई थी। नाना प्रकार के पकवानों का रसास्वादन कर आनंद ही आ गया। साथ में लाइव बैंड भी चल रहा था। रात्रि खाने के बाद हम रंगारंग कार्यक्रम देखने चले गए। करीब एक घंटा वहाँ गुजारने के बाद हम वापस टैंट में आ गए। सुबह जब हम उठे तो हल्की-हल्की सर्दी लग रही थी। गरम पानी से नहाने के बाद हम नाश्ता करने पहुँचे। नाश्ता करके मैंने यादगार के तौर पर बच्चों के लिए टी-शर्ट्स लीं और यहाँ से हम भारत पाकिस्तान के अंतिम स्थल 'इंडिया ब्रिज' तक गए। इससे आगे केवल बी.एस.एफ. के जवान ही जा सकते हैं। यहाँ से हम इस क्षेत्र के सबसे ऊँचे स्थान 'काला डूँगर' चले गए। यहाँ दत्तात्रेयजी का मंदिर है और रास्ते में मैग्नेटिक क्षेत्र आता है, जहाँ गाड़ी को न्यूट्रल छोड़ दो तो स्वयं चलने लगती है। पहले तो यकीन नहीं हुआ, पर जब खुद करके देखा तो इस प्राकृतिक अचंभे पर बहुत हैरत हुई। लेह के पास भी एक ऐसा क्षेत्र है, जिसे मैग्नेटिक हिल कहते हैं। २००७ में मुझे उस जगह को देखने का अवसर मिला था। यहीं से हम भुज होते हुए पालनपुर की ओर निकल पड़े। शाम पाँच बजे पालनपुर पहुँचकर चाय-नाश्ता किया और सात बजे राजधानी पकड़ दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

डी ओ बिल्डिंग ट्रेन डिपो
शास्त्री पार्क, ईस्टर्न एप्रोच रोड
दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ९९१०३७३१११

मणिपुर का लोकसाहित्य

● वीरेंद्र परमार

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र बांग्लादेश, भूटान, चीन, म्याँमार और तिब्बत—पाँच देशों की अंतरराष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित है। असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम—इन आठ राज्यों का समूह पूर्वोत्तर भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पर्वतमालाएँ, हरित घाटियाँ और सदाबहार वन इस क्षेत्र के नैसर्गिक सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं। जैव-विविधता, सांस्कृतिक कौमार्य, सामूहिकता-बोध, प्रकृति-प्रेम, अपनी परंपरा के प्रति सम्मान भाव पूर्वोत्तर भारत की अद्वितीय विशेषताएँ हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत अत्यंत समृद्ध है। इस क्षेत्र के निवासियों को प्राचीन ग्रंथों में किरात की संज्ञा दी गई है। किरात शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम यजर्वेद में मिलता है। इसके उपरांत अथर्ववेद, रामायण एवं महाभारत में भी उन मंगोल मूल की जनजातियों की चर्चा मिलती है, जो भारत की उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की घाटियों व कंदराओं में निवास करती हैं। बह्मपुत्र घाटी का संबंध किरात से है। भारत के विख्यात योद्धा राजा भगदत्त पूर्वोत्तर के थे। महाभारत काल से पूर्वोत्तर का गहरा संबंध है। माना जाता है कि पांडवों ने अपना अज्ञातवास इसी क्षेत्र में व्यतीत किया था। अनेक उच्छृंखल नदियों, जल-प्रपातों, झरनों और अन्य जल-स्रोतों से अभिसिंचित पूर्वोत्तर की भूमि लोकसाहित्य की दृष्टि से भी अत्यंत उर्वर है।

मणिपुर अपने शाब्दिक अर्थ के अनुरूप वास्तव में मणि की भूमि है। इसे 'देवताओं की रंगशाला' कहा जाता है। सदाबहार वन, पर्वत, झील, जलप्रपात आदि इसके नैसर्गिक सौंदर्य में चार चाँद लगा देते हैं। अत: इस प्रदेश को भारत का मणिमुकुट कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। यहाँ की लगभग दो-तिहाई भूमि वनाच्छादित है। प्रदेश के पास गौरवशाली अतीत, समृद्ध विरासत और स्वर्णिम संस्कृति है। मणिपुर की प्रमुख भाषा 'मैतेई' है, जिसे मणिपुरी भी कहा जाता है। मैतेई भाषा की अपनी लिपि है—मीतेई-मएक। इसके अतिरिक्त राज्य में २९ बोलियाँ हैं, जिनमें प्रमुख हैं—तड़ खुल, भार, पाइते, लुसाई, थडोऊ (कुकी), माओ आदि। इन सभी भाषाओं की वाचिक परंपरा में लोक साहित्य का विस्तृत भंडार उपलब्ध है। मणिपुर में निम्नलिखित आदिवासी समुदाय रहते हैं—ऐमोल, अनल, अंगामी, चिरु, चोथे, गंगते, हमार, लुशोई, काबुई, कचानगा, खरम, कोईराव, कोईरंग, कोम, लम्कांग, माओ, मरम, मरिंग, मोनसंग, मायोन, पाईते, पौमई, पुनरुन, राल्ते, सहते, सेमा, तांगखुल, थडाऊ, तराव इत्यादि।

सुपरिचित लेखक। 'अरुणाचल का लोकजीवन', 'अरुणाचल के आदिवासी और उनका लोकसाहित्य', 'हिंदी सेवी संस्था कोश', 'राजभाषा विमर्श' प्रकाशित। 'कथाकार आचार्य शिवपूजन सहाय', 'डॉ. मुचकुंद शर्मा : शेषकथा' संपादित ग्रंथ। संप्रति उपनिदेशक राजभाषा।

मणिपुर पर्व-त्योहारों एवं उत्सवों की भूमि है। यहाँ बारह माह में तेरह त्योहार मनाए जाते हैं। मंत्रमुग्ध कर देनेवाले संगीत-नृत्य त्योहारों के प्रमुख अंग हैं। प्रदेश में अनेक प्रकार की नाट्य शैली प्रचलित हैं। लोक नाटकों को फागीलीला, सुमंगलीला आदि नामों से संबोधित किया जाता है। फागीलीला हास्य नाटक है, जिसमें सामाजिक विद्रूपताओं पर प्रहार किया जाता है। नाटक अथवा जात्रा यहाँ के सामाजिक जीवन से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। महिला जात्रा, बाल जात्रा, इशेई लीला (संगीत जात्रा), इपोम (हास्यपरक लीला) इत्यादि सुमंगलीला की नाट्य शैलियाँ यहाँ खूब प्रचलित हैं।

मणिपुरी लोकगीतों को खुनुंग इशेई कहा जाता है। इन लोकगीतों में जीवन के सभी पहलू शामिल होते हैं। हर्ष-विषाद, आशा-आकांक्षा, प्रेम-घृणा आदि मानवीय भावनाओं को प्रकट करनेवाले इन लोकगीतों की अनेक शैलियाँ प्रचलित हैं। भिन्न-भिन्न आदिवासी समूहों की गायन शैली में भी पर्याप्त भिन्नता है। हल चलाते समय, फसल काटते समय अथवा अन्य कार्य करते समय मणिपुरी अनेक श्रमगीत गाते हैं। श्रमगीतों को लौटरोल, फिशा इशेई, हिजिन हिराव आदि नामों से पुकारते हैं। मणिपुर में संस्कार गीतों, उपासना गीतों, त्योहार गीतों, फसल गीतों आदि की उन्नत परंपरा है। संस्कार गीतों को औगरी, खेमको, अहोंगलोन इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। अनेक मिथक गीत, ऋतु संबंधी गीत, वीरगाथात्मक गीत भी प्रचलित हैं। यहाँ असंख्य प्रकार के प्रणय गीत और उसकी अनेक शैलियाँ भी प्रचलित हैं।

मणिपुर अपने आध्यात्मिक गीतों के लिए भी प्रसिद्ध है। आध्यात्मिक गीतों में चैतन्य महाप्रभु के जीवन दर्शन का उल्लेख होता है। मनोहर साई रामकरताल के साथ गाया जानेवाला कर्णमधुर संगीत है। लाई हराओबा में द्विअर्थी संवादों द्वारा श्रोताओं का मनोरंजन किया जाता है। खुल्लोंग इशेई मेतेई समुदाय का श्रमगीत है। इस गीत का केंद्रीय विषय प्रेम होता है। खेतों में काम करते समय यह गीत गाया जाता है। लाई हराओबा इशेई

मणिपुर का उत्सव गीत है। पर्व-त्योहार या उत्सव के अन्य अवसरों पर मणिपुरी लोग उत्सव गीतों द्वारा अपने हर्ष को अभिव्यक्त करते हैं। थाबल चोंगबैशई नृत्य के समय इसी नाम के गीत भी गाए जाते हैं। धोब, नुपी पाला आदि गीतों में गायक अपनी आत्मा उड़ेल देते हैं। मणिपुरी समाज में नृत्य भी एक प्रकार की उपासना और ईश्वर-प्राप्ति का एक साधन है। यहाँ नृत्य एक पवित्र कर्म माना जाता है। इसे प्रस्तुत करने के लिए कुछ सुनिश्चित नियम होते हैं। जहाँ नृत्य की प्रस्तुति हो, वह स्थान पवित्र होना चाहिए। मणिपुरी समाज में धर्म के साथ नृत्य का गहरा जुड़ाव है। जीवन के सभी अवसरों, यथा जन्म, विवाह, श्राद्ध आदि पर नृत्य की परंपरा विद्यमान है।

लाई हराओबा सृष्टि की उत्पत्ति की अवधारणा पर आधारित लोकनृत्य है। इसमें उमंगलाई (वन के देवी-देवता) की उपासना की जाती है। डोल जात्रा का त्योहार फाल्गुन माह में मनाया जाता है। इस अवसर पर पाँच दिनों तक थाबलचोंगबा नृत्य किया जाता है। इस नृत्य में महिला-पुरुष सभी भाग लेते हैं। नर्तक दल के सभी सदस्य एक-दूसरे के हाथ पकड़कर नृत्य करते हैं तथा घर-घर जाकर चंदा वसूलते हैं। नुपा पाला नृत्य पुरुषों द्वारा सामूहिक रूप में किया जाता है। तूनगन लम, हेग, नागा तूना, गन लम इत्यादि आदिवासी समुदाय के नृत्य हैं। बाँस नृत्य चूड़ाचाँदपुर के लुशाई समुदाय का लोकनृत्य है। यह बालिकाओं द्वारा किया जाता है। रंग-बिरंगे पारंपरिक परिधानों से सुसज्जित बालिकाओं द्वारा प्रस्तुत बाँस नृत्य नयनाभिराम होता है। मणिपुर में रासलीला बहुत लोकप्रिय है। चार प्रकार के रास प्रमुख हैं—महारास, कुंजारास, वसंत रास और नित्य रास। दिबास रास गोपियों द्वारा साड़ी पहनकर किया जाता है। उदुखोल में भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीला को नृत्य और आध्यात्मिक संगीत द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। गौरलीला आठ-दस वर्ष के बालकों द्वारा किया जाता है। खंबा और थोइबी नृत्य लाईहराओबा के दौरान किया जाता है। इसमें प्रेमकथा का वर्णन किया जाता है।

मणिपुरी पर्वत-शिखरों एवं सुदूर जंगलों में प्राकृतिक जीवन जीते हैं, जहाँ गीत गाते झरनों, बलखाती नदियों, वन्य-जीवों और नयनाभिराम पक्षियों का उन्मुक्त संसार है। जीवन सरल और स्वच्छंद है। यहाँ जीवन की कोई आपाधापी नहीं, समय की कोई चिंता नहीं, कोई कोलाहल नहीं तनावरहित जीवन, न्यूनतम आवश्यकताएँ, भविष्य की चिंता से मुक्त। इन परिस्थितियों में इनके उर्वर मस्तिष्क में कल्पना की ऊँची उड़ान उठती है। फलतः लोकसाहित्य का सृजन होता है। मणिपुरी लोकसाहित्य में जीवन का राग-रंग, आशा-आकांक्षा, हर्ष-विषाद, सबकुछ समाविष्ट है। लोककंठ में विद्यमान समृद्ध मणिपुरी लोकसाहित्य को संरक्षित, संकलित और प्रकाशित करने की महती आवश्यकता है।

उपनिदेशक (राजभाषा), केंद्रीय भूमि जल बोर्ड
जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय
भूजल भवन, एन.एच.-४
फरीदाबाद-१२१००१
दूरभाष : ९८६८२०००८५

दोपहरी से जंग

दोहे

● राजीव रस्तोगी

तपती सी दोपहर है, जलते-जलते पाँव।
दोपहरी भी ढूँढ़ती, ठंडी-ठंडी छाँव॥

मुरझाए से पेड़ हैं, सूखे नदिया ताल।
बैठा बाट निहारता, मछुआरा ले जाल॥

झुलस गई है धूप में, हरियाली-सी घास।
नल भी प्यासा रह गया, कौन बुझाए प्यास॥

गरम हवा में उड़ गए, कपड़ों के भी रंग।
सारे मिलकर लड़ रहे, दोपहरी से जंग॥

गरम थपेड़े चल रहे, उड़ा रहे हैं धूल।
छुईमुई सी देह में, चुभने लगे बबूल॥

कुम्हलाए से फूल हैं, दहक रही है देह।
आँखें आशा में लगीं, कब बरसेगा मेह॥

रूखी-रूखी धूप में, गरम हवा का जोर।
आँखों में ही कट गई, क्या संध्या क्या भोर॥

ए-७०३, स्वामी दयानंद अपार्टमेंट,
प्लॉट नं. ५, सेक्टर-६, द्वारका
नई दिल्ली-११००७५

कहानी

एक हमसफर···

● राजा सिंह

सुपरिचित लेखक। कई पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, कविताएँ निरंतर प्रकाशित। संप्रति भारतीय स्टेट बैंक में प्रबंधक।

प्रतापगढ़ से लालगंज का सफर बहुत कष्टदायक था। मेटाडोर यात्रियों से खचाखच भरी थी और ठंड में भी उमस और उलझन महसूस हो रही थी। हर तरह की साँसें एक दूसरे से उलझ रही थीं और एक ऐसी गंध का निर्माण कर रही थीं, जो असहनीय होती जा रही थी। पाद की गंध, इत्र की सुगंध और साँसों से झिरती प्याज, लहसुन, सिगरेट-बीड़ी और तंबाकू-खैनी की रसगंध एकसार होकर बेचैन कर रही थी।

मैं अपनी किस्मत को कोस रहा था कि पहले मैं ड्राइवर की बगल वाली सीट पर बैठा था, अकेला। परंतु जब ड्राइवर कम कंडक्टर ने एक-एक करके और तीन आदमी उस सीट पर बैठाए तो मैं झुँझलाकर बोल उठा, ''आप गाड़ी कैसे चलाओगे? खुद कहाँ बैठोगे?''

''यह मेरा काम है, मैं कर लूँगा।'' उसने गर्वमिश्रित साधिकार घोषणा की। मैंने असमंजस में आकर पीछे बैठना ही बेहतर समझा। वहाँ कम-से-कम गिरने का डर तो नहीं रहेगा। उस समय पीछे की सीटें पूर्णरूपेण भरी नहीं थीं और मुझे तनिक भी आशंका नहीं थी कि पीछे की स्थिति भी बदतर हो जाएगी। वैसे भी ड्राइवर के साथवाली जगह पर इस इलाके के प्रभावशाली लोग ही बैठते थे। इस जगह पर उनका अघोषित आरक्षण था। मुझ जैसे का उनके साथ बैठना उन्हें असहज बना रहा था। एक-दो बार इशारों से और वाक्यों से मुझे पीछे आराम से बैठने की सलाह ड्राइवर और तथाकथित उच्च लोग दे चुके थे। परंतु वहाँ बैठकर मैं भी अपने को विशिष्ट समझने का भाव लिये था। मेरे वहाँ से उतरकर पीछे चले जाने से उन लोगों के चेहरों पर हार्दिक संतुष्टि का भाव प्रकट हो रहा था।

मेटाडोर के पीछेवाले हिस्से में दो लंबी-लंबी सीटें थीं, जिनपर चार-चार लोग आसानी से बैठ सकते थे। परंतु देखते-ही-देखते उसने उनमें छह-छह व्यक्ति खिसका-खिसकाकर एडजस्ट कर दिए। मैं आगे और पीछे की सीटों पर बैठने की प्राथमिकताओं और उपयोगिताओं के गणित में उलझकर रह गया।

मेरे सामने की सीट पर चार औरतें थीं और दो आदमी। उसमें तीन औरतें और दोनों आदमी साठ-सत्तर के आसपास बूढ़े और थके थे। सिर्फ एक औरत जवान थी, शायद काली सी। वह घूँघट लिये थी और उसकी गोद में एक डेढ़ साल का बच्चा था, उस जैसा ही। उस बच्चेवाली औरत के दाँत सफेद मोती जैसे थे, जो घूँघट में चमक रहे थे। बच्चा अकसर रो उठता था, जिसे चुप कराने के लिए उसे छाती से सटाकर दूध पिलाना पड़ता था, जिसके लिए उसे काफी सावधानी रखनी पड़ती थी कि कोई नजर उसका पोषण अंग देख न ले। जिस सीट पर मैं बैठा था, उसपर एक कम उम्र का जवान लड़का गेट की तरफ, दो अधेड़ औरतें, एक मुच्छड़ अधेड़, एक मैं और मेरे बगल मैं, ड्राइवर की सीट के एकदम पीछे एक परदानसीन। ड्राइवर के साथ एक पुलिसवाला, एक ठेकेदार और एक अध्यापक था, जो जोर-जोर से बातें और बहस करता था।

एक तो बोरियों की तरह ठुँसे, ऊपर से बोरियत का आलम, कहीं कोई खूबसूरती का चिह्न नहीं था। मैं कसमसाया और अंदर चारों तरफ नजर दौड़ाई, मगर अफसोस, यात्रियों से भरी उस मेटाडोर में कहीं कोई रोमांस लायक नहीं था। सारे चेहरे थके बोझिल और बूढ़े थे। ज्यादातर अधेड़ मुच्छड़ या झुर्रियों भरे चेहरे थे। मैं खूबसूरती की तलाश में था।

बच्चेवाली काली नवयौवना घूँघट की आड़ से अकसर मुझे देख लेती थी, जब मेरी नजरें कहीं और होती थीं। उसका चेहरा तो ठीक से नहीं देख पाता था, परंतु पोषणवाली जगह पर अकसर दृष्टि पड़ जाती। वह झट से बच्चे का दूध छुटाकर अपने को पूरा ढक लेती। मेरी खूबसूरती की तलाश परदानसीन पर आकर अटक गई। वह बुरके में थी। लड़की, नवयुवती या स्त्री? उसका कोई भी अंग या कोर नहीं दिख रहा था, जिससे खूबसूरत, बदसूरत का अंदाजा लग सके। खूबसूरती की खोज में असफल, निराश और सुंदरता के दर्शन दुर्लभ हैं, सोचकर मैंने आँखें बंद कर लीं।

कुछेक पलों बाद मैंने आँखें खोलीं तो देखा घूँघटवाली अपने बच्चे को दूध पिला रहा थी, मगर उसकी आँखें मुझ पर स्थिर थीं, मैं अचकचाया और अपनी दृष्टि परदानसीन पर फेर दी। उसकी आँखें भी महीन जालियों में कैद थीं। बड़ी कोफ्त हो रही थी। अचानक उसने बुरके की जेब से हाथ बाहर निकाला और अपने चेहरे पर फेरते हुए मद्धिम स्वर में कहा, ''आह! क्या आफत है? मेरी साँस न घुट जाए।'' उसके हाथ और साइड से चेहरे की झलक पाकर मुझे आभास हो गया

कि यह लड़की बला की खूबसूरत होगी। मुझे लगा, सुंदरता हर जगह होती है, बस तलाश करनी पड़ती है।

मैं उसे कनखियों से देख लेता। अब मेरा ध्यान सिर्फ उसी पर केंद्रित था। कैसे पूरा चाँद दिख जाए। मैंने एक नजर चारों ओर दौड़ाई, सब ऊब और ऊँघ रहे थे। शाम के सात बज रहे थे। रात का अँधेरा घिर आया था। गाड़ी अपनी गति से चल रही थी और हर आधा-एक कि.मी. पर गाड़ी रुकती, सवारियाँ उतारती और चढ़ाती थी। परंतु यात्रियों की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं आ रहा था।

परदानसीन हसीना ने व्याकुल होकर अपने चेहरे के हिजाब को उलट दिया और मेरी तरफ मुखातिब होकर बोली, ''बड़ी बेबसी है, घुटन है।'' मैं हतप्रभ उसे अपलक निहारता ही रह गया। उसके चेहरे पर अजीब सा आकर्षण और सम्मोहन था, जिसने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया। वह बला की खूबसूरत थी और उसका बदन तराशा हुआ था। उसकी आँखों में बेपनाह गहराई थी। वह मेरी तरफ उत्सुक नजरों से देख रही थी। मैं प्रतिक्रियाविहीन, भावशून्य अवस्था में शब्दहीन और अर्धव्याकुल था। कई जोड़ी आँखें उस पर केंद्रित हो गईं तो झट से उसने अपना चेहरा ढक लिया और मैं चेतन अवस्था में आ गया। मैंने सोचा, इश्क करने के लिए उससे ज्यादा उपर्युक्त कोई नहीं होगा। कम-से-कम जिंदगी में एक अदद गर्लफ्रेंड होना जरूरी है, जिससे मैं अभी तक महरूम था। मेरी तलाश पूरी हो चुकी थी। मैंने मन-ही-मन अपनी दीदी का शुक्रिया अदा किया, जिन्होंने कुछ समय के लिए छुट्टियों में अपने साथ रहने को बुलाया था।

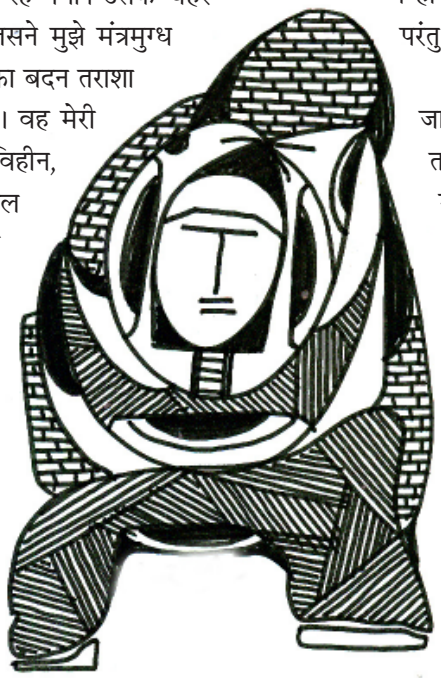

लीलापुर आ गया था। कई सवारियाँ उतरी थीं। बच्चेवाली औरत गायब थी, वह कब उतर गई, पता ही न चला। यहाँ पर कोई सवारी नहीं चढ़ी। मेटाडोर कुछ हल्की हो गई थी। राहत सी महसूस हो रही थी कि कुछ तरह की गंध और उमस से निजात मिल गई।

''ठीक से बैठ जाइए।'' हसीना बोली। मैं खिसककर बैठ गया। उसने खाली स्थान की पूर्ति कर दी। अब भी उसका जिस्म मेरे शरीर के संपर्क में था। काफी अच्छा लग रहा था। मैं सीट को बाएँ हाथ से पकड़े था, संभावित धचके से बचने के लिए। उसने कुछ सोचा और अपनी हथेली मेरे हाथ पर टिका दी। एक करेंट हाथों से होता हुआ मन-मस्तिष्क पर पहुँच गया। खून का प्रवाह रुक गया, प्यार का आवेग चल पड़ा। मैं बुखार में दग्ध हो उठा था। मैं जड़वत् वैसे ही बैठा रहा।

''नए हो?'' मेरा हलक सूख गया।

''हाँ, और आप?''

''यहीं की हूँ। लालगंज घर है। प्रतापगढ़ में सर्विस करती हूँ।''

''...''

''आप स्टूडेंट हैं?''

''सही अनुमान है आपका। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में एम.ए. का छात्र हूँ।''

एक लंबी खामोशी, सफर जारी था। उसकी हथेली हल्के-हल्के मेरी हथेली को दबा रही थी। मादकता की अनुभूति हो रही थी। लालगंज आनेवाला था, ड्राइवर ने चेताया, किराया निकालकर रख लो। लालगंज में उस समय बिजली आ रही थी, इस कारण रोशन हो रहा था लालगंज। मेटाडोर एक झटके से रुकी और हम दोनों एकदम सट गए। लड़की ने मेरी तरफ मद्धिम खुमार भरी उत्सुक नजरों से देखा। उसकी निगाहें शायद खुलकर दिल का राज कह देना चाहती थीं, मगर कामयाब न हो सकीं। उन आँखों में एक हल्की सी चमक पैदा हुई, परंतु गुम हो गई।

सारे यात्री मेटाडोर से उतरते जाते और किराया देते जाते थे। ड्राइवर ने उसकी तरफ देखा, लड़की ने मेरी तरफ देखा। ड्राइवर बोला, ''साथ में हो?'' हम दोनों में से कोई नहीं बोला। उसने दोनों का किराया मेरे से काट लिया।

हम दोनों साथ-साथ चल रहे थे। कालाकाँकर रोड में दीदी का घर था, मैं एक बार पहले भी आ चुका था। शायद उस हसीना का घर भी उधर होगा। एकदम से लालगंज की बिजली गुम हो गई और वह मुझसे सट गई। उसने मेरी बाँह पकड़ ली थी और बाँह पकड़े-पकड़े ही चल रही थी। रोमांटिकता फिर चल पड़ी थी। मैंने फ्रेंड बनाने की गरज से उसका नाम पूछा।

''तरन्नुम। और आपका?''

''आनंद। मुझसे दोस्ती करोगी?''

''जरूर। क्यों नहीं?''

मैंने अपना कॉण्टेक्ट नंबर दिया। उसने नहीं दिया। रास्ता खामोशी और रोमांस से तय हो रहा था। मैं प्रसन्नता के उच्चतम शिखर पर था, गर्वानुभूति से घिरा हुआ। अप्रत्याशित रूप से उस हसीन दोस्त का मिलना किसी सौगात से कम नहीं था।

अचानक वह रुकी, उसने मेरी हथेली अपनी हथेलियों से रगड़ी, और बोली ''काम...काम नहीं करोगे?''

''काम...काम का मतलब?''

लड़की ने अपने दोनों हाथों की उँगलियों से मेरी दोनों हथेलियों को गुदगुदाया...काम...नहीं जानते? उसने मेरी आँखों में अपनी आँखें डाल दीं। उसकी आँखों में नशा था, आमंत्रण था। मगर मैं संज्ञाशून्य हो चुका था। उसका यह रूप देखकर मैं पाषाण बन चुका था। मेरी कल्पनाओं और भावनाओं को भयानक आघात लगा था। हसीना फिर लड़की में तब्दील हो चुकी थी।

''तो यह काम करती हो?''

''हाँ, क्या करें, मजबूरी है।''

''ऐसी क्या मजबूरी है?'' मैं नॉर्मल हो चुका था। उसकी आँखें नम थीं। गला रुँध गया था। उसने धीमे और बोझिल आवाज में कहा—

''हम अब्बू, अम्मी को मिलाकर दस जने का परिवार। अब्बू बढ़ई का काम करते हैं। खाने के लाले पड़े रहते हैं। फिर बढ़ईगीरी कभी चलती है, कभी नहीं। घर का खाना-खर्चा और भाई-बहनों की पढ़ाई-लिखाई कैसे चले? अब्बू की बढ़ईगीरी से दो जने का खर्चा भी नहीं निकल पाता। मैं घर में सबसे बड़ी हूँ, मुझे भी तो घर की जिम्मेदारी निभानी है। नवीं पास, मैं और क्या काम कर सकती हूँ। मैं आगे नहीं पढ़ पाई तो क्या मेरे भाई-बहन भी पढ़ाई-लिखाई से महरूम रहें? उन्हें तो योग्य बना दूँ।'' उसने मेरा हाथ छोड़ दिया और कुछ अलग हटकर खड़ी हो गई।

''ऐसी मजबूरी की दास्तान तो हर गलत काम करनेवाला सुना देता है।'' उसने गमगीन अविश्वसनीय निगाहों से मुझे देखा भर था और मेरी बर्फ पिघलने लगी थी। लड़की कुछ पल रुकी, फिर उसने मेरी नजरों में झाँका। शायद मेरी आँखों में अपनी बातों की सच्चाई परख रही हो, फिर बोली, ''आज शहर के होटल में बुलाया था, परंतु कस्टमर शाम को ही वापस दिल्ली लौट गया। इसलिए मेरा काम नहीं हुआ। मैंने सोचा, तुम नए हो, तलाश में भी दिखे, शायद एक रात की दुलहन का अनुभव करना चाहोगे? परंतु तुम तो···। खैर, यह पहली बार नहीं है कि काम से खाली लौटी हूँ।'' उस लड़की की आँखों में निराशा, हताशा पसर गई थी और मैं मुजरिम की तरह खड़ा अपना गुनाह कबूल करने की तरफ अग्रसर था। मुझे लगा, मुझे दंड मिलना चाहिए, उस गुनाह की सजा जो मैंने अनजाने में किया था, उसकी उम्मीदों को ठोकर मारकर।

मैंने अपना पर्स निकाला और कुछ एक रुपए छोड़कर सारे रुपए उसकी हथेली पर रखकर उसकी मुटठी बंद कर दी। उसकी नरम और नाजुक हथेलियाँ बर्फ की तरह ठंडी पड़ चुकी थीं। ''गुड बाय!'' मैंने जल्दी में कहा और तेज कदमों से उसे छोड़कर आगे बढ़ गया। मैं उससे इतनी दूर आ गया था कि वह हसीन बला पूरी तरह नजरों से ओझल हो चुकी थी।

एम-१२८५, सेक्टर-आई
एल.डी.ए. कॉलोनी
कानपुर रोड, लखनऊ-२२६०१२
दूरभाष : ९४१५२००७२४

उसे अब भी सह रहा हूँ

गजल

● चंद्रसेन विराट

कहा सच ही तब भी मैंने
वही अब भी कह रहा हूँ,
मिला दंड उस समय जो
उसे अब भी सह रहा हूँ।

सदा धार के उलट ही
रहा तैरता नदी में,
कहा धार ने—बहो संग
मैं हठी न बह रहा हूँ।

वो जो पीर है प्रसव की
उसे रचयिता ही जाने,
वो जो आग है सृजन की
मैं उसी में दह रहा हूँ।

मैं विटप नदी के तट का
घिरा बाढ़ में भयानक,
खड़ा था यहीं जनम से
यहीं आज ढह रहा हूँ।

वो जो था अनाम रिश्ता
कहाँ रह गया है हममें,
जिसे तुमने तज दिया है
मैं उसी को गह रहा हूँ।

कोई चाल चल न पाता
मेरा शत्रु मुझसे घिरकर,
जो दे मात ही सुनिश्चित
मैं अटल वो शह रहा हूँ।

कई अर्थ की तहे हैं
नहीं एक अर्थ केवल,
जो न खुल सकी अभी तक
मैं वो एक तह रहा हूँ।

नए घर में रह रहे हैं
ये जो साथ आजकल हम,
मेरे संग गजल भी खुश है
मैं भी सुख से रह रहा हूँ।

१२१, बैकुंठधाम कॉलोनी
आनंद बाजार के पीछे
इंदौर-४५२०१८ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९३२९८९५५४०

धूल उड़ाती आती गरमी

● कुलभूषण सोनी

गरमी

गुस्सा खूब दिखाती गरमी,
लूएँ भी बरसाती गरमी।
आँधी, तूफानों को लेकर,
जब-जब भी यह आती गरमी।

धूल उड़ाती आती गरमी,
मन को तनिक न भाती गरमी।
धूप कड़ाके की यह लेकर,
तन को खूब तपाती गरमी।

बड़ा पसीना लाती गरमी,
पानी प्यास लगाती गरमी।
कपड़ा नहीं सुहाता तन पर,
शोले से बरसाती गरमी।

आ गई मई

देखो, फिर आ गई मई,
संग छुट्टियाँ लिये नई।

रिंकू, पिंकू, संतू भाई,
बड़े मजे की वेला आई।
तुम सब हो जाओ तैयार,
चलो सैर कर आएँ यार।
सर्दी की ऋतु चली गई,
देखो, फिर आ गई मई।

एक बात का धर लो ध्यान,
सब ही से करना पहचान।
कागज, कलम सँभालो हाथ,
लिखना क्षण जो बीते साथ।
सैर करेंगे दिवस कई,
देखो, फिर आ गई मई।

कुछ दिन नानाजी के रहना,
कुछ अपनी, कुछ उनकी सुनना।
वह जो कहें, उसे तुम लिखना,
जीवन में उसपर तुम चलना।
घड़ी सुहानी आ ही गई,
देखो, फिर आ गई मई।

आई जुलाई

आई जुलाई, आई जुलाई,
पढ़ने का संदेशा लाई।

बच्चो शाला पढ़ने जाना,
रस्ते में तुम रुक न जाना।
ले लो हाथ किताबें अपनी,
तुम्हें पढ़ाई अपनी करनी।
चपरासी ने बेल बजाई,

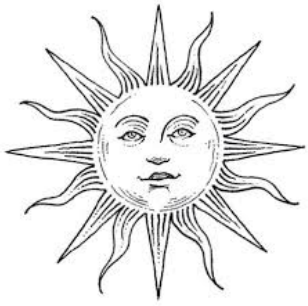

आई जुलाई, आई जुलाई।

छोड़ो बिस्तर, आलस छोड़ो,
सदा बुराई से मुख मोड़ो।
कर लो पढ़ने की तैयारी,
प्यारी कक्षा नई तुम्हारी।
नए-नए चहरे पड़े दिखाई,
आई जुलाई, आई जुलाई।

घूम-घूमकर टिंकू भाई,
तुमने छुट्टी खूब बिताई।
चित्त लगा जो करे पढ़ाई,
उसने सदा सफलता पाई।
सारे जग में धूम मचाई,
आई जुलाई, आई जुलाई।

सुपरिचित कवि एवं कथावाचक। कई काव्य-संग्रह प्रकाशित। देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं आकाशवाणी के कई केंद्रों से प्रसारित। सामाजिक-धार्मिक कई संस्थाओं के पदाधिकारी रहे। संप्रति विभिन्न कलाओं के नवांकुर तैयार करने में संलग्न।

अप्पू की चालाकी

अप्पूजी ने मन में सोचा,
खाऊँ भल्ले और समोसा।
लेकर एक दिवस अवकाश,
अप्पू पहुँचा भालू पास।

बोला अप्पू भालूजी से,
चखाओ भल्ले हैं कैसे?
जो भी अच्छा मुझे लगेगा,
उसका पैसा तुझे मिलेगा।

चख लिया जब सारा सामान,
बोला हिला-हिलाकर कान।
जँचा न सौदा भालूराज,
चंगा नहीं बनाया आज।

गरदन की घंटियाँ हिलाता,
चला गया अप्पू मदमाता।
लेकिन भालू क्या कर पाता,
बैठा-बैठा है पछताता।

द्वारा श्याम ज्वैलर्स
गोल मार्केट के सामने
निठारी रोड, प्रताप विहार
किराड़ी, दिल्ली-११००८६
दूरभाष : ९२११६२५५६१

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। सभी रचनाएँ बहुत ही ज्ञानवर्धक और मनोरंजक लगीं, परंतु राकेश भ्रमर की कहानी 'मौत के बाद' बेहद रुचिकर उपदेशात्मक है। पूरा अंक पढ़कर मुझे बहुत अच्छा लगा।

—केदारनाथ 'सविता', मीरजापुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। सभी रचनाएँ उत्प्रेरक लगीं। बटुक चतुर्वेदी की कहानी 'मँझले' मर्मस्पर्शी लगी। जयकुमार जलज का 'अंग्रेजी के सामने हिंदी : रावण रथी विरथ रघुवीरा' बड़ा ही सामयिक, सटीक और संवेदनशील लगा। अभिराज राजेंद्र की कहानी 'कहाँ जाऊँ', राहुल का 'सपनों का प्रतीकात्मक अर्थ', तुलसी तिवारी की 'अंतत:', राकेश भ्रमर की 'मौत के बाद', श्रद्धा थवाईत की 'एक कहानी मेरी भी' अच्छी लगीं। विनय मिश्र की गजलें 'उमड़ता है खयालों में समंदर' अच्छी लगीं। मंजुरानी जैन की 'तिनका-तिनका घरौंदा' भी बहुत अच्छी लगी।

—नंदकिशोर तिवारी, मारुति नगर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। संपादकीय में 'फारुख अब्दुल्ला की कलाबाजियाँ' शीर्षक समसामयिक लगा। कमलकिशोर गोयनका का आलेख 'औपनिवेशिक मानसिकता का साहित्य पर प्रभाव' बहुत ही प्रभावशाली एवं ज्ञानवर्धक रचना लगी। 'कामागाटा मारू की दुखांत यात्रा' आलेख ने हमारे पूर्वजों की आजादी और आत्मसम्मान की तड़प को इंगित किया है। लेखिका ऊषा निगम को पाठकीय बधाई। 'ठीकरे का मोल' कहानी पाठक को अंत तक बाँधने में समर्थ है।

—बी.डी. बजाज, दिल्ली

'साहित्य अमृत' के मई अंक के संपादकीय में जलियाँवाला कांड पर व्यक्त विचार, सुझाव पढ़कर लगा, संपादकीय ने मानो मेरे मुँह की बात छीन ली हो। 'एजी, सुनते हो!' (रितेंद्र अग्रवाल) रोचक, मनोरंजक लगा। 'लड़खड़ाते कदम' (रीता गुप्ता) मार्मिक हृदयस्पर्शी लगी। 'सूरत नानी की लगे भोली' (राजेंद्र निशीश) कविता ने भूले-बिसरे बचपन की याद ताजा कर दी।

—अशोक वाधवाणी, कोल्हापुर (महा.)

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। प्रस्तुत अंक में 'राजनीति के रंग, न्यायपालिका और कॉलेजियम तथा कुछ अन्य समस्याएँ' शीर्षक से प्रकाशित संपादकीय मन को भा गई। रमेश नैयर का निबंध 'सुरा सो पहचानिए' के साथ-साथ कहानी, कविता, व्यंग्य, यात्रा-संस्मरण व बाल संसार पठनीय रहा। समस्त सामग्री एक से बढ़कर एक है। वस्तुत: साहित्य अमृत एक ऐसा साहित्य है, जो नई पीढ़ी में लेखन क्षमता विकसित करता है, जिससे हमारी भावी पीढ़ी बेहतर प्रदर्शन कर सके।

—डॉ. प्रमोद 'पुष्प', रायगढ़ (छ.ग.)

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। इस अंक की लघुकथाओं में मुझे 'प्रोफेशन', 'प्रायश्चित्त', 'जीत की हार'; कविताओं में 'जीवों से नेह लगाएँ', 'उमड़ता है खयालों में समंदर' (गजल), 'उषा गीत', 'धनाक्षरी'; कहानियों में 'अंतत:', 'कहाँ जाऊँ', 'तिनका-तिनका घरौंदा' एवं आलेख 'विश्व का सबसे सहिष्णु देश—भारत' व 'कबीर वाणी की प्रासंगिकता' बहुत-बहुत पसंद आए। सभी रचनाएँ पठनीय एवं संग्रहणीय हैं।

—नंद किशोर तिवारी, वाराणसी (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। प्रतिस्मृति में शंकरदयाल सिंह की कहानी 'यादों के घेरे' पढ़ी। उषा यादव की कहानी 'ठीकरे का मोल' बहुत दुखद लगी। महेश चंद्र द्विवेदी की कहानी 'नागफनी का जंगल' में मुसलिम परिवार के संबंध में तलाक-तलाक-तलाक समस्या का अच्छा निर्णय दिखाया है। मंजु मधुकर की कहानी 'सहचरी' भी अच्छी लगी। ऊषा निगम का आलेख 'कामागाट मारू की दुखांत यात्रा' में ज्ञात हुआ कि कनाडा में भारतीयों के साथ किस तरह का अमानवीय व्यवहार हुआ है। कमल किशोर गोयनका का आलेख 'औपनिवेशिक मानसिकता का साहित्य पर प्रभाव' में मुंशी प्रेमचंद की कहानियों का उल्लेख किया है। व्यंग्य में रमेशचंद्र 'फाइल मिल गई' अच्छा लगा। इस अंक की सभी कहानियाँ बहुत अच्छी हैं।

—विनोद शंकर गुप्त, हिसार (हरि.)

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। सभी रचनाएँ उत्प्रेरक लगीं। शंकरदयाल सिंह की प्रतिस्मृति 'यादों के घेरे' मर्मस्पर्शी लगी। कहानियों में उषा यादव की 'ठीकरे का मोल', गोपाल नारायण आवटे की 'जीवन की सार्थकता' तथा विजय कुमार सिंह की 'माँ बनने की चाह' बहुत सराहनीय हैं। कमल किशोर गोयनका का आलेख 'औपनिवेशक मानसिकता का साहित्य पर प्रभाव' एवं शिवनंदन कपूर का आलेख 'विश्वास में बसा है विश्व' ज्ञानवर्धक लगा। देखा जाए तो पूरा ही अंक अपने आप में एक पूर्ण अंक है; हर तरह के भावों को अपने में समेटे हुए है, चाहे वह दु:ख की पीड़ा हो, मनोरंजन हो, ज्ञानवर्द्धन हो, बालमन से संबंधित हो या समाज में हो रहे उतार-चढ़ाव के विषय में हो। प्रेमकिशोर पटाखा का बाल-संसार 'धरती के सितारे, अंतरिक्ष में उतारे', रमेशचंद्र का व्यंग्य 'फाइल मिल गई' वास्तव में बहुत मनोरंजक लगे। रामकुमार आत्रेय की कविता 'इतिहास हँस रहा था' भावात्मक है। कवि ने बहुत श्रम से छोटी-छोटी पंक्तियों में ही हकीकत से रूबरू कराया है। संपूर्ण अंक पठनीय रहा।

—दीपाली तनेजा, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का मई अंक प्राप्त हुआ। आकर्षक मुख पृष्ठ से सुसज्जित इस अंक के कहानी, आलेख, लघुकथा तथा कविताएँ संग्रहणीय हैं। 'रे न मानेगो! तो जै ले राधाजी की गुलेल!' यात्रा-संस्मरण वृंदावन की लोक संस्कृति को दरशाता है। संस्मरण में निधिवन तथा बाँके बिहारीजी के मंदिर के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी गई है। संस्मरण को पढ़ते हुए सहज ही 'बाँके बिहारी' के दर्शन होने लगे तथा लगा जैसे वहाँ की भूमि में रची-बसी संस्कृति की छटा चारों ओर बिखर गई है। 'फाइल मिल गई' व्यंग्य के माध्यम से वर्तमान नौकरशाही व लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आईना दिखाने का सफल प्रयास किया गया है। 'ठीकरे का मोल' कहानी वर्तमान परिदृश्य में प्रासंगिक है। आज के दौर में अपेक्षित हो रहे बूढ़े-माता की अहमियत समझाने में कहानी पूर्ण रूप से सक्षम है। 'औपनिवेशिक मानसिकता का साहित्य पर प्रभाव' आलेख पश्चिमी संस्कृति व उसके वर्चस्व का भारतीय समाज पर प्रभाव को रेखांकित करता है। 'माँ बनने की चाह' कहानी प्रेरणादायक है। 'मेरे गाँव की अद्‌भुत परंपरा-रासोत्सव' ज्ञानवर्द्धक है। 'साहित्य अमृत' की सभी रचनाएँ उत्तम कोटि की होती हैं।

—लक्ष्मी रूपल, शिवनी (म.प्र.)

वर्ग पहेली (१४१)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा–

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० जून, २०१७ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते अगस्त २०१७ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१३९) का शुद्ध हल

१ अ	प	२ रा	३ ध	■	४ दि	५ ला	व	६ र
द्वि	■	७ म	रो	ड़	खा	ना	■	जो
८ ती	९ स	■	ह	■	व	■	१० अ	ब
११ य	दु	व	र	■	१२ ट	का	सा	ल
■	प	■	■	■	■	■	म	■
१३ प्र	यो	ज	१४ न	■	१५ सा	म	यि	१६ क
१७ सा	ग	■	दा	■	झे	■	१८ क	र
धू	■	१९ च	र	ण	दा	२० सी	■	तू
२१ क	ल	ना	द	■	२२ र	मा	कां	त

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्रीमती कुसुम गोयनका**
ए/९८, अशोक विहार
फेज–प्रथम
दिल्ली–११००५२

२. **श्री माणक तुलसीराम गौड़**
द्वितीय फ्लोर, २४७, नौवाँ मेन
शांति निकेतन लेआउट, आरकेरे
बेंगलुरु–५६००७६

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग–पहेली १३९ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं— सर्वश्री दिनकर सहल, सुभाष शर्मा, बी.डी. बजाज (दिल्ली), मोहन उपाध्याय, दिनेश पाराशर (अजमेर), प्रदीप शुक्ला (गोरखपुर), सुहेल सिंह (पीलीभीत), नंदकिशोर शर्मा (मथुरा), वेदराम (कैथल), हरप्रीत कौर (जालंधर), गोपाल गावड़े (अमरावती), रूपल चंदेल (जबलपुर), विनीता सिंह (गुरुग्राम), देवेंद्र चमोला (पौड़ी), सुरेंद्र सिंह पासी (मुजफ्फरपुर), रामोतार महापात्रा (भुवनेश्वर), भूपसिंह (हरिद्वार), रामप्रकाश राय (गांधीनगर) ।

बाएँ से दाएँ—

३. बुरा परिणाम उत्पन्न करनेवाला (५)
६. भक्त कबीर का मतानुयायी (५)
७. पान बेचनेवाला (४)
९. जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर, जो प्राय: बरसात में होता है (३,३)
१२. चित्त उदास करना (१,२,३)
१५. सदा जीनेवाला (४)
१७. समय का सिलसिला (५)
१८. अत्यंत प्रिय वस्तु (२,१,२)

ऊपर से नीचे—

१. कष्ट (४)
२. गली के भीतर की गली, जिसका सबको पता नहीं होता है (२,२)
३. अपनी याददाश्त के लिए प्रसिद्ध जानवर (२)
४. नियम, विधान (३)
५. टूटी–फूटी चीजें खरीदने–बेचने का धंधा करनेवाला (३)
७. किले की रक्षा के निमित्त उसके चारों ओर बनाई हुई दीवार (४)
८. भवन–निर्माण का विशेषज्ञ (४)
१०. तालाब (४)
११. अपने ज्ञान द्वारा जीविकोपार्जन करनेवाला (४)
१३. असुविधा (४)
१४. मूर्ख, अबोध, बेअक्ल (४)
१५. दीपक (३)
१६. रोजी–रोटी का साधन (३)
१७. रहने का स्थान (२)

वर्ग पहेली (१४०) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१४१)

१	■	२	■	३		४		५
६					■		■	
	■		■	■	७		८	
९	१०		११			■		■
■		■		■		■		■
			१२			१३		१४
१५		१६		■	■		■	
	■		■	१७				
१८					■		■	

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

साहित्यिक गतिविधियाँ

तीन पुस्तकें लोकार्पित

१४ मई को राँची के आर्यभट्ट सभागार में सांसद एवं वरिष्ठ पत्रकार मान. श्री हरिवंश की अध्यक्षता में प्रख्यात पत्रकार एवं 'प्रभात खबर' के वरिष्ठ संपादक श्री अनुज कुमार सिन्हा द्वारा लिखित तथा प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों 'झारखंड : राजनीति और हालात', 'बरगद बाबा का दर्द' एवं 'Unsung Heroes of Jharkhand Movement' का लोकार्पण झारखंड के मुख्यमंत्री मान. श्री रघुवर दास के करकमलों से संपन्न हुआ। विशिष्ट अतिथि 'प्रभात खबर' के प्रधान संपादक श्री आशुतोष चतुर्वेदी थे। □

डॉ. शिवओम अंबर सम्मानित

३० अप्रैल को कोलकाता के श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के तत्त्वावधान में स्थानीय कलामंदिर सभागार में २८वें डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान समारोह में बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी द्वारा डॉ. शिवओम अंबर को 'डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें एक लाख रुपए की राशि, श्रीफल, शॉल व मान-पत्र भेंट किए गए। इस अवसर पर सर्वश्री स्वांत रंजन व शिशिर बाजोरिया ने अपने विचार व्यक्त किए। श्री पुष्करलाल केड़िया की स्मृति में एक मिनट का मौन पालन कर श्रद्धांजलि अर्पित की गई। संचालन डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने किया तथा धन्यवाद श्री लक्ष्मीनारायण भाला ने किया। □

प्रो. शंख घोष को ज्ञानपीठ पुरस्कार

विगत दिनों नई दिल्ली के संसद् भवन के बालयोगी सभागार में आयोजित सम्मान समारोह में राष्ट्रपति मान. श्री प्रणब मुखर्जी द्वारा बाँगला के मूर्धन्य कवि, आलोचक एवं शिक्षाविद् प्रो. शंख घोष को ५२वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया। सम्मानस्वरूप उन्हें ११ लाख रुपए की राशि, वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा, प्रशस्ति-पत्र, शॉल तथा नारियल भेंट किए गए। □

डॉ. डी.डी. ओझा को सम्मान

१७-२१ मई को काठमांडू में आयोजित ग्लोबल साइंस कांग्रेस में हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ विज्ञान संचारक एवं वैज्ञानिक डॉ. डी.डी. ओझा को ग्लोबल सोसाइटी ऑफ बेसिक एंड एप्लाइड साइंस तथा वाटर कंजरवेशन सोसाइटी, नेपाल के संयुक्त तत्त्वावधान में 'लाइफ टाइम अचीवमेंट' अवार्ड से सम्मानित किया गया। □

साहित्यिक सम्मान प्रदत्त

विगत दिनों हरियाणा साहित्य संगम के दौरान विभिन्न साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। वर्ष २०१७ के लिए पाँच लाख रुपए की राशि का 'आजीवन साहित्य साधना सम्मान' डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा को; ढाई लाख रुपए की राशि का 'पंडित माधव प्रसाद मिश्र सम्मान' डॉ. रमेश कुंतल मेघ को; डेढ़ लाख रुपए की राशि का 'महाकवि सूरदास सम्मान' श्री रोहित यादव को; एक लाख रुपए की राशि का 'बाबू बालमुकुंद गुप्त सम्मान' श्री मदनलाल शर्मा को; 'लाला देशबंधु गुप्त सम्मान' डॉ. सत्येंद्र चतुर्वेदी को; 'पं. लखमीचंद सम्मान' डॉ. अनिल सवेरा को; 'जनकवि मेहर सिंह सम्मान' डॉ. संतराम देसवाल को; 'हरियाणा गौरव सम्मान' श्री रत्न कुमार सांभरिया को; 'आदित्य अल्हड़ हास्य सम्मान' डॉ. प्रेम जनमेजय को एवं 'श्रेष्ठ महिला रचनाकार सम्मान' डॉ. शील कौशिक को प्रदान किए गए। वर्ष २०१४ के श्रेष्ठ कृति पुरस्कार योजना के अंतर्गत २१,००० रुपए की राशि से सर्वश्री विष्णु सक्सेना, मेघा ग्रोवर, चंद्र भार्गव, बाबू राम, नफे सिंह कादयान, मलवेंद्र जीत, राजवंती मान, श्रीनिवास वत्स, राजकुमार पंवार, बलराज, उर्मिला कौशिक, हरिश्चंद्र बंधु, मीनाक्षी, पी.एन. खारू को सम्मानित किया गया। वर्ष २०१५ के लिए पाँच लाख रुपए की राशि का 'आजीवन साहित्य साधना सम्मान' डॉ. नरेंद्र मोहन को; ढाई लाख रुपए की राशि का 'पंडित माधव प्रसाद मिश्र सम्मान' डॉ. शशि भूषण सिंहल को; डेढ़ लाख रुपए की राशि का 'महाकवि सूरदास सम्मान' डॉ. लालचंद गुप्त मंगल को; एक लाख रुपए की राशि का 'बाबू बालमुकुंद गुप्त सम्मान' श्री नरेंद्र लाहड़ को; 'पं. लखमीचंद सम्मान' श्री ओमप्रकाश कादयान को; 'जनकवि मेहर सिंह सम्मान' श्री हरिकृष्ण द्विवेदी को; 'हरियाणा गौरव सम्मान' श्री पवन चौधरी मनमौजी को; 'आदित्य अल्हड़ हास्य सम्मान' श्री हलचल हरियाणवी को; 'श्रेष्ठ महिला रचनाकार सम्मान' श्रीमती मंजीत शर्मा को प्रदान किया गया। वर्ष २०१५ के श्रेष्ठ कृति पुरस्कार योजना के अंतर्गत २१,००० रुपए की राशि से सर्वश्री राजेश्वर वशिष्ठ, इंदु गुप्ता, जयकांत शर्मा, तजिंद्र सचदेवा, एम.एम. जुनेजा, मोनिका गुप्ता, मनोज भारत, धर्मबीर कुंडु, सरोज दहिया, रामफल चहल को सम्मानित किया गया। वर्ष २०१४ के लिए ५००० रुपए की राशि का प्रथम पुरस्कार श्रीमती भावना सक्सेना को, ४००० रुपए की राशि का द्वितीय पुरस्कार डॉ. गार्गी को, ३००० रुपए की राशि का तृतीय पुरस्कार श्री सुरेश बरनवाल को; वर्ष २०१५ के लिए ५००० रुपए की राशि का प्रथम पुरस्कार श्रीमती कमल कपूर को, ४००० रुपए की राशि का द्वितीय पुरस्कार श्री ब्रह्मदत्त शर्मा को, ३००० रुपए की राशि का तृतीय पुरस्कार श्री सुशील हसरत को दिया गया। वर्ष २०१६ के लिए सात लाख रुपए की राशि का 'आजीवन साहित्य साधना सम्मान' डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल को; 'स्वर्ण जयंती आजीवन साहित्य साधना सम्मान' श्री उदयभानु हंस को; पाँच लाख रुपए की राशि का 'महाकवि सूरदास आजीवन साहित्य साधना सम्मान' डॉ. नंदलाल मेहता वागीश को; ढाई लाख रुपए की राशि का 'पंडित माधव प्रसाद मिश्र सम्मान' डॉ. सुभाष रस्तोगी को; दो लाख रुपए की राशि का 'बाबू बालमुकुंद गुप्त सम्मान' डॉ. राधेश्याम शुक्ल को; 'पं. लखमीचंद सम्मान' डॉ. बाबू राम को; 'हरियाणा गौरव सम्मान' डॉ. हुकुम चंद राजपाल को; 'आदित्य अल्हड़ हास्य सम्मान' डॉ. विक्रमजीत को; 'श्रेष्ठ महिला रचनाकार सम्मान' डॉ. मुक्ता को; एक लाख रुपए की राशि का 'स्वर्ण जयंती विशेष साहित्य सेवी सम्मान' प्रो. शैलेंद्र गोयल एवं ११,००० की राशि का 'राज्य स्तरीय पाठक पुरस्कार' श्री मुकेश को प्रदान किया गया। □

साहित्यिक क्षति

श्री अनिल माधव दवे नहीं रहे

१८ मई को केंद्रीय वन, पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन मंत्री श्री अनिल माधव दवे का निधन हो गया। उनका जन्म ६ जुलाई, १९५६ को उज्जैन में हुआ था। उनके द्वारा लिखित कई पुस्तकें—'सृजन से विसर्जन तक', 'नर्मदा समग्र', 'शताब्दी के पाँच काले पन्ने', 'सँभल के रहना अपने घर में छिपे हुए गद्दारों से', 'महानायक चंद्रशेखर आजाद', 'रोटी और कमल की कहानी', 'समग्र ग्राम विकास', 'अमरकंटक से अमरकंटक तक', 'शिवाजी व स्वराज', 'Beyond Copenhagen', 'Yes I Can, So Can We' आदि प्रकाशित।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।